प्रकाशकीय

करुणा-वरुणालय श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी का समग्र जीवन प्राणी मात्र के प्रति अजस्र करुणा से ओतप्रोत था। उनके रोम रोम से करुणा-निर्झरों का अनन्त प्रवाह अहर्निश बहता रहता था और समस्त जड-चेतन को अभय/और अनुकम्पा का असीम और अगाध आश्वासन देता था। ऐसे 'प्राणी वत्सल' 'जीओ और जीने दो' का शाश्वत सत्य, न केवल उद्घोषित, अपितु अपने जीवन और आचरण द्वारा क्रियान्वित कर निखिल ब्रह्माण्ड को ममता का सन्देश प्रदान करने वाले क्षमामूर्त्ति, तपोनिधि भगवान महावीर के ही कुछ अनुयायी, भगवान महावीर के ही नाम पर करुणा-धर्म के स्थान पर दया और दान में पाप की प्ररूपणा करने लगे। इस विषम अवसर्पिणी काल के प्रभाव से और मिथ्यात्व-मोहनीय के उदय से ऐसी विपरीत श्रद्धा धारण करने वाले भीषणजी स्वामी ने बाईस सम्प्रदाय के पूज्य श्री रघुनाथ म सा द्वारा गच्छ बहिष्कृत कर दिए जाने पर 'तेरापंथ' नामक एक नवीन मत चलाया। इनके चौथे पाट पर श्री जीतमलजी स्वामी हुए, जिन्होंने अपने उक्त मत को पुष्ट करने के लिए मारवाड़ी भाषा में कुछ ढालें जोड़ व छपाकर 'भ्रम-विध्वंसन' नामक एक ग्रन्थ बनाया। इन ढालों के जाल में थली प्रान्त के धर्म-भीरुओं को फसा कर दया-धर्म के पथ से विचलित किया जाने लगा।

प्राणी–जगत के परम सौभाग्य से इसी युग में विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न, प्रखर राष्ट्रवादी ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. की युगदृष्टि ने महावीर के उपदेशों की विपरीत व्याख्याओं के दुष्प्रभावों को देखा, अनुभव किया और अपनी अप्रतिम ओजमयी वाणी मे 'भ्रम-विध्वंसन' ग्रन्थ के खंडन हेतु व्यापक विहार पूर्वक प्रवचन दिए। उन्हीं प्रवचनों के विचार-नवनीत से 'सद्धर्ममंडनम्' और 'अनुकम्पा-विचार' ग्रंथ-रत्नों का निर्माण हुआ। इन ग्रन्थ रत्नों में प्रतिपादित शाश्वत सत्य ने युग की सीमाओं को लाघकर अपना महत्व

प्रतिष्ठापित किया और आज भी इन ग्रंथो की समग्र भारत के स्थानकवासी समाज मे अपूर्व माग है ।

'सद्धर्ममडनम् ग्रन्थ तो हिन्दी भाषा मे लिखा होने से सारे देश मे भली प्रकार समझा जाता रहा किन्तु 'अनुकम्पा-विचार' की ढाले मारवाडी मे होने से उनका अनुवाद क ाने की आवश्यकता प्रतीत हुई । अत: इन पद्य और लय बद्ध रचनाओ (ढालो) के साथ इनका अनुवाद प श्री घेवरचद शास्त्री 'वीर पुत्र' द्वारा करवाकर उस समय की एक यशस्वी सस्था 'श्री जैन हितेच्छुश्रावक मडल, रतलाम न ग्रन्थ का प्रकाशन करवाया । श्रावक मडल के तत्कालीन पदाधिकारियो सर्वश्री हीरालालजी नादेचा, अध्यक्ष, बालचन्दजी श्री श्रीमाल उपाध्यक्ष, वृद्धिचन्दजी वरदभाणजी पीतलिया कोषाध्यक्ष एव श्री सुजानमलजी तालेरा सचिव द्वारा सवत् २००६ मे प्रकाशित ग्रन्थ का अब श्री अ भा साधुमार्गी जैनसघ द्वारा पुनर्मुद्रण कराया गया है । उल्लेखनीय है कि समाज के व्यापक हितो मे मडल' ने स्वय को श्री अ. भा साधु-मार्गी जैनसघ मे विलीन कर दिया है । 'मडल' के इस सत्प्रयास की आवृत्ति करते हुए हमे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है ।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन 'श्रीमद् जवाहराचार्य प्रकाशन निधि' से किया जा रहा है । उल्लेखनीय है कि स्व. श्रीयुत् जवाहराचार्यजी के अनन्य अनुयायी और उनके तेजोमय जीवन के प्रत्यक्ष द्रष्टा मद्रास निवासी श्रीयुत् जुगराजी सा. धोका की यह उत्कट इच्छा है कि ज्योतिर्धर जवाहराचार्य जी के युग प्रेरक विचारो का जन जन में व्यापक प्रचार-प्रसार हो । उदात्त भावना से प्रेरित हो श्री धोका जी ने इस प्रकाशन निधि की स्थापना की है । इस निधि से अब तक श्रीमद् जवाहराचार्यजी के बहुआयामी व्यक्तित्व को उजागर करने वाली ५ पॉकेट बुक्स तथा क्रान्तदर्शी आचार्य श्री जी की जीवनी प्रकाशित हो चुकी है । इसी यशस्वी प्रकाशन क्रम मे 'अनुकम्पा-विचार' अपने पाठको के हाथो मे सौंपते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है । हम सेठ श्री जुगराज जी धोका और उनके युवा हृदय पुत्र श्री मागीलालजी धोका द्वारा प्रदत्त निधि सहयोग के लिए हृदय से आभारी हैं ।

इसके प्रकाशन में जैन आर्ट प्रेस बीकानेर के सक्रिय सहयो
हेतु हम धन्यवाद ज्ञापित करते हैं ।

विश्वास है पद्य और गद्य की यह युति सुधी पाठकों को दया-
धर्म के अनुपालन में पाथेय की भांति जीवन अवलम्बन और सहयोग
प्रदान करेगी ।

दि. ३०-१२-८४

गुमानमल चोरड़िया
संयोजक, साहित्य-समिति

दीपचन्द भूरा
अध्यक्ष

पीरदान पारख
मन्त्री

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैनसंघ, बीकानेर

卐

❀ विषय सूची ❀

—:❀❀:—

❀ वीतरागाय नमः ❀

:- अनुकम्पा-विचार -:

❀ दोहा ❀

करुणा वरुणालय प्रभो, मंगलमूल अनन्त ।
जय जय जिनवर विबुधवर, सुखमय सुखमावन्त ॥1॥

भावार्थ.—हे करुणासागर प्रभो ! अनन्त मंगलो के मूल, वीतराग, केवलज्ञानी और अनन्त सुखो मे लीन आप सदा जयवन्त रहे ॥१॥

अनन्त जिन हुआ केवली, मनपर्यव मतिमन्त ।
अवधिधर मुनि निर्मला, दस पूर्व लगि सन्त ॥2॥

आगम बलिया ये सहू, भाखे आगम सार ।
वचन श्रद्धे तेहना, ते रुलसे संसार ॥3॥

भावार्थः—पूर्व समय मे अनन्त तीर्थङ्कर एवं सामान्य केवलज्ञानी हो गये हैं वे, मन पर्ययज्ञानी, निर्मल अवधिज्ञानी और दस पूर्वो तक के ज्ञाता—ये सभी आगमबलिया अर्थात् आगमविहारी होते है । इनके वचन आगमरूप माने जाते हैं । जो इनके वचनो पर श्रद्धा नही करते वे संसार मे परिभ्रमण करते हैं ॥२-३॥

अनुकम्पा आछी कही, जिन आगम रे मांय ।
अज्ञानी सावज कहे, खोटा चोज लगाय ॥4॥

भावार्थः—जैनशास्त्रों मे अनुकम्पा श्रेष्ठ कही गई है ।किन्तु कितनेक अज्ञानी कुहेतु लगाकर उस अनुकम्पा को सावद्य-पापकारी कहते हैं ॥४॥

ढालां नहीं जालां हुई, अनुकम्पा री घात ।
पञ्चमकाल प्रभाव थी, हा ! हा ! त्रिभुवन तात ! ।।5।।

भावार्थ अनुकम्पा को सावद्य बतलाने के लिये उन अज्ञानियो ने कितनीक ढाले बनाई है । वे ढाले अनुकम्पा की घात के लिये जालरूप सिद्धि हुई है । हे त्रिलोकीनाथ ! इस पञ्चम आरे का यह प्रभाव है ।।५।।

अनुकम्पा उठायवा, मांडी माया जाल ।
मूरख मछला ज्यो फंस्या, रुले अनन्तो काल ।।6।।

भावार्थ.—ससार से अनुकम्पा को उठा देने के लिये उन अज्ञानियो ने कपटपूर्वक ये ढालेरूपी जाले फैला रक्खी हैं । जिस प्रकार जाल मे मछली आकर फस जाती है उसी प्रकार इन ढालोरूपी जालो मे भोले प्राणी फस जाते है । उस विपरीत श्रद्धारूप मिथ्यात्वके कारण अनन्तकाल तक वे ससार मे परिभ्रमण करते रहते हैं ।।६।।

दुखमि आरे पंचमे, कुगुरु चलायो पन्थ ।
अनुकम्पा खोटी कहे, नाम धरावे सन्त ।।7।।

भावार्थ —इस दु:पम नामक पाचवे आरे मे कुगुरु ने यह पन्थ चलाया है जिसमें वे अनुकम्पाको बुरी बतलाते है । इस पर भी आश्चर्य तो यह है कि वे सन्त नाम धराते है ।।७।।

आक थोर ना दूध सम, अनुकम्पा बतलाय ।
मन सो सावज नाम दे, भोला ने भरमाय ।।8।।

भावार्थ—वे अज्ञानी लोग भोले प्राणियो को भ्रम मे डालने के लिये अनुकम्पा को अपने मन से ही सावद्य बतलाते हैं और उस अनुकम्पा को वे आक और थूहर के दूध के समान बुरी बतलाते हैं ।।८।।

सपाप सावज नाम है, हिसादिक थी होय ।
अनुकम्पा हिसा नहीं, सावज किस विध होय ।।9।।

भावार्थ.—पापकारी कार्य को सावद्य कहा जाता है जो कि

हिंसादि पाप-कार्यों से होता है। अनुकम्पा हिंसा नहीं है किन्तु मरते प्राणी की प्राणरक्षारूप दया अनुकम्पा कहलाती है। फिर वह अनुकम्पा सावद्य-पापकारी कैसे हो सकती है ? अर्थात् अनुकम्पा सावद्य कभी नही हो सकती ॥९॥

अनुकम्पा रक्षा कही, दया कही भगवन्त ।
पाप कहे कोई तेहने, मिथ्या जाणो तन्त ॥10॥

भावार्थ—मरते हुए प्राणी प्राणरक्षा करना एव दु खी प्राणी पर दया करना इसे तीर्थङ्कर भगवान् ने अनुकम्पा कहा है। उस अनु-कम्पा कहा है। उस अनुकम्पा को यदि कोई पापकारी-सावद्य बतलाने की धृष्टता करे तो उसका कथन मिथ्या समझना चाहिये ॥१०॥

अमृत एक सो जाणज्यो, अनुकम्पा पिण एक ।
भेद प्रभू नहीं भाषियो, सूतर माँही देख ॥11॥

भावार्थ —जिस प्रकार अमृत एक ही है अर्थात् (१) जिलाने वाला अमृत और (२) मारने वाला अमृत - ऐसे दो भेद अमृत के नही हो सकते उसी प्रकार अनुकम्पा भी एक ही है। उसके (१)सावद्य पापकारी-अनुकम्पा और (२) निरवद्य अनुकम्पा—ऐसे दो भेद नही हो सकते। तीर्थङ्कर भगवान् ने भी अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य-ऐसे दो भेद शास्त्रों में कही पर नही फरमाये हैं ॥११॥

तो पिण कुगुरु कदाग्रहे, चढिया बिस्वा बीस ।
मनसूं करे प्ररूपणा, करड़ी ज्यांरी रीस ॥12॥

भावार्थ—ऐसा होने पर भी कदाग्रह के वश होकर कुगुरु अपने मन से अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य ऐसे दो भेदों की प्ररूपणा करते है। इस विषय में उनसे प्रश्न करने पर वे ठीक उत्तर तो कुछ नही दे सकते किन्तु प्रश्नकर्त्ता पर क्रोध करने लगते हैं ॥१२॥

निरवद ने सावद वलि, अनुकम्पा रा भेद ।
अणहूंता कुगुरु करे, ते सुण उपजे खेद ॥13॥

भावार्थ:—वे कुगुरु अपने मन से ही अनुकम्पा के सावद्य

और निरवद्य ऐसे अनहोने दो भेद करते हैं जिसे सुनकर मन में खेद पैदा होता है ॥१३॥

भरम जाल तोड़न तण्, रचूं प्रबन्ध रसाल।
धारो भवजीवां ! तुम्हें, बरते मंगलमाल ॥14॥

भावार्थ:—कुगुरुओ के उपरोक्त भ्रमजाल को तोड़ने के लिये यह सुन्दर ग्रन्थ बनाया जा रहा है। हे भव्य जीवो ! इसे तुम समझपूर्वक धारण करो जिससे तुम्हारी आत्मा का मगलकल्याण हो ॥१४॥

ढाल पहली

मेघकुमार का अधिकार

संक्षिप्त पूर्वभव की कथा :—

मेघकुमार का जीव पूर्वभव में हाथी था। इससे पहले भव में भी वह हाथी था आनन्द-पूर्वक जङ्गल में रहता था। एक समय जङ्गल में आग लग गई। उसे देखकर वह भागने लगा। दौडते-दौडते उसे बडी जोर से प्यास लगी। पानी पीने के लिये वह एक तलाब की ओर जाने लगा। आगे जाने पर वह तलाब के कीचड में बुरी तरह फंस गया। बहुत कोशिश करने पर निकल न सका। इतने में पीछे से एक दूसरा हाथी आ गया। उसने उसे दन्तप्रहार किया जिससे वह वहां मृत्यु को प्राप्त हो गया। दूसरे जन्म में वह फिर हाथी हुआ। एक समय जङ्गल में आग लग गई जिसे देखकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। इसलिये भविष्य में ऐसे दावानल से बचने के लिये एक योजन का लम्बा चौडा एक मण्डल घेरा बनाया। कुछ समय पश्चात् जङ्गल में फिर आग लग गई। उससे बचने के लिये जङ्गल के अनेक पशु-पक्षी भागकर उस मण्डल में आ गये। हाथी भी दौडता हुआ वहां पहुचा तब वह मण्डल जीवों से खचाखच भर गया था। बडी मुश्किल से थोडी-सी जगह हाथी को खडे रहने के लिये मिली। कुछ समय बाद अपने शरीर को खुजलाने के लिये हाथी ने अपना पैर उठाया। इतने में दूसरे बलवान् प्राणियों द्वारा ढकेला हुआ एक शशक (खरगोश) उस जगह आ पहुंचा। शरीर को खुजलाकर जब वह अपना पैर नीचे रखने लगा तो वहा एक शशक को बैठा हुआ देखा। तब —

'पाणाणुकंपाए भूयाणुकंपाए जीवाणुकंपाए सत्ताणुकंपाए'

प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों की अनुकम्पा से उसने अपना पैर न तो उस

शशक पर रक्खा न दूसरे प्राणियो पर रक्खा और न उन्हे इधर-उधर ढकेला ही, किन्तु उसने अपना पैर अधर उठाये रक्खा । उन समस्त प्राणियों की अनुकम्पा से हाथी ने ऐसे सम्यक्त्वरत्न की प्राप्ति की, जिसकी प्राप्ति उसे आगे कभी नही हुई थी । उसने उस समय ससार परित्त (परिमित) किया और मनुष्य-आयु का बन्ध किया ।

वह वन की अग्नि अढाई दिन मे शांत हुई । सब जीव उस मण्डल से निकलकर चले गये । तब चलने के लिये हाथी ने भी अपना पैर पृथ्वी पर रक्खा किन्तु अढाई दिन तक पैर ऊंचा रहने के कारण अकड गया था जिससे वह हाथी चल नही सका प्रत्युत पृथ्वी पर गिर पड़ा । तीन दिन तक उस वेदना को सहन करके अपनी सौ वर्ष की आयु पूर्ण करके मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

वहा से मरकर वह हाथी का जीव राजा श्रेणिक के घर पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ जिसका नाम मेघकुमार रक्खा गया । युवावस्था को प्राप्त होने पर साठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह किया गया । फिर मेघकुमार ने भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की । बहुत वर्षो तक दीक्षापर्याय का पालन कर वह विजय नामक अनुत्तर विमान में ३२ सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ । वहा चव कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सयम ग्रहण करेगा और मोक्ष जायगा ।

❀ ढाल ❀

[तर्ज :—धिग धिग छे उणी नागश्री ने]

मेघकुंवर हाथी रा भव में,
करुणा करी श्री जिनजी बताई ।
प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व री,
अनुकम्पा की, समकित पाई ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥अनु. 1 ॥

निज देह री परवा नहीं राखी,
पर अनुकम्पा रो हुवो रसियो ।
बीस पहर पग ऊंचो राख्यो,
पर उपकार सूं मन नहीं खसियो ॥अनु. 2॥
परितसंसार कियो तिण विरियां,
श्रेणिक घर उपनो गुण पाई ।
आठ रमणी तज दीक्षा लीधी,
ज्ञाता अध्ययने गणधर गाई ॥अनु. 3॥

भावार्थ:—हाथी के भव मे मेघकुमार ने प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व की अनुकम्पा की थी जिससे उसे समकित की प्राप्ति हुई थी ऐसा तीर्थङ्करदेव श्री महावीर स्वामी ने फरमाया है। इस लिये अनुकम्पा को सावद्य नही समझना चाहिये।

प्राणियो को अनुकम्पा मे हाथी इतना लीन हो गया था कि उसने अपने शरीर की परवाह न करके बीस पहर तक यानी अढाई दिन तक पैर को ऊपर उठाये रक्खा किन्तु परोपकार (प्राणियो की अनुकम्पा) से जरा भी विचलित नही हुआ।

इसी कारण उसने समकित की प्राप्ति की और संसारपरित्त (परिमित) किया। फिर श्रेणिक राजा के घर पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। वही आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह किया। फिर उन्हे छोड़कर उसने भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। इत्यादि सारी कथा विस्तारपूर्वक ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन मे कही गई है ॥१-३॥

प्रश्न :—'बलता जीव दावानल देखी,
सूंड सूं पकड़ के नाथ बचाय।'

भावार्थ.—कितनेक अज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि हाथी ने ने प्राणियो पर अनुकम्पा नहीं की थी किन्तु उसने अपनी आत्मा को पाप से बचाया था। यदि वह प्राणियो पर अनुकम्पा करता तो दावानल (वन की अग्नि) में जलते हुए प्राणियो को सूंड से पकड़कर क्यों

नही उठा लाया और मण्डल मे क्यो नही रक्खा ?

उत्तर —मूढमत्यां री या खोटी कल्पना,

वलता जीव सूतर न बताया ।।अनु. 4 ।।

मण्डल जीवां थी पूरण भरियो,

शश बैठण ने स्थान न मिलियो ।

जीव लाय कि जागा मेले,

खोटो पक्ष मिथ्याती झलियो ।।5।।

भावार्थ —उपरोक्त प्रश्न अयुक्त है क्योकि पहली बात तो यह है कि दावानल मे जीव जल रहे थे, ऐसा शास्त्र मे नही बतलाया गया है । दूसरी वात यह है कि हाथी के आने से पहले ही उसका बनाया हुआ मण्डल जावो से खचाखच भर गया था कि हाथी को भी ठहरने के लिये स्थान मुश्किल से मिला । तथा शरीर खुजलाने के लिये उठाये हुए अपने पैर को वापिस नीचे रखने का स्थान नही मिला । ऐसी दशा मे वह हाथी दावानल मे जलते हुए जीवो को लाकर कहा रखता और उनको लाने के लिये किस मार्ग से जाता, क्योकि वह स्थान तो जीवो से इतना भरा हुआ था कि वहा तो पैर रखने को भी जगह न थी । इसलिये उपरोक्त प्रश्न अयुक्त है ।

सुसलो न मारचो अनुकम्पा बतावे,

(तो) एक जोजन मण्डल रे मांई ।

जीव घणा जामें आई ने बसिया,

(त्यां) सगलां ने हाथी तो मारचा नहीं ।।अनु. 6 ।।

(जो) सुसलो न मारचा रो धर्म बतावो,

(तो) दूजा (ने) न मारचां रो क्यों नहीं केवो ।

(जो) सुसला रा प्राण बचाया धर्म है,

तो दूजा जीव बचाया रो (पिण) केवो ।।अनु. 7 ।।

भावार्थ.—पूर्वपक्षवादियो का कथन है कि हाथी ने केवल अकेले खरगोश को न मारने रूप अनुकम्पा की थी । तब प्रश्न यह

होता है कि उस एक योजन के मण्डल मे तो बहुत से जीव आकर ठहरे थे, उन सबको भी हाथी ने मारा नही था। उन सबको न मारनेरूप अनुकम्पा मे धर्म क्यो नही कहते ? क्योकि जब एक खरगोश से प्राण बचाने मे धर्म है तो दूसरो के प्राण बचाने में धर्म क्यो न होगा ? इसीलिए यह कहना कि हाथी ने अकेले खरगोश की अनुकम्पा से ससार परित्त किया है, बहुत जीव जो मण्डल मे आकर बचे थे उनकी अनुकम्पा से ससार परित्त नही किया' यह कथन अविवेक का सबसे बड़ा उदाहरण है क्योकि जब वे लोग भी एक जीव खरगोश अनुकम्पा से ससार परित्त होना मानते हैं तब फिर अनेक जीवो की अनुकम्पा से डरने की क्या बात है ? क्योकि जब एक जीव की अनुकम्पा से ससार परित्त हो सकता है तो अनेक जीवो की अनुकम्पा से धर्म ही होगा।

जोजन मण्डले जीव जो बचिया,
मंदमती तामे पाप* बतावे।
त्यांरे लेखे सुसलो बचिया रो,
'धर्म' कहो जी किण विध थावे ॥अनु. 8॥

भावार्थ हाथी के बनाये हुए एक योजन के मण्डल मे बहुत जीवो की प्राणरक्षा हुई थी। मन्दबुद्धि लोग इसमे पाप बतलाते है, जैसा कि उन्होने अपनी अनुकम्पा की ढाल मे जोड़ रखा है। उनके हिसाब से तो शशक के बचने का भी धर्म कैसे हो सकता है ?

---

* जैसा कि वे कहते हैं :–

'माडलो एक जोजन नो कीधो घणा जीव बचिया तहाँ आई।
तिण बचिया रो धर्म न चाल्यो समकित आया बिन समझ न काई॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो॥"
(अनुकम्पा ढाल १ गाथा ४)

उलटी मति सूं ऊंधी ताणे,
जीव बचाया मे पाप बखाणे।
हाथी तो जीव बचाइ ने तिरियो,
उत्तम जन शङ्का नहीं आणे ॥अनु. 9॥

भावार्थ —उन लोगो की समझ विपरीत है। इसलिए वे विपरीत बात की प्ररूपणा करते है और जीव बचाने मे पाप बतलाते हैं। अनेक जीवो के प्राण बचाकर हाथी ने अपनी आत्मा का कल्याण साधन कर लिया। विवेकी पुरुष इस विषय मे कुछ भी शङ्का नही करते हैं ।।६।।

२–भ० नेमिनाथजी की करुणा का अधिकार

संक्षिप्त कथाः–

शौर्यपुर नगर मे यदुवशी महाराज समुद्रविजय थे। उनकी रानी का नाम शिवा देवी था। शिवा देवी की कुक्षि से बाईसवे तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) का जन्म हुआ था।

भगवान् नेमिनाथ से पूर्व होने वाले तीर्थङ्करो ने यह कह दिया था कि बाईसवां तीर्थङ्कर बालब्रह्मचारी रहकर ही दीक्षा ग्रहण करेगा तथा भगवान् नेमिनाथ स्वय अतिशय ज्ञानी होने के कारण इस बात को जानते थे, किन्तु उस समय यादवो में हिंसा बहुत फैली हुई थी। उस हिंसा को हटाने के लिए भगवान् ने विवाह करना स्वीकार किया। राजा उग्रसेन की पुत्री राजमती के साथ उनका विवाह होना निश्चत हुआ। चादी, सोने आदि के १०८ घड़ो का एकत्रित करके उसमे सुगन्धित अनेक औषधिया डाली गईं, फिर उस जल से भगवान् को स्नान कराया गया और सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अलकृत किया गया। धूमधाम से बारात रवाना हुई। जब भगवान् विवाह-मण्डप के नजदीक पहुचे तो क्या देखते हैं कि अनेक पशु-पक्षी बाडो और पिंजरो मे बन्द थे और वे दीनतापूर्वक शब्द कर रहे थे। उन्हे देखकर भगवान् ने अपने सारथि से पूछा कि–सुख को चाहने वाले इन बेचारे प्राणियो को यहां बन्धन मे क्यो डाला गया है ?'

यद्यति भगवान् अतिशय ज्ञानी होने के कारण इस बात को जानते थे कि इन पशु-पक्षियो को मास के वास्ते मारा जाने के लिए यहा बन्धन मे डाला गया है लेकिन यदि वे अपनी इस जानकारी

के आधार पर ही पशु-पक्षियों पर करुणा कर उन्हें बन्धन से छुडा देते तो बारात के लोग तथा दूसरे लोग पशु-पक्षियों को बन्धन-मुक्त कराने का कारण न समझ पाते और यादवो में फैली हुई हिंसा को मिटाने का जो भगवान् का उद्देश्य था वह पूरा नही होता। महापुरुषों के प्रत्येक कार्य में कोई न कोई गूढ तत्त्व छिपा रहता है। इसीलिये सब कुछ जानते हुए भी भगवान् ने सारथि से यह प्रश्न किया।

सारथि ने उत्तर दिया 'हे प्रभो ! ये समस्त भद्रप्राणी आपके विवाह के कारण एकत्रित कर यहा बाड़ो और पिंजरो में बन्द किये गये हैं। इन्हे मारकर आपके विवाहमहोत्सव में आये हुये लोगो को इनके मांस का भोजन कराया जायगा।'

सोउण तस्स वयण, बहुपाणिविणासणं।
चिंतेइ से महापण्णे साणुक्कोसो जिएहि उ ॥१८॥
जइ मज्झ कारणा एए हम्मति सुबहू जिया।
न मे एय तु निस्सेस परलोगे भविस्सइ ॥१६॥
सो कुण्डलाण जुयल, सुत्तगं च महायसो।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामई ॥२०॥

उतराध्ययन-अध्ययन-२२

टीका:—इत्थं सारथिनोक्ते यद् भगवान् विहितवांस्तदाह सुगममेव। नवर तस्य सारथे. बहूनां प्रभूताना प्राणिना प्राणाना विनाशन हनन अभिधेय यस्मिन् तद् बहुप्राणिविनाशनम्। स भगवान् सानुक्रोश: सकरुण: केषु 'जिएहि उ' त्ति जीवेषु, तु पादपूरणे। मम कारणादिति मद्विवाह-प्रयोजने भोजनार्थत्वादमीषामिति भाव। हम्मति हन्यन्ते वर्तमान सामीप्ये लट् ततो हानिष्यन्ते इत्यर्थ.। पाठान्तरत. 'हम्मिहंति' त्ति. सुस्पष्टम्। सुबहव अतिप्रभूता: 'जिय' त्ति जीवा. एनदीति जीवहनन तु. एवकारार्थे- नेत्यनेन योज्यते तत: न तु नैव. नि.श्रेयसं कल्याण परलोके भविष्यति पापहेतुत्वादस्येतिभाव: भवान्तरेषु परलोकभीरुत्वस्यात्यन्त-मभ्यस्ततयैवमभिधानमन्यथा चरमशरीरत्वादति-शयज्ञानित्वाच्च भगवत कुत एवंविध चिंतावसर:। एव च विदित-भगवदाकूतेन सारथिना मोचितेषु सत्त्वेषु परितोषितोऽसौ यत्कृतवांस्तदाह 'सो' इत्यादि सुत कचेति कटिसूत्रमर्पयतीति योग। किमेतदेवेत्याह आभरणाणि सर्वाणि शेषाणीति गम्यते।

दीपिका: तदा नेमिकुमार किं चितयतीत्याह यदि मम विवाहादिकारणेन एते सुबहव प्रचुरा जीवा हनिष्यन्ते मारयिष्यन्ते तदा एतद् हिसाख्य कर्म परलोके परभवे नि.श्रेयस कल्याणकारी न भविष्यति परलोकभीरुत्व यात्यन्तमभ्यस्ततयैवमभिधानमन्यथा भगवतश्चरमदेहत्वात् अतिशयज्ञानित्वाच्च कुत एवविधा चिन्ता इति भाव ॥१९॥

स नेमिकुमारो महायशा, नेमिनाथस्याभिप्रायात् सर्वेषु जीवेषु बन्धनेभ्यो मुक्तेषु सत्सु सर्वाणि आभरणाणि सार्थये प्रणामयति ददाति तान्याभरणाणि कुण्डलाना युगल पुन सूत्रक कटिदवरक चकारात् आभरणशब्देन हारादीनि सर्वाङ्गोपाङ्गभूषणानि सार्थये ददौ ॥२०॥

अर्थ.—इस प्रकार सारथि के कहने पर भगवान् नेमिनाथ ने जो किया वह इन गाथाओ मे कहा गया है । बहुत से प्राणियो का विनाशरूप अर्थ को बतलाने वाले सारथि के वचनो को सुनकर बडे बुद्धिमान् नेमिनाथ उन प्राणियो पर दयायुक्त होकर सोचने लगे —

यदि ये बहुत से प्राणि मेरे कारण यानी मेरे विवाह में आये हुए लोगों के भोजनार्थ मारे जायेंगे तो यह कार्य मेरे लिये परलोक मे कल्याणकारक नही होगा । (यद्यपि भगवान् नेमिनाथ अतिशय ज्ञानवान् और चरमशरीरी होने के कारण उसी भव मे मोक्ष जाने वाले थे अत उन्हें परलोक की चिन्ता करने की आवश्यकता न थी तथापि दूसरे भवो मे परलोक से डरने का जो उनको अत्यन्त अभ्यास था उस अभ्यास के कारण उन्हे पूर्वोक्त चिन्ता हुई थी ।)

भगवान् नेमिनाथ का अभिप्राय समझकर सारथि ने जब उन प्राणियो को बन्धन से मुक्त कर दिया तब भगवान् ने प्रसन्न होकर कानो के कुण्डल और कटिसूत्र (कन्दोरा) तथा दूसरे सब आभूषण उतार कर सारथि को इनाम दे दिये । (यह उक्त गाथाओं का टीका और दीपिका के अनुसार अर्थ है ।)

इसके बाद भगवान् अरिष्टनेमि ने सारथि को रथ वापिस लौट लेने की आज्ञा दी । अपने महल मे आकर भगवान् अरिष्टनेमि ने समस्त सासारिक बन्धनो को तोडकर दीक्षा लेने का विचार किया । तदनुसार उन्होने वार्षिक दान देना प्रारम्भ किया । एक वर्ष तक वे दान देते रहे । इस प्रकार ससार को दया और दान का पाठ पढाकर

भगवान् अरिष्टनेमि ने एक हजार यादवकुमारों के साथ दीक्षा ग्रहण की । ७०० वर्षों तक दीक्षापर्याय का पालन कर भगवान् मोक्ष पधार गये ।

तीन ज्ञान धर नेम प्रभुजी,
ब्याव न करणा निश्चय जाणे ।
बालब्रह्मचारी बावीसमो,
होसी जिनवर जिनजी बखाणे ॥अनु. 1॥
जीव दया सब जग ने बतावा,
जादवी हिंसा मेटण काजे ।
पंचेन्द्री प्राणी रा प्राण बचाव,
प्रत्यक्ष न्याय प्रभुजी रो राजे ॥अनु. 2॥
इत्यादि उपकार रे अर्थे,
ब्याव करण री बात ज मानी ।

भावार्थ—जन्म के समय ही भगवान् अरिष्टनेमि को मति-ज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इस प्रकार तीन ज्ञान थे । तीन ज्ञान के धनी होने के कारण अपना विवाह न होना वे जानते थे और उनके पूर्व तीर्थङ्करो ने भी कहा था कि बाइसवे तीर्थङ्कर बालब्रह्मचारी रह-कर ही दीक्षा ग्रहण करेगे किन्तु उस समय यादवो मे फैली हुई हिंसा को मिटाना और पंचेन्द्रिय जीवों के प्राणो की रक्षा करके जगत् को दया का पाठ पढाना आदि उपकारो के लिये उन्होने विवाह करने की बात स्वीकार करली ॥२॥

स्नान अर्थे पाणी बहु देख्यो,
जामें भी जीव जाणे बहु ज्ञानी ॥अनु. 3॥
पिण पशु-पक्षी री हिंसा मोटी,
रक्षा पिण ज्यांरी मोटी जाणी ।
यो ही भेद सद जग ने बतावा,
स्नान कियो सूतर री या वाणी ॥अनु. 4॥

भावार्थ—दूल्हा बनाते समय भगवान् अरिष्टनेमि को स्नान कराने के लिए सोने चादी आदि के १०८ घडों का जल एकत्रित किया गया। उस जल मे अप्काय के असख्य जीव हैं, इस बात को वे जानते थे किन्तु जिस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा पशु-पक्षी आदि पचेन्द्रिय जीवो की हिंसा वडी है उसी प्रकार एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा पचेन्द्रिय जीवो की रक्षा भी वडी है। यही भेद समस्त संसार को बताने के लिये जलस्नान करने मे भगवान् ने कोई आपत्ति नही की ॥४॥

मन्दमती कहे जीव सरीखा,
एकेन्द्री पंचेन्द्री भेद न दाखे।
छोटी मोटी हिंसा रा भेद ने,
केई अज्ञानी सरीखा भाखे ॥अनु. 5॥
जो या श्रद्धा नेम री होती,
तो पाणी ने देखि स्नान न करता।
बाड़ा रा जीवां थी असंख्यगुणा ये,
तत्क्षण देखी ने पाछा फिरता ॥अनु. 6॥
पशुपंखी री दया (रक्षा) रे मांहीं,
लाभ घणो प्रभु परगट कीनो।
अल्प हिंसा पाणी री जाणे,
तिण थी पंचेन्द्रिय में मन (ध्यान) दीनो ॥7॥
छोटी मोटी हिंसा रक्षा रा,
ज्ञानी तो भेद परगट जाणे।
मन्दमती रक्षा नहीं चावे,
तेथी ते तो ऊंधी ताणे ॥अनु. 8॥

भावार्थ—कितनेक मन्दबुद्धि एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा को एक समान वताकर उसमे अल्प और महान् का भेद रते इसी तरह एकेन्द्रिय की दया की अपेक्षा पचेन्द्रिय की या को भी प्रधान नही मानते है, परन्तु यह उनका

अज्ञान है क्योकि उत्तराध्ययन सूत्र के उपरोक्त बाईसवे अध्ययन मे भगवान् अरिष्टनेमि के विवाह के निमित्त जलस्नान करना लिखा है। विवाह मण्डप में बधे हुए पशु-पक्षियो से जल के जीव असख्यगुणा अधिक थे फिर भगवान् उन जल के जीवो की हिंसा को देखकर स्नान करने से क्यो नही निवृत्त हो गये ? इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भगवान् ने जल के जीवो की अपेक्षा मण्डप मे बाधे हुए पचेन्द्रिय जीवों की हिंसा को बहुत ज्यादा पाप और एकेन्द्रिय की अपेक्षा पचेन्द्रिय की दया को बहुत ज्यादा उत्तम समझा था। इसीलिये वे जलस्नान से तो निवृत्त न हुए परन्तु मण्डप मे बांधे हुए पशुओं की रक्षार्थ वे निवृत्त हो गये।

इस प्रकार ज्ञानियो ने तो एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा पचेन्द्रिय जीवो की दया का महत्त्व बतलाया है। किन्तु कितने ही मन्दबुद्धि जीवो को अनुकम्पा से ही द्वेष है, इसलिए वे अपनी विपरीत बुद्धि के कारण उल्टी बात की ही खीच करते हैं ॥८॥

स्नान करी परणीजण चाल्या,
तोरण पर देख्या बहु प्राणी।
बाड़ा पिंजर मे रुकिया दुखिया,
सूत (सारथि)से पूछे करुणा आणी ।9॥
सुख अर्थी ये जीव बिचारा,
क्योकर यांने दुखिया कीधा।
तब तो सारथि इण विध बोले,
स्वामी वचन सुनो हम सीधा ।अनु. 10॥

भावार्थ.—स्नान करके तथा वस्त्रभूषणो से सुसज्जित होकर भगवान् की बारात रवाना हुई। जब भगवान् तोरण के नजदीक पहुचे तो उन्होने वहा बाड़ो और पिंजरो मे बन्द किये हुए अनेक पशु-पक्षियो को देखा। प्रियजनो के वियोग से और मरण के भय से वे अत्यन्त दु.खी हो रहे थे। उन्हे देखकर करुणासागर भगवान् अपने सारथि से पूछने लगे कि सुख को चाहने वाले इन प्राणियो को यहा क्यो बन्द कर रक्खा है ? तब सारथि उत्तर देने लगा कि, भगवन् ! सुनिये:—

ये सहू भद्रिक प्राणी प्रभुजी,

ब्याह कारण तुमरो मन. प्राणी ।

आमिप (मांस) भक्षी रे भोजन सारू,

बाध्या छे घात दिल ठाणी ।।अनु. 11।।

भावार्थ —ये सब भोले प्राणी आपके विवाह के कारण एकत्रित कर यहा वाडो और पिजरो मे बन्द किये गये है। इन्हे मारकर आपके विवाह मे आये हुए मासभोजी वारातियो को इनके मास का भोजन कराया जायगा ।।११।।

सारथि वचने रु ज्ञान से जाणी,

दीनदयालु दया दिल आणी ।

जीवां तणो हित वंछ्यो स्वामी,

आतम सम जाण्या ते प्राणी ।।अनु. 12।।

ब्याह रे काज मरे बहु प्राणी,

हिंसा से डरिया निर्मल ज्ञानी ।

सारथि प्रभुजीरी मनस्या जाणी,

जीवां ने छोड़ दिया अभयदानी ।।अनु. 13।।

भावार्थ. सारथि के उपरोक्त वचनों को सुनकर तथा अपने ज्ञान से जानकर दीनदयाल भगवान् का हृदय करुणा से भर गया। वे उन प्राणियो को अपयी आत्मा के समान समझ कर उनका हित (रक्षा) चाहने लगे कि यदि ये प्राणी मेरे विवाह के निमित्त मारे जायेंगे तो यह कार्य बडा अनर्थकारी होगा । इसलिये उनके हृदय मे अनुकम्पा के भाव उत्पन्न हुए कि इन प्राणियो को बन्धनमुक्त कर दिया जाय तो अच्छा हो । चतुर सारथि ने भगवान् के इन भावो को तत्क्षण जान लिया और उसने सब प्राणियो को बन्धनमुक्त कर अभय-दान दे दिया । अभयदान प्राप्त कर वे सब प्राणी बडे प्रसन्न होते हुए अपने-अपने इष्ट स्थान की तरफ भाग गये ।।१२-१३

जीव छूट्यां सूं नेमजी हरख्या,

बक्षीसी दीनी सूत्र गाई ।

कुण्डल युग्म अरु कन्दोरो,

सर्व आभूषण दीवा बधाई ।।अनु. 14।।

भावार्थ —जब सारथि ने उन प्राणियो को छोड़ दिया तो इस कार्य से भगवान् बहुत खुश हुए । उसी समय उन्होने अपने कानों के कुण्डलो की जोडी, कन्दोरा और सर्व आभूषण उतारकर सारथि को इनाम दे दिए ।।१४।।

पीछे वरषीदान जो दीवो,

दयादान दोनूं ओलखाया ।

संजम सहस्रावन में लीधी,

केवल ले प्रभु मोक्ष सिधाया ।।अनु. 15।।

भावार्थ.—फिर वहा से भगवान् वापिस लौट आये और दीक्षा लेने का विचार कर वे वार्षिक दान देने लगे । इस तरह ससार को दया और दान दोनो का पाठ पढ़ाकर भगवान् ने सहस्राम्रवन मे सयम अङ्गीकार किया । फिर केवलज्ञान प्राप्त कर प्रभु मोक्ष पधार गये ।।१५।।

(कहे) "जीवां रो हित नही नेमजी वंछ्यो",

दीपिकादिक री साख बतावे ।

दीपिका में हितकारी (अर्थ) भाख्यो,

उणने अज्ञानी जाण छिपावे ।।अनु. 16।।

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक लोग कहते है कि 'भगवान् नेमिनाथ ने प्राणियो का हित नही चाहा था ।' इसमे वे लोग दीपिका के पाठ का प्रमाण देते है किन्तु यह उनका अज्ञान है, क्योकि दीपिका मे जीवे हित:' अर्थात् 'जीवो के हितकारी' ऐसा स्पष्ट कहा है ।।१६।।

नहिं मारण ने हित बताओ,

(तो) जीव बचाया अहित किन थावे ।

नहिं मारण निज हित पहिचाणो,

मरता बचाया स्वपर हित पावे ।।अनु. 17।।

भावार्थ : वे लोग कहते है कि 'किसी जीव को न मारना' यह 'हित' कहलाता है तो प्रश्न यह होता है कि 'जीवो को बचाना अर्थात् जीवो की रक्षा करना' इसमें क्या उन जीवों का अहित होता है ? अर्थात् नही होता । इसलिए ऐसा समझना चाहिए कि 'जीवो को न मारना स्वहित है और मरते हुए जीवो की रक्षा करना स्वपरहित है' अर्थात् जैसे कोई पुरुप जीवों को नही मारता तो वह अपना हितसाधन करता है किन्तु दूसरा पुरुप जो जीवो को स्वय भी मारता भी नही है और मरते हुए प्राणियो की प्राणरक्षा करता है वह स्व और पर दोनों का हितसाधन करता है । ऐसे पुरुप को दुनिया 'परोपकारी' कहकर पुकारती है ।

जीव बचे जीने रक्षा कही प्रभु,

देही (जीव) री रक्षा ने दया बताई ।

संवरद्वार में पाठ उघाड़ो,

मन्दमती रे मन नहीं भाई ।।अनु. 18।।

भावार्थ :–'जीव को वचाना' इसको तीर्थङ्करदेव ने 'रक्षा' कहा है और रक्षा को दया कहलाती है । प्रश्नव्याकरण सूत्र के सवरद्वार में रक्षा के 'रक्षा, दया, अभय' आदि साठ नाम बताये गये हैं । फिर भी कितनेक मन्दबुद्धि जीवो को 'मरते प्राणियो की रक्षा एव दया' अच्छी नही लगती तो यह उनका पापकर्म का और अज्ञान का उदय समझना चाहिए ।।१८।।

जीवां ने नेमजी नांय छुड़ायाँ,

मन्दमति एवी बात उचारे ।

अवचूरी, दीपिका, टीका, अर्थ ने,

मिथ्या उदय थी नाय विचारे ।।अनु. 19।।

जीव छुट्यां री बक्षीसी दीधी,
अवचूरी, दीपिका, टीका देखो ।
मूलपाठे बक्षीसी भाषी,
मन्दमति ! जरा समझो लेखो ॥अनु. 20॥
आज पिण या परतख दीखे छे,
मनमाने काम से स्वामी रीझे ।
जब राजी हो बक्षीसी देवे,
पंडित न्याय विचारी लीजे ॥अनु. 21॥
जीव छुट्यां प्रभु राजी न होता,
बक्षीस नेमजी काहे को देता ।
निर्दय ऐसो न्याय न लेखे,
करुणाकर यों परगट केता ॥अनु. 22॥

भावार्थः–कितनेक मन्दबुद्धि पुरुष ऐसा कहते हैं कि–भगवान् नेमिनाथ ने उन जीवो को छुडाया नही था।' यह उनका कथन मिथ्या है क्योकि अवचूरी, दीपिका और टीका का पाठ जो पहले लिखा जा चुका है उसमें स्पष्ट लिखा है कि 'विदित भगवदाकूतेन सारथिना मोचितेष सत्त्वेप परितोषितोऽगौ यत्कृतवांरतदाह' अर्थात् भगवान् का अभिप्राय समझकर जब सारथि ने उन जीवो को बन्धन-मुक्त कर दिया तब सारथि के इस कार्य से प्रसन्न होकर भगवान् ने अपने कानों के कुण्डल कन्दोरा और सारे आभूषण उतारकर सारथि को इनाम दे दिये। यह बात मूलपाठ मे भी कही गई है।

आज भी यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अपनी इच्छानुकूल कार्य हो जाने से स्वामी प्रसन्न होता है और तभी इनाम देता है। इसी तरह सारथि के कार्य मे प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे इनाम दिया था। यदि जीव छूटने से भगवान् प्रसन्न न होते और जीवरक्षा करने में पाप होता तो भगवान् उन जीवो की रक्षा करने के कारण सारथि पर प्रसन्न होकर उसे इनाम क्यो देते ? तथा उन जीवो की रक्षा के लिए भगवान् का भाव ही क्यों ? अतः भगवान्

नेमिनाथ ने जो कार्य किया उससे मरते जीव की रक्षा करना परम धर्म सिद्ध होता है । जो लोग जीवरक्षा को एकान्त पाप कहते हैं उन्हें उत्सूत्रवादी (सूत्र से विपरीत कथन करने वाले) और निर्दयी समझना चाहिए ॥१६-२२॥

—:ꕥꕥ:—

३—धर्मरुचि अनगार का करुणा अधिकार

संक्षिप्त पूर्व कथा :—

पूर्व समय में धर्मघोष नाम के एक महान आचार्य थे । अपने शिष्य-परिवार के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आचार्य एक समय चम्पा नगरी मे पधारे । उस समय उनके शिष्य उत्कृष्ठ तपस्वी महामुनि धर्मरुचिजी के मासखमण (एक महीने की तपस्या) के पारणे का दिन आया । तब गुरु की आज्ञा लेकर गोचरी के लिए वे नगर में पधारे । प्रथम ही मुनि ने नागश्री ब्राह्मणी (द्रौपदी का पूर्वभव का जीव) के घर में प्रवेश किया । उसने मुनि को कडवे तूम्बे का शाक वहरा दिया । उसे लेकर मुनि अपने गुरु के पास आये और उन्होने वह आहार गुरु को दिखलाया । उस शाक को चखकर गुरु ने कहा कि 'यह तो कडवे तम्बू का शाक है । यदि तुम इसे खा लोगे तो तुम्हारी अकाल मृत्यु हो जायगी । इसलिये एकान्त निर्वद्य-स्थान मे जाकर इसको परठ दो ।' गुरु की आज्ञा पाकर धर्मरुचि मुनि एकान्त स्थान में आये । वहा आकर जमीन पर पहले एक बूद डाली । शाक में घृतादि पदार्थ खूब डाले हुये थे इसलिये उसकी सुगन्धि से बहुतसी कीड़िया उस बूद पर आईं और उसके जहर से मर गईं । यह देखकर मुनि का हृदय अनुकम्पा से भर आया । वे सोचने लगे कि 'जब एक बूद से इतनी कीड़िया मर गईं हैं तो न जाने इस सारे शाक से कितने जीवो का नाश होगा ? इस प्रकार कीडियो पर अनुकम्पा करके धर्मरुचि अनगार वह सारा शाक आप स्वयं पी गये । इससे उसी समय उनके शरीर मे प्रबल वेदना उत्पन्न हुई । मुनि ने संथारा कर लिया । समाधिपूर्वक मरण प्राप्त कर वे सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए । वहा से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और प्रव्रज्या ग्रहण कर मोक्षपद प्राप्त करेंगे ।

❁ ढाल ❁
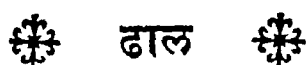
कटुक आहार जहर सम जाणी,
परठण री गुरु आज्ञा दीनी ।
खावण रो निषेध जो कीनो,
धर्मरुचिजी 'तहत' कर लीनो ॥अनु. 1 ॥

भावार्थ:—धर्मरुचिजी द्वारा लाये हुए उस शाक को चखकर जब धर्मघोष आचार्य ने यह जान लिया कि यह तो जहर के समान कड़ुवा है तब उन्होने उसे खाने का निषेध कर दिया और निर्वद्य एकान्त स्थान में परठने की आज्ञा दे दी । धर्मरुचि मुनि ने गुरु की इस आज्ञा को तहत-तथास्तु कहकर स्वीकार कर ली ।

कटुक आहार सूं कीड़ियां मरती,
अनुकम्पा मुनी मन मांही आणी ।
कड़ुवा तूम्बा रो भोजन कीधो,
धर्मरुचिजी धन गुणखानी ॥अनु. 2 ॥

भावार्थ :—निर्वद्य एकान्त स्थान मे जाकर मुनि ने पहले उस शाक की एक बूंद जमीन पर डाली । उसकी सुगन्धि से आकर उस बूंद पर अनेक कीडियां मर गई । यह देखकर मुनि का मन अनुकम्पा से भर आया । इससे उन्होने वह शाक जमीन पर नही डाला किन्तु वे स्वय अपने आप पी गये ऐसे गुणों के भण्डार और अनुकम्पा दया के सागर धर्मरुचि अनगार धन्य हैं जिन्होंने अपने शरीर की परवाह न करके कीडियो की अनुकम्पा की ।।२।।

गुरु आज्ञा विन आहार कियो मुनि,
कीड़ियों री अनुकम्पा आणी ।
विशुद्ध भाव मुनि रा अति आछा,
आराधक हुआ गुणखानी ॥अनु. 3॥

भावार्थ .—यद्यपि गुरु ने उस आहार को परठने की आज्ञा दी

थी किन्तु कीडियो पर अनुकम्पा करके मुनि ने वह शाक स्वयं पी लिया। मुनि के हृदय मे अनुकम्पा के विशुद्धभाव आये थे इसीलिए वे आराधक अर्थात् निकटभविष्य में मोक्ष प्राप्त करने वाले हो गये ॥३॥

कहत कुतर्की "धर्मरुचिजी (तो),
कीड़ियां बचावण भाव न लाया।
आपां सूं मरता जीव जाणी ने,
पाप हटा मुनि कर्म खपाया" ॥अनु. 4॥

भावार्थ —कुतर्क करने वाले कुछ लोग इस विषय में ऐसा कहते हैं कि धर्मरुचि मुनि के हृदय मे कीडियो की रक्षा करने के भाव नहीं आये थे किन्तु अपने द्वारा मरती हुई कीडियो को जानकर उन्होने अपने आपको पाप से बचाया था ॥४॥

जीव बचावा में पाप बतावा,
इण विध भोला ने भरमावे।
न्यायावादी ज्ञानी जन पूछे,
(तो) मन्दमती ने जवाब न आवे ॥अनु. 5॥

भावार्थ :—जीव बचाने मे अर्थात् जीवो की रक्षा करने में पाप बतलाने के लिए उपरोक्त प्रकार की कुतर्कें लगाकर वे लोग भोले जीवो को भ्रम मे डालते है किन्तु जब कोई बुद्धिमान् न्यायानुसार उन्हें इस विषय मे पूछता है तो उन मन्दबुद्धि कुतर्कियो को कुछ भी न्याय-सगत जवाब नही उपजता ॥५॥

अचित्त मही मुनि बिन्दु परठ्यो,
कीड़ियां मारण रा नहीं कामी।
ज्ञान बिना कीड़ियां खा मरती,
जाने बचावण कामी स्वामी ॥अनु. 6॥
अचित्त भू पारठ्यां पाप जो लागे,
तो गुरु पारठण री आज्ञा न देता।
उच्चारादि नित मुनि परठे,
उपजे मरे जीव त्यां मांही केता ॥अनु. 7॥

तिण री हिंसा मुनि ने नहीं लागे,
सूतर मांही गणधर भाखे ।
धर्मरुचिजी तो विध से परठ्यो,
जिण में पाप कुतर्की दाखे ॥अनु. 8॥
जो मुनि कड़वो तूम्बो न खाता,
तो परठ्यां दोष मुनि ने न कांई ।
करुणासागर कीड़ियों रे खातिर,
निज तन री परवा नहिं लाई ॥अनु. 9॥

भावार्थ :—धर्मरुचि मुनि ने अचित्त जमीन के ऊपर एक बूंद परठी थी किन्तु कीड़ियो को मारने के उनके परिणाम नही थे। किन्तु ज्ञान न होने के कारण उस सारे शाक को खाकर न जाने कितनी कीड़िया मर जाती इसलिए उन्हे बचाने के परिणाम मुनि हृदय मे उत्पन्न हुए ।

जो लोग यह कहते है कि 'यदि मुनि उस शाक को परठ देते तो उसे खाकर जितनी कीड़िया मरती, उन सबका पाप मुनि को लगता । उस पाप से अपनी आत्मा को बचाने के लिए मुनि ने वह शाक पी लिया । इसलिए मुनि ने अपना पाप टाला था, किन्तु कीड़ियो की रक्षा नही की ।' उनका यह कहना मिथ्या है क्योकि यदि अचित्त पृथ्वी पर परठने से मुनि को पाप लगता तो गुरु महाराज उन्हे परठने की आज्ञा क्यो देते ? मुनि अचित्त पृथ्वी पर रोजाना मलमूत्रादि परठते हैं किन्तु उनकी हिंसा मुनि को नही लगती, ऐसा शास्त्रो मे गणधर देवो ने स्पष्ट फरमाया है । धर्मरुचि मुनि तो शास्त्र की विधि अनुसार परठते फिर उन्हे पाप कैसे लगता ? यदि वे उस कडुवे तूम्बे के शाक को न खाते और पृथ्वी पर परठ देते तो मुनि को कोई दोष नहीं लगता, उन्हे कोई पाप नही लगता किन्तु वे महामुनीश्वर करुणा-सागर थे इसलिए उन्होने अपने शरीर की भी परवाह न करके कीड़ियों पर अनुकम्पा कर उन्हे बचाया ॥६-६॥

या अधिकाई जीव दया री,
सूतर मे गणधरजी गाई ।

'पराण ुकंपे नो आयाण ुकंपे'

चौथा ठाणा में यों दरशाई ॥अनु. 10॥

भावार्थ :—धर्मरुचि मुनि ने अपने शरीर की परवाह न करके कीडियो की अनुकम्पा कर उन्हे बचाया, यह उनकी दया की विशिष्टता थी। विशिष्ठ पुरुष ही ऐसा कर सकते हैं, सामान्य व्यक्ति नही। ऐसे विशिष्ठ पुरुषो को ठाणाग सूत्र के चौथे ठाणे मे ▭'परानुकम्पक न आत्मानुकम्पक' अर्थात् अपने शरीर की भी परवाह न करके दूसरो की अनुकम्पा करने वाला कहा है ॥१८॥

▭नोट.—ठाणाग सूत्र के चौथे ठाणे मे चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। वह पाठ टीका सहित यहा लिखा जाता है —

चत्तार पुरिस-जाया पण्णत्ता तजहा.—
आयाणुकपए णाममेग णो पराणुकपए
पराणुकपए णाममेगे णो आयाणुकपए,
एगे आयाणुकपए वि पराणुकपए वि,
एगे णो आयाणुकपए णो पराणुकपए।
(ठाणाग सूत्र ठाणा ४ सूत्र ३५२)

टीका :—आत्मानुकम्पक आत्महितप्रवृत्त प्रत्येकबुद्धो जिनकल्पिको वा परानपेक्षो निर्घृणः। परानुकम्पकः निष्ठितार्थतया तीर्थङ्कर, आत्मानपेक्षो वा दयैकरसो मेतार्यवत्। उभयानुकम्पक स्थविरकल्पिकः। उभयाननुकम्पक पापात्मा कालशौकरिकादिरिति।

अर्थ :—(१) जो अपनी ही अनुकम्पा करते है परन्तु दूसरे की नही करते। इस प्रथम भङ्ग के स्वामी तीन पुरुष होते हैं.— प्रत्येकबुद्ध जिनकल्पी और दूसरे की अपेक्षा न करने वाला निर्दयी पुरुष—ये तीनो अपने ही हित मे तत्पर रहते है दूसरो का हित नही करते। (२) जो दूसरे की अनुकम्पा करता है अपना हित नही करता वह दूसरे भङ्ग का स्वामी है। ऐसा पुरुष निष्ठितार्थ होने से तीर्थङ्कर होते हैं अथवा अपनी परवाह नही रखने वाला मेतार्य मुनि की तरह परम दयालु पुरुष होता है। (३) जो अपनी और दूसरे की दोनो की अनुकम्पा करता है वह तीसरे भङ्ग का स्वामी है ऐसा पुरुष स्थविरकल्पी साधु होता है। स्थविरकल्पी साधु अपनी और दूसरे की

दोनो की अनुकम्पा करता है। (४) जो अपनी भी अनुकम्पा नही करता और दूसरे की भी अनुकम्पा नही करता वह पुरुष चौथे भङ्ग का स्वामी है। ऐसा पुरुष कालशौकरिक (कालिया कसाई) आदि की तरह अतिशय पापी होता है।"

इस चौभङ्गी मे बतलाया गया है कि स्थविरकल्पी साधु उभयानुकम्पी है। वह अपनी और दूसरे की दोनो की अनुकम्पा करता है। अतः मरते प्राणी की रक्षा करना स्थविरकल्पी साधु का धार्मिक कर्तव्य है। जो स्थविरकल्पी साधु कहलाकर दूसरे जीव की रक्षा नही करता वह उक्त पाठानुसार अपने कर्तव्य से पतित होता है। जिनकल्पी और प्रत्येक बुद्ध साधु दूसरे की अनुकम्पा नही करते दूसरो को दीक्षा भी नही देते, शिष्य भी नही बनाते, प्रत्याख्यान नही कराते किन्तु अपने हो हित मे प्रवृत्त रहते है। इसलिए वे प्रथम भङ्ग के स्वामी कहे गये है। उनकी तरह जो दूसरे की अनुकम्पा नही करता है उसे प्रथमभङ्ग का स्वामी निर्दयी समझना चाहिए। क्योंकि इस समय जिनकल्पी और प्रत्येकबुद्ध साधु तो होते ही नही हैं।

परजीवां रा प्राण बचावण,
अपना प्राण री परवा न राखे :
ऐसा तो बिरला इण जग मे,
धर्मरुचि सा शास्तर साखे ।।अनु. 11।।

भावार्थ :—अपने शरीर की भी परवाह न करके दूसरे जीवो की रक्षा करने वाले धर्मरुचि अनगार सरीखे केवल परानुकम्पक (एकान्त परोपकारी) पुरुष इस ससार में विरले ही होते है। शास्त्रो में भी ऐसे उदाहरण बहुत थोड़े मिलते हैं ।।११।।

४—श्री महावीर स्वामी का गोशालक पर अनुकम्पा-अधिकार

इस प्रकरण की संक्षिप्त पूर्व कथा :—

भगवान् महावीर स्वामी जिस समय छद्मस्थ थे उस समय

गोशालक मखलिपुत्र अपने आपको उनका शिष्य बतलाता था। एक समय भगवान् विहार करके जा रहे थे। गोशालक भी उनके पीछे-पीछे जा रहा था। मार्ग मे उसने वैश्यासन बालतपस्वी को देखा जो सूर्य की आतापना ले रहा था और सूर्य के प्रचण्ड ताप से जो जू आदि उसकी बढी हुई लम्बी जटा में से नीचे गिर रही थी उसे उठा कर वह वापिस अपने केशो मे रखता जा रहा था। उसे देखकर गोशालक ने उसका उपहास करते हुए कहा कि 'तुम मुनि हो या जू आदि की शय्या हो।' यह सुनकर वैश्यासन बालतपस्वी ने गोशालक की बात पर कुछ ध्यान नही दिया किन्तु मौन धारण करके रहा। पश्चात् गोशालक ने दो तीन बार यही बात कही तब से क्रोध आ गया। क्रोध के मारे भिस-मिस करता हुआ वह आतापना भूमि से पीछे हटकर उसने तेज का समुद्घात करके सात आठ पैर पीछे हटकर गोशालक का वध करने के लिये अपने शरीर सम्बन्धी उस तेज को गोशालक पर फेंका। तब गोशालक की अनुकम्पा के लिये उस पर आती हुई तेजोलेश्या के निवारणार्थ श्री महावीर स्वामी ने शीतल लेश्या से वैश्यायन बालतपस्वी की वह उष्ण तेजोलेश्या शान्त हो गई। फिर भगवान् आगे विहार कर गये और गोशालक भी उनके पीछे चला गया।

❀ ढाल ❀

केवलज्ञानी वीर जिनेश्वर,
गोतमजी को भेद बतायो।
दयाभाव अनुकम्पा करने,
मैं पिण गोशाला ने बचायो। अनु. 1॥

भावार्थ : केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् महावीर स्वामी ने अपने शिष्य गणधर गौतम स्वामी को यह फरमाया था कि हे गौतम ! दयाभाव एवं अनुकम्पा करके मैंने गोशालक को बचाया था ॥१॥

गोशाल बचाया में पाप होते तो,
गोतमजी ने क्यों नहीं कीनो।

'पाप कियो मैं तुम मत करज्यो,

यो उपदेश प्रभू क्यों न दीनो ।।2।।

भावार्थ :—जो लोग ऐसा कहते हैं कि भगवान् ने गोशालक को बचाया था इससे उन्हे पाप लगा था । उन लोगो से पूछना चाहिये कि गोशालक को बचाने से यदि भगवान् को पाप लगा होता तो केवलज्ञानी होने बाद भगवान् ने गौतमस्वामी आदि को ऐसा उपदेश क्यो नही दिया कि 'मैंने जो गोशालक को बचाया था वह पाप किया था उससे मुझे पाप लगा तुम लोग ऐसा पाप कार्य मत करना इत्यादि । यदि गोशालक को बचाने से भगवान् को पाप लगा होता तो वे गौतमस्वामी को ऐसा उपदेश जरूर देते ।

केवली तो अनुकम्पा केवे,

मन्दमती तामें पाप बतावे ।

ज्ञानी वचन तज मूढ़ां री माने,

वे नर मोह मिथ्यातम पावे ।।अनु. 3 ।।

भावार्थ:—उपरोक्त उपदेश न देकर भगवान् ने तो गौतमस्वामी को ऐसा उपदेश दिया कि हे गौतम ! गोशालक को बचाकर मैंने उस पर अनुकम्पा की थी । जिस कार्य को स्वय भगवान् अनुकम्पा कहे उस कार्य को पाप बताने वाले व्यक्ति को मूर्ख एव अज्ञानी समझना चाहिये और जो लोग केवल ज्ञानियो के वचनो को छोड़कर ऐसे अज्ञाना की बात को मानते हैं उन्हे मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का बध होता है ।।३

असंजती रो नाम लेई ने,

गोशाल बचाया रो पाप जो केवे ।

माखी मूषक पात्र से काढ़े,

ज्यां रो तो ज्वाब सरल नहीं देवे ।।अनु. 4 ।।

जूं वां असंजती ने वे पोषे,

पाप जाणे तो क्यो नहीं फेंके ।

जद कहे म्हारी दया उठ जावे,

तो वीर ने दोष कहो कुण लेखे ।।अनु. 5 ।।

भावार्थ :—'गोशालक असंयति था इसलिए उसे बचाने से भगवान् को पाप लगा'—जो लोग इस तरह कहते हैं उनसे पूछना चाहिये कि तुम्हारे पात्र (जल के पातरे) मे यदि मक्खी और चूहा आदि गिर जाय तो उसे बाहर निकालते हो या नही ? और यदि तुम्हारे कपडो वगैरह मे जूए पड जाय तो तुम उनका पोषण करते हो या नही ? तब वे कहते हैं कि हमारे पात्र में गिरी हुई मक्खी चूहे आदि को हम बाहर निकाल देते है और जूओ का भी पोषण करते हैं क्योंकि यदि ऐसा न करे तो हमारी दया ही उठ जाय । तब फिर उनसे पूछना चाहिये कि जब तुम स्वय असयति मक्खी, चूहे और जूंओ आदि की रक्षा करते हो और इस कार्य से अपने-आपको पाप लगना नही मानते फिर गोशालक को बचाने से भगवान् महावीर स्वामी को पाप लगना कैसे बतलाते हो ? ।।४-५।।

प्राणी आदि अनुकम्पा करने,

वैसायण जूंवां शिर धारे ।

सूत्र भगोती शतक पन्द्रहवें,

केवलज्ञानी वचन उचारे ।।अनु. 6।।

भावार्थ—आतापना लेते हुए वैश्यासन बालतपस्वी के शरीर से जो जूंएं नीचे गिर रही थी उन पर अनुकम्पा करके वह उन्हे उठाकर वापिस अपने शिर पर रखता था यह बात केवलज्ञानी भगवान् महावीर स्वामी ने भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में फरमाई है ।।६।।

प्राणी भूत जीव सत्त्वानुकम्पा,

साता वेदनी रो कारण भाख्यो ।

सप्तम शतक छठे उद्देश,

वीर प्रभू गोतम ने दाख्यो ।।अनु. 7।।

भावार्थः—प्राणी (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय),

जीव (पंचेन्द्रिय) और सत्त्व (पृथ्वीकाय अप्काय, तेउकाय और वायु-काय) इनकी अनुकम्पा करने से सातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है। यह भगवती सूत्र के सातवें शतक के छठे उद्देश में श्री वीर प्रभु ने गौतमस्वामी को लक्ष्य करके फरमाया है ।।७।।

मेघकुंवर अधिकार पाठ यों,

प्राणी भूतादि जीवदया रो ।

यां पाठां में असंजती आया,

पाप नहीं अनुकम्पा किया रो ।।अनु. 8।।

भावार्थ·—श्री ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन में जहा मेघकुमार के पूर्वभव का वर्णन किया गया है वहा इस तरह पाठ आया है :— 'पाणाणुकपाए भूयाणुकंपाए जीवाणुकंपाए सत्ताणुकपाए' अर्थात मेघकुमार के जीव ने हाथी के भव में प्राणीभूत जीव सत्त्व की अनुकम्पा करके संसार परिमित किया था ।

उपरोक्त इन सब पाठों में असंतियो की अनुकम्पा का वर्णन किया गया है किन्तु उन असयतियों की अनुकम्पा का फल पाप होना कही नही बतलाया गया है ।।८।।

अनुकम्पा उठावण कारण,

वीर ने द्वेषी पाप बतावे ।

सूत्र रो न्याय बतावे ज्ञानी,

तो मन्दमती ने जवाब न आवे ।।अनु. 9।।

भावार्थ : - तब फिर भगवान् ने असंयति गोशालक को बचा दिया तो उन्हें पाप कैसे लग सकता है ? किन्तु अनुकम्पा के द्वेषी लोग संसार से अनुकम्पा को उठा देने के लिए वीर भगवान् को गोशालक की अनुकम्पा से पाप होना बतलाते हैं । जब पण्डित पुरुष उन्हे सूत्र का न्याय बतलाते हैं तब उन मन्दबुद्धियो को कोई उत्तर नही आता ।।९।।

जब भगवान् केवलज्ञानी हो गये थे उसके बाद एक समय का

जिक्र है कि गोशालक जहा भगवान् विराजते थे वहां आया । गोशालक के आने से पहले ही भगवान् ने अपने सब साधुओ से कह दिया था कि 'गोशालक यहा आकर कुछ कहे, यहा तक कि मेरा अवर्णवाद भी बोले तो भी कोई साधु उसको जवाब न दे और उसके साथ वादविवाद न करे ।'

जब गोशालक आकर भगवान् के सामने उटपटाग बोलने लगा तो सब साधु मौन रहे किन्तु सुनक्षत्र और सर्वानुभूति इन दो मुनियों से नही रहा गया । वे उससे वादविवाद करने लगे । क्रोध मे आकर गोशालक ने उन पर तेजोलेश्या फेकी जिससे उन दोनो मुनियो की घात हो गई ।

इस पर वे लोग प्रश्न करते हैं:—

"दोय-साधां ने क्यों न बचाया,
गोशाला थी बलता जाणी ।"

भावार्थ:—यदि मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने में धर्म होता है तो गोशालक की तेजोलेश्या से जलकर मरते हुए सुनक्षत्र और सर्वानुभूति इन दो साधुओ की रक्षा भगवान् ने क्यो नही की ?

आयुष आयो ज्ञानी जाण्यो,
न्याय न सोचे खेंचाताणी ।।अनु. 10।।

भावार्थ:—उन दोनों साधुओं का आयुष्य आ चुका था और गोशालक द्वारा उन दोनो का मरना अवश्यभावी था । टीका मे यह बात स्पष्ट कही गई है । वह टीका यह है:—

'अवश्यभावित्वाद्व्यवसेयम्'

अर्थात्—गोशालक के द्वारा सुनक्षत्र और सर्वानुभूति का मरना अवश्य होनहार था इसलिये भगवान् ने उनकी रक्षा नही की । यदि रक्षा करने मे पाप होता तो टीकाकार यह स्पष्ट लिख देते कि 'जीवरक्षा में पाप होना जानकर भगवान् ने उनकी रक्षा नही की किन्तु टीकाकार ने ऐसा नही कहकर सुनक्षत्र और सर्वानुभूति को नहीं बचाने का कारण 'अवश्य होनहार' बतलाया है ।।१०।।

विहार करायां तो थारे (पिण) लेखे,
दोष तो कोई लेश न लागे ।
क्यों न विहार करायो स्वामी,
घात जाणता दोनां री सागे ।।अनु. 11।।

भावार्थ· वे लोग मरते जीव की रक्षा करने में पाप कहते हैं किन्तु किसी साधु को विहार कराने मे पाप नही मानते । इसलिये उनसे पूछा जाता है कि थोडी देर के लिये तुम्हारा कथन मान लिया जाय कि रक्षा करने में पाप होता है—ऐसा जानकर भगवान् ने उन दोनों साधुओं की रक्षा नही की । किन्तु साधुओं को विहार कराने मे तो तुम भी पाप नही मानते, फिर भगवान् ने उन दोनो साधुओ को वहा से विहार क्यो नही करा दिया ? क्योकि ज्ञानी होने के कारण उनको यह ज्ञान तो अवश्य था कि गोशालक की क्रोधाग्नि से इन दोनो की घात होने वाली है ।।११।।

जद कहे "निश्चय ज्ञान में देख्यो,
दोनां री घात यहां इज आई ।
जां सूं विहार करायो नाहीं,
भवितव्यता टाली नहीं जाई" ।।अनु. 12।।

भावार्थ :—तब वे कहते हैं कि भगवान् केवलज्ञानी थे । उन्होने अपने ज्ञान से जान लिया था कि सुनक्षत्र और सर्वानुभूति की घात गोशालक द्वारा यही पर होने वाली है । जो होनहार(भवितव्यता) होती है वह टाली नही जा सकती ।।१२।।

सरल भाव यों ही तुम शरधो,
अनुकम्पा में पाप न कांई ।
ज्ञानी ज्ञान देखे ज्यों बरते,
तिण री खंच करो मत भाई ।।अनु. 13।।

भावार्थ :—इसलिये उन लोगो से कहना है कि सरलभाव से तुम यही बात समझो कि 'होनहार' को जानकर ही भगवान् ने उन

दोनो साधुओ की रक्षा नही की थी किन्तु रक्षा करने मे पाप समझ-कर नही । केवलज्ञानी पुरुष जैसा अपने ज्ञान मे देखते हैं वैसा ही करते है इससिए उनके विषय मे किसी को खीचातान (दुराग्रह) नहीं करना चाहिये ।।१३।।

अनुकम्पा सावज थापण ने,
सूत्रपाठ रा अरथ ने ठेले ।
छः लेश्या छद्मस्थ वीर रे,
बोल मिथ्याती पाप को झेले ।।अनु. 14।।

भावार्थ —अनुकम्पा को सावद्य बतलाने के लिए वे लोग सूत्र के पाठो की उपेक्षा करके उनका विपरीत एव अपना मनमान अर्थ कर डालते हैं उन लोगो का कथन है कि छद्मस्थ अवस्था मे भगवान् महा-वीरस्वामी मे छ लेश्याएं थी । इस प्रकार छद्मस्थ वीर मे छ· लेश्याओ का कथन करके वे मिथ्यात्वी पाप का उपार्जन करते हैं ।।१४।।

किसन नील कापोत लेश्या रा,
भाव में साधुपणो नहीं पावे ।
प्रथम शतक पहले उद्देश,
वीर मे षट्लेश्या किम थावे ।।अनु. 15।।

भावार्थ :—सयमधारी साधुओ मे तेजो, पद्म और शुक्ल ये तीन भाव लेश्याए होती हैं, कृष्ण, नील और कापोत भाव लेश्याएं नही होती यह भगवती प्रथम शतक प्रथम उपदेश मे कहा है । इसलिये वहां का पाठ टीका के साथ लिखा जाता है .—

सलेस्सा जहा ओहिया किण्णहलेसस्स नीललेसस्स काउलेसस्स जहा ओहिया जीवा णवरं पमत्ता अपमत्ता न भणियव्वा । तेउलेसस्स पम्हलेसस्स सुक्कलेशस्स जहा ओहिया जीवा णवरं सिद्धा न भणियव्वा ।

(भगवती शतक १ उपदेशक १)

इसकी टीका इस प्रकार है:—

"लेस्साण भंते ! जीवा कि आयारभे" इत्यादि तदेव सर्व नवरं जीवस्थाने सलेश्या इति वाच्य, इत्ययमेको दण्डक: । कृष्णादि

लेश्या-भेदात् तदन्ये षट् तदेवमेते सप्त तत्र "किण्ह लेसस्स" इत्यादि कृष्णलेश्यस्स नीललेश्यस्स कापोतलेश्यस्स च जीवराशेर्दण्डको यथौघिक जीवदण्डकस्तथाऽध्यतव्य· प्रमत्ताप्रमत्तविशेषणवर्ज्यः "कृष्णादिषु हि अप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्व नास्ति' यच्चोच्यते "पुव्व पडिवण्णाओ पुण अण्णयरिए उ लेस्साए' त्ति तद् द्रव्यलेश्या प्रतीत्येति मतव्यम् । ततस्तासु प्रमत्ताद्यभाव. । तत्र सूत्रोच्चारणमेव "किण्हलेस्साण भते ! जीवा कि आयारभा परारभा तदुभयारंभा अणारभा ? गोयमा, आया रभा वि जाव णो अणारभा से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ ? गोयमा, अविरय पडुच्च" एव नीलकापोतलेश्यादण्डकावपीति तथा तेजोलेश्यादेर्जी-वराशेर्दण्डका यथौधिक जीवास्तथा वाच्या नवर, तेषु सिद्धा न वाच्याः सिद्धानामलेश्यत्वात् । तच्चैव 'तेउलेस्साण भते ! जीवा किं आयारंभा परारभा तदुभयारभा अणारभा ? गोयमा, अत्थेगइया आयारभावि जाव णो अणारभा । अत्थेगइया नो आयारभा जाव अणारभा । से केणट्ठेण भते एव वुच्चइ ? गोयमा, दुविहा तेउलेस्सा पण्णत्ता सजयाए असजयाए ।'

इस टीका के अनुसार मूलपाठ का अर्थ यह है :—

जीव दो प्रकार का होता है—एक सलेश्य और दूसरा अलेश्य। सलेश्य जीवो का वर्णन सामान्य जीवो के वर्णन के समान जानना चाहिये । कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले जीवो का वर्णन भी समुच्चय जीवो के वर्णन के समान ही जानना चाहिये परन्तु इनमे प्रमादी और अप्रमादी ये दो भेद नही होते क्योकि कृष्ण, नील और कापोत भाव लेश्याओं में संयतपना (साधुपन) नही होता । कही-कही साधुओ मे छः लेश्याओ का भी उल्लेख है वह द्रव्यलेश्या की अपेक्षा समझना चाहिए, भावलेश्या की अपेक्षा नही अतः कृष्ण नील और कापोत इन तीन भावलेश्याओ मे प्रमत्त और अप्रमत्तरूप दो भेद नही कहने चाहिए। कृष्णादि लेश्याओ मे सूत्र का उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए— 'कण्हलेस्साण भंते ! जीवा" इत्यादि ।

अर्थात्—हे भगवान् ! कृष्णलेश्या वाले जीव आत्मारम्भी परारभी और तदुभयारम्भी होते हैं या अनारम्भी होते हैं ?

उत्तरः—हे गौतम ! कृष्णलेश्या वाले जीव आत्मारम्भी परारम्भी और

तदुभयारम्भी होते हैं अनारम्भी नही होते ।

प्रश्न .—हे भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले जीव अनारम्भी नही होते किन्तु आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी होते हैं इसका क्या कारण है ?

उत्तरः—हे गौतम ! कृष्णलेश्या वाले जीव अव्रत की अपेक्षा से आत्मारम्भी परारभी और तदुभयारम्भी होते है, अनारम्भी नही होते । इसी तरह नील और कापोत लेश्या वाले जीवो को भी समझना चाहिए ।

तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या वाले जीवों के समान ही समझना चाहिये परन्तु इनमे सिद्ध जीवो को न कहना चाहिये क्योकि सिद्ध जीवो में कोई लेश्या नही होती ।

प्रश्न :—हे भगवान् ! तेजोलेश्या वाले जीव आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी होते हैं या अनारम्भी होते है ?

उत्तर:—हे गौतम ! तेजोलेश्या वाले कोई-कोई जीव आत्मारभी, परारम्भी और तदुभयारम्भी होते हैं, अनारम्भी नही होते और कोई-कोई अनारम्भी होते हैं । आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी नही होते ।

प्रश्न .—हे भगवन् ! तेजोलेश्या वाले जीवो मे ये दो भेद क्यों होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! तेजोलेश्या वाले जीव दो तरह के होते हैं, एक सयत और दूसरे असयत । सयत भी दो प्रकार के होते हैं-प्रमादी और अप्रमादी । अप्रमादी आत्मारंभी परारम्भी और तदुभयारम्भी नही होते अनारम्भी होते हैं परन्तु प्रमादी अशुभयोगी साधु अशुभ योग की अपेक्षा से आत्मारम्भी परारम्भी और तदुभयारम्भी होते हैं, अनारम्भी नही होते

यह भगवती सूत्र के उपरोक्त मूलपाठ और टीका का अर्थ है

इस पाठ में कहा है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले जीवों को ओघिक दण्डक के जीवों के समान ही समझना चाहिये परन्तु विशेष इतना है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओ में प्रमादी और अप्रमादी ये दो भेद नही होते ।

इस मूलपाठ की बात का अभिप्राय बतलाते हुए टीकाकार ने लिखा है कि:—

"कृष्णादिषु हि अप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्वं नास्ति"

अर्थात्:—कृष्ण, नील और कापोत इन भावलेश्याओ में साधु-पन नही होता । इसलिये कृष्णादि तीन अप्रशस्त भावलेश्याओ में प्रमादी और अप्रमादी ये दो भेद वर्जित किये गये है अतः साधुओ मे तेजो, पद्म और शुक्ल ये तीन प्रशस्त भावलेश्याएं ही होती है, कृष्णादि तीन अप्रशस्त भावलेश्याए नही होती हैं ।

उत्तराध्ययनसूत्र के चौतीसवे अध्ययन में लेश्याओं का विस्तृत वर्णन किया गया है । वहा इन लेश्याओ के धारक पुरुषो का वर्णन किया गया है । वे गाथाए ये हैं:—

पंचासवप्पमत्तो, तीहिं अगुत्तो छसु अविरओ य ।
तिव्वारम्भपरिणओ, खुद्दो साहसिओ णरो ॥21॥
निद्धंसपरिणामो, निस्संसो अजिइंदिओ ।
एय जोग-समाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे ॥22॥

अर्थः—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग रूप पांच आस्रवों का निरन्तर सेवन करने वाला मन, वचन, काया का असंयमी, छः काय की हिंसा में आसक्त, तीव्र आरंभ करने वाला अर्थात् सदा आरम्भ में मग्न रहने वाला एवं पाप के कार्यों में प्रवल पराक्रमी, क्षुद्र आत्मा वाला, क्रूर, अजितेन्द्रिय, सबका अहित करने वाला, इन लक्षणों से युक्त जीव को कृष्ण लेश्या वाला समझना चाहिये ।

इस्सा अमरिस अतवो, अविज्जमाया अहीरया ।
गेही पओसे य सढे पमत्ते, रस लोलुए ॥23॥

सायगवेसए य आरंभाओ अविरओ, खुद्दो साहस्सिओ नरो ।
एय जोग–समाउत्तो, नील-लेसं तु परिणमे ।।24।।

अर्थ.—ईर्ष्यालु कदाग्रही किसी भी प्रकार का तप न करने वाला अज्ञानी, मायावी निर्लज्ज, लपट, द्वेषी रसलोलुपी, शठ, प्रमादी, स्वार्थी आरम्भी क्षुद्र तथा पापकार्यों मे साहसी इन लक्षणो से युक्त जीव को नील लेश्या वाला समझना चाहिये ।

वंके वंक-समायारे, नियडिल्ले, अणुज्जुए ।
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छादिट्ठी अणारिए ।।25।।
उप्फालग दुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी ।
एय जोग–समाउत्तो, काऊलेसं तु परिणमे ।।26।।

अर्थ—कुटिल वचन बोलने वाला एवं कुटिल ही आचरण करने वाला, कपटी अभिमानी, अपने दोषों को छिपाने वाला, परिग्रही, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, चोर और मर्मभेदी वचन बोलने वाला, इन लक्षणो से युक्त जीव को कापोत लेश्या वाला समझना चाहिए ।

श्रीभगवती सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र के उपरोक्त मूलपाठ में यह स्पष्ट बतलाया गया है कि कृष्ण नील और कापोत इन तीन अप्रशस्त भावलेश्याओ मे सयतपना (साधुपना) नही होता । जब इन तीन अप्रशस्त भाव लेश्याओ मे साधुपना ही नही होता तब तीर्थङ्कर भगवान् श्री महावीर स्वामी मे छ लेश्याए कैसे हो सकती हैं ? अर्थात् नही हो सकतीं । उनमे सिर्फ तीन प्रशस्तभाव लेश्याए थी उनमें छः लेश्याओ का कथन करना शास्त्रविरुद्ध एवं मिथ्या है ।।१५।

'कषायकुशील' रो नाम लेईने,
अज्ञानी भोला ने भरमावे ।
मूल उतर गुण दोष न सेवे,
भाव माठी लेश्या किम पावे ।।अनु. 16।।
कषायकुशील भावलेश्या जो माठी,
होती तो अपडिसेवी क्यों कहता ।

इण लेखे द्रव्य लेश्या छः जाणो,
भावलेश्या शुद्ध भाव वदीता ।।अनु. 17 ।।

भावार्थः—वे लोग कहते हैं कि निर्ग्रन्थ के जो पांच भेद बतलाये गये हैं उनमे कषायकुशील निर्ग्रन्थ मे छः लेश्याओं का कथन किया गया है। वीर भगवान् भी कषायकुशील निर्ग्रन्थ थे इसलिये उनमे छः लेश्याएं थी। इस प्रकार कहकर वे अज्ञानी भोले जीवो को भ्रम में डालते हैं क्योंकि जहां कषायकुशील निर्ग्रंथ मे छः लेश्याओं का कथन किया गया है वहां द्रव्यरूप समुच्चय छः लेश्याएं कही गई हैं, भाव छ. लेश्याएं नही। कषायकुशील निर्ग्रन्थ मूलगुण और उत्तर-गुणो में दोष का अप्रतिसेवी कहा गया है अर्थात् वह मूलगुणो में और उत्तरगुणो में किसी प्रकार का दोष नही लगाता। फिर उसमें छः भावलेश्याएं कैसे पाई जा सकती हैं? मूलगुण उत्तरगुण के प्रति-सेवी निर्ग्रन्थ मे भी छः लेश्याए नही पाई जातीं तो अप्रतिसेवी कषाय-कुशील निर्ग्रन्थ मे छः लेश्याए कैसे पाई जा सकती है? इसलिये यह समझना चाहिए कि शास्त्र मे जहा कषायकुशील निर्ग्रन्थ मे छ. लेश्याओं का कथन किया गया है यह द्रव्य लेश्याओ की अपेक्षा से है। भाव-लेश्या की अपेक्षा तो उसमे तीन शुद्ध भाव लेश्याए ही पाई जाती हैं ।।१६-१७।।

'कषायकुशील' सामायिक चारित्रे,
छः लेश्या रो जो नाम आयो।
प्रथम शतक दूजे उद्देशे,
टीका में तिणरो भेद बतायो ।।अनु. 18।।
किसन नील कापोत लेश्या में
साधुपणो शुद्ध भावे न जाणो।
छः लेश्या तिण लेखे कहिये,
भावे तो तीनों ही शुद्ध पिछाणो ।।अनु. 19।।

भावार्थ:- कषायकुशील और सामायिक चारित्र में जो छः लेश्याओ का कथन किया गया है उसका स्पष्टीकरण श्रीभगवतीसूत्र के प्रथम शतक दूसरे उद्देशे की टीका में किया गया है कि कृष्णलेश्या,

नील लेश्या और कापोत लेश्या ये तीन अशुद्ध लेश्याएं हैं। इनमें साधुपन नही होता, साधुपने मे तो तीन शुद्ध भाव लेश्याएं ही होती हैं। इसलिये जहां छः लेश्याओ का कथन है वहा द्रव्य लेश्याओं की अपेक्षा से समझना चाहिये ।।१८-१९।।

तेथी छै लेश्या द्रव्य कहिये,
भावे तो तीनों ही शुद्ध पिछाणो ।
कषायकुशील अरु संजम मांही,
भाव खोटी लेश्या मत ताणो ।।अनु 20।।

छेदोपस्थान अरु सामायिक,
संयम छै लेश्या द्रव्य जाणो ।
यो ही न्याय मनःपर्यवज्ञाने,
भावे तो तीनों ही शुद्ध पिछाणो ।।अनु. 21।।

इण न्याय द्रव्य छै लेश्या पावे,
ज्ञानी न्याय जुगत से बतावे ।
डाह्या होय विवेक सूं तोले,
खोटी ताण से समकित जावे ।।अनु. 22।।

भावार्थः—कषायकुशील, छेदोपस्थापनीय चारित्र और सामायिक चारित्र, मन पर्यवज्ञान इन सब में तीन शुद्ध भाव लेश्याएं ही होती हैं किन्तु अशुद्ध भावलेश्याए नही होती। इस तरह विवेकपूर्वक समझना चाहिये। मिथ्यापक्ष का आग्रह करने से समकित का नाश होता है ।।२०–२१–२२।।

पुलाक पडिसेवन कुशील ने,
मूल उत्तरगुण दोषी भाख्या ।
ते (पिण) तीनूं भाव शुद्ध लेश्या में,
मूल पाठे सूतर में दाख्या ।।अनु. 23।।
बुक्कस पिण उत्तरगुण दोषी,
तीन भावलेश्या तिहां पावे ।

कषायकुशील तो दोष न सेवे,
खोटी लेश्या रा भाव क्यो आवे ।।अनु. 24।।

भावार्थ —निर्ग्रन्थ के पांच भेद कहे गये है । यथा.—पुलाक वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक । कुशील के दो भेद है–कषाय–कुशील और प्रतिसेवनाकुशील ।

पुलाक और प्रतिसेवनाकुशील को मूलगुण और उत्तरगुणों मे दोष लगता है और वकुश को उत्तरगुणो मे दोष लगता है फिर भी इनमे तीन शुद्र भाव लेश्याए ही होती है, यह सूत्र के मूलपाठ में कहा गया है । कषायकुशील को मूलगुणो मे और उत्तरगुणो मे किसी मे दोष नही लगता, फिर उसमे अशुद्ध भाव लेश्याए कैसे पाई जा सकता है ? इसलिये यह निष्कर्ष निकला कि साधुपने मे तीन शुद्ध भाव लेश्याए ही पाई जाती है । जहां छ लेश्याओ का कथन है वहा समुच्चय द्रव्य लेश्याओ की अपेक्षा समझना चाहिए ।।२३–२४।।

कल्पातीत अरु आगमविहारी,
छद्मस्थपणे प्रभु पाप न कीनो ।
आचारङ्ग नवमे अध्ययने,
केवलज्ञानी प्रकाश यूं दीनो ।।अनु. 25।।

अनुकम्पा कर गोशालो वचायो,
मन्दमती रे मन नहीं भायो ।
अछती छै लेश्या प्रभु रे लगाई,
अनुकम्पा द्वेषी आल चढ़ायो ।।अनु. 26।।

भावार्थ:—कल्पातीत और आगमविहारी तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी ने छद्मस्थ अवस्था मे किसी दोष का सेवन नही किया । यह बात आचाराङ्ग सूत्र के नौवे अध्ययन में कही गई है । गोशालक पर अनुकम्पा करके भगवान् ने उसके प्राण वचाये थे । ये लोग कहते हैं कि भगवान् ने गोशालक को वचाया यहा वे चूक' गये अर्थात् यह उन्होने गलती की । शास्त्र में स्पष्ट कहा है कि छद्मस्थ अवस्था में भगवान् ने किसी भी दोष का सेवन नहीं किया फिर भी

उन्हे चूका कहना उन पर मिथ्या दोषारोपण करना है। भगवान् पर मिथ्या दोषारोपण करने वाले लोगो को मिथ्यात्वी एव अनुकम्पा-द्रोही समझना चाहिये। ऐसा करके वे अपना अनन्त ससार बढाते है ॥२५-२६॥

—:❀❀:—

५—जिनरक्ष का अधिकार

संक्षिप्त कथा :—

चम्पा नगरी मे माकदी नाम का एक सार्थवाह रहता था। उसके जिनपाल और जिनरक्ष नाम के दो पुत्र थे। उन दोनों भाइयों ने ग्यारह वक्त लवण समुद्र मे यात्रा कर व्यापार द्वारा बहुत सा द्रव्य उपार्जन किया था। माता-पिता के मना करने पर भी वे दोनो लवण समुद्र मे वारहवी यात्रा करने के लिये रवान हुए। जब जहाज समुद्र के बीच में पहुचा तो बड़े जोर का तूफान आया जिससे वह नष्ट हो हो गया। जहाज का टूटा हुआ एक पाटिया उन दोनो भाइयों के हाथ लग गया, जिस पर बैठकर तैरते हुए वे दोनो रत्नद्वीप मे जा पहुचे। उस द्वीप की स्वामिनी रयणादेवी ने उन्हे देखा। वह उनसे कहने लगी कि तुम दोनो मेरे साथ कामभोग भोगते हुए यही रहो अन्यथा मैं तुम्हे मार दूगी। तब वे उस देवी के साथ कामभोग भोगते हुए वही रहने लगे।

एक समय लवण समुद्र के अधिष्ठायक सुस्थित देव की आज्ञा से वह देवी लवण समुद्र से तृण पत्र, कचरा अशुचि आदि साफ करने के लिये गई। पीछे अपनी इच्छानुसार घूमते हुए वे दानो दक्षिण दिशा के वनखण्ड मे गये। वहां जाकर दखा कि सैकड़ो मनुष्य की हड्डियो का ढेर लगा हुआ है और एक पुरुष शूली पर लटक रहा है। यह हाल देखकर वे बहुत घबराये और शूली पर लटकते हुए पुरुष से उसका वृत्तान्त पूछा। उसने कहा कि मैं भी तुम्हारी तरह जहाज टूट जाने से यहा आ पहुचा था। मैं काकन्दी नगरी मे रहने वाला घोड़ो का व्यापारी हू। पहले यह देवी मेरे साथ काम भोगती रही।

एक समय एक छोटे से अपराध के हो जाने पर इसने मुझे यह दण्ड दिया है। न मालूम यह देवी तुम्हे भी किस समय और किस ढङ्ग से मार देगी। पहले भी कई मनुष्यो को मार कर यह उनकी हड्डियो का ढेर कर रक्खा है।

यह सुनकर वे दोनो भाई बहुत भयभीत हुए और वहा से भाग निकलने का उपाय उससे पूछने लगे। उसने कहा कि पूर्व दिशा के वनखण्ड मे शैलक नाम का एक यक्ष रहता है। स्तुति व याचना करने से प्रसन्न होकर वह तुम्हे इस देवी के फदे से छुडा देगा। तब वे दोनो भाई यक्ष के पास जाकर उसकी स्तुति करने लगे और उस देवी के फन्दे से छुडाने की प्रार्थना करने लगे। उन पर प्रसन्न होकर यक्ष कहने लगा कि मैं तुम्हे तुम्हारे इच्छित स्थान पर पहुचा दूगा किन्तु मार्ग में वह देवी आकर अनेक प्रकार के हावभाव कर तुम्हे मोहित करेगी। उसके हावभावो को देखकर यदि तुम उसमे मोहित हो जाओगे तो मैं तुम्हे मार्ग मे ही अपनी पीठ से फैंक दूगा। यक्ष की इस शर्त को उन दोनो भाईयो ने स्वीकार किया। यक्ष ने घोडे का रूप बनाया और दोनों भाइयो को अपनी पीठ पर बैठाकर वह आकाशमार्ग से चला। इतने मे वह देवी आ पहुची। उनको वहा न देखकर उसने अवधिज्ञान से देखा कि वे शैलक यक्ष की पीठ पर बैठ-कर जा रहे हैं। वह शीघ्र वहा आई और अनेक प्रकार के हावभाव करने लगी। जिनपाल ने उसकी तरफ कुछ भी ध्यान नही दिया जिनरक्ष उसमे आसक्त होकर उसके हावभाव, मधुर शब्द आदि पूर्व कामचेष्टाओ को स्मरण कर रागपूर्वक वह उसकी तरफ देखने लगा तब 'समुप्पण्णकलुणभाव' अर्थात् प्रियावियोग से जिसको करुणरस पैदा हो गया है ऐसे जिनरक्ष को यक्ष ने अपनी पीठ पर से फेंक दिया। इसके पश्चात् मनुष्यो का घात करने वाली, द्वेप पूर्ण हृदय वाली उस रयणा देवी ने यक्ष की पीठ से गिरते हुए प्रियावियोग के करुणा-रस से युक्त उस जिनरक्ष को समुद्र में पहुचने से पहले ही रयणा देवी ने अपनी भुजाओं से ऊपर आकाश में फेंक दिया। पश्चात् अपने तीक्ष्ण शूल के ऊपर उसे रोप कर तीक्ष्ण तलवार से उसके टुकड़े-टुकडे कर दिये।

जिनपाल रयणा देवी के वचनो मे नही फसा इसलिये यक्ष

ने उसे आनन्दपूर्वक चम्पा नगरी मे पहुचा दिया । वहा पहुचकर जिनपाल अपने माता-पिता से मिला । कई वर्षों तक सासारिक सुख भोगकर उसने दीक्षा धारण की । कई वर्षों तक सयम का पालन कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ । वहा का आयुष्य पूरा कर महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगा ।

(ज्ञातासूत्र अध्ययन ९)

❀ ढाल ❀

(कहे) "जिनऋषि यह अनुकम्पा कीधी,
रेणादेवी सामो तिण जोयो ।
शैलक यक्ष हेठो उतारयो,
देवी आय तिण खड्ग में पोयो ।।
आ अनुकम्पा सावज जाणो ।।"

(अधु० ढाल १ गाथा १०)

भावार्थ .—तेरहपन्थियो की अनुकम्पा ढाल १ गाथा १० में लिखा है कि जिनरक्ष ने अनुकम्पा करके रयणादेवी की तरफ देखा जिससे शैलक यक्ष ने उसे अपनी पीठ पर से नीचे फेंक दिया । फिर देवी ने उसे तलवार मे पिरोकर मार डाला । यह अनुकम्पा सावद्य-पापकारी है ।

उत्तर—सूत्र विरुद्ध यों बात उठा केई,
अनुकम्पा सावज बतलावे ।
अनुकम्पा पाठ तिहां नहीं चाल्यो,
अज्ञानी झूठ रा गोल चलावे ।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ।।1।।
कलुणरसे' रयणा जद बोली,
जिनऋषियां रे कलुणरस आयो ।
कलुणपाठ ज्ञातासूतर में,
तो पिण भोला भरम फैलायो ।।अनु. 2।।

भावार्थ :—अनुकम्पा को सावद्य बतलाने के लिये उन लोगों का उपरोक्त कथन सूत्रविरुद्ध है । भोले प्राणियो को भ्रम मे डालने के लिये उन्होने एकदम सरासर झूठा कथन किया है, क्योकि जिनरक्ष को अधिकार ज्ञातासूत्र के नोवे अध्ययन में आया है । वहां 'अनुकम्पा' या करुणा शब्द नही है किन्तु 'कलुण' शब्द है । जैसा कि वहां पाठ है:—

"समुप्पण्णकलुणभावं"

अर्थात् जब रयणादेवो अपने प्रिय के वियोग से दुःखित होकर करुण विलाप करने लगी तव जिनरक्ष के हृदय में भी प्रिया के वियोग से 'कलुणरस' पैदा हो गया ।।१-२।।

कलुणरस अनुयोग दुवारे,
आठवो (रस) पाठ मे वीर बतायो,
प्रिय रो वियोग हुवां यो आवे,
ऐसो श्री गणधरजी गायो ।।अनु. 3।।

भावार्थ—अनुयोगद्वारसूत्र में श्री वीर भगवान् ने जहां नौ रसो का वर्णन किया है वहां आठवा रस 'करुणरस' वताया है । प्रिय का वियोग होने से यह रस उत्पन्न होता है ।।३।।

ऊइज रस जिनऋषियां रे आयो,
रेणादेवी रा वियोग थी पायो ।
दोनूं सूतर रो पाठ सरीखो,
लक्षण से भी तुल्य दिखायो ।।अनु. 4 ।।

भावार्थ· रयणादेवी के वियोग से यही कलुणरस जिनरक्ष के हृदय मे उत्पन्न हुआ था । अनुयोगद्वार मे और ज्ञातासूत्र में दोनों जगह 'करुणरस' यह समान पाठ है और दोनो जगह इसकी उत्पत्ति का कारणरूप लक्षण भी बराबर मिलता है । अनुयोगद्वार में प्रिय के वियोग से करुणरस की उत्पत्ति बताकर प्रिय के वियोग से अत्यन्त दुःखित स्त्री का उदाहरण दिया गया है । इसी प्रकार यहां पर भी

रयणादेवी के वियोग से जिनरक्ष के हृदय में करुणरस उत्पन्न हुआ था, अनुकम्पा उत्पन्न नही हुई थी । क्योकि वहा अनुकम्पा उत्पन्न होने का कोई कारण ही नही था बल्कि प्रिय के वियोग से उत्पन्न होने वाले 'करुणरस' की सामग्री वहां पूर्णरूप से मौजूद थी ॥४॥

मोह कलुणरस ने अनुकम्पा,
भेष धारयां ए झूठी गाई ।
शङ्का होवे तो सूतर देखो,
मत पड़ज्यो झूठा फंद मांई ॥अनु. 5॥

भावार्थ—वहां 'कलुण' पाठ है । उन भेषधारी मिथ्यावादियो ने उसे झूठमूठ ही 'अनुकम्पा' कहा है । यदि किसी को शङ्का हो तो वह ज्ञातासूत्र का पाठ देख सकता है । यो ही इन के झूठे फन्दे मे नही पडना चाहिए ॥५॥

ठाणाङ्ग दसवें ठाणा रे मांही,
अनुकम्पा दान प्रथम बतायो ।
कालुणी दान रो पाठ छै न्यारो,
अर्थ दोन्यां रो न्यारो दिखायो ॥अनु. 6॥

भावार्थ—ठाणाङ्गसूत्र के दसवे ठाणे मे दस जनो का वर्णन किया गया है । उनमे अनुकम्पादान प्रथम बतलाया गया है और 'कालुणि' अर्थात् कारुण्यदान चौथा बताया गया है । इस प्रकार अनुकम्पा और 'कालुणी' दान का अलग-अलग नाम है और इन दोनो का अर्थ भी अलग-अलग बताया गया है ॥६॥

'कलुण' (रस) 'अनुकम्पा' एक नहीं छै,
ज्ञातासूत्र रो भेद बतायो ।
अनुकम्पा, दया, रक्षा कहिये,
कालुण (रस) दुःख वियोग मे गायो ॥7॥

भावार्थ -कलुणरस और अनुकम्पा एक नही है । ये दोनों अलग-अलग है । मरते प्राणी की प्राणरक्षा करना, दु.खी प्राणी पर

दया करना अनुकम्पा कहलाती है। प्रिय का वियोग होने पर 'कलुणरस' उत्पन्न होता है। इसलिये ज्ञातासूत्र मे आये हुए-'कलुण' रस को 'अनुकम्पा' कहना अज्ञानियों का कार्य है ॥७॥

रातदिवस ज्यों दोनों ही न्यारा,
तो पिण मन्द भोला भरमावे ।
कलुणरस तो मोह मलिन है,
अज्ञानी अनुकम्पा में लावे ॥अनु. 8॥

भावार्थ—जिस प्रकार रात और दिन दोनो अलग-अलग हैं उसी प्रकार कलुणरस और अनुकम्पा दोनों ही अलग-अलग है क्योकि कलुणरस तो मोहमलिन है, अर्थात् प्रिय के वियोगरूप मोह से कलुण-रस की उत्पत्ति होती है और दुःखी प्राणी के दु.ख को देखकर दुःख मिटाने के लिये दयायुक्त जो शुद्ध परिणाम हृदय मे उत्पन्न होते हैं वह अनुकम्पा कहलाती है इसलिये करुणरस को अनुकम्पा कहना अज्ञानियो का कार्य है ॥८॥

आश्रव द्वार तीजा रे मांही,
दीन आरत रे कलुण बतायो ।
दूजे अङ्ग प्रथम श्रुतखंधे,
घणा अध्ययन में यो हीज आयो ॥अनु. 9॥

शोक आरत भावे कलुणरस है,
सूतर साख लेवो तुम धारी ।
कलुणरस, अनुकम्पा करुणा,
एक सरीखी न सूत्र उचारी ॥अनु. 10॥

भावार्थ—प्रश्नव्याकरणसूत्र के तीसरे आश्रव द्वार में वतलाया गया है कि प्रियवियोगादि के शोक से व्याकुल वने हुए प्राणी के हृदय मे करुणरस उत्पन्न होता है। यही वात सूयगडाङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध मे और वहुत से अध्ययनो मे कही गई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रिय के वियोगादि से व्याकुल वने हुए

प्राणी के हृदय में कलुणरस उत्पन्न होता है और मरते प्राणी की प्राणरक्षा करना अनुकम्पा-करुणा कहलाती है। सूत्र मे कलुणरस और अनुकम्पा को अलग-अलग वताया गया है। इसलिये रयणादेवी पर उत्पन्न हुए जिनरक्ष के कलुणरस को अनुकम्पा कायम करके अनुकम्पा को सावद्य बताना अज्ञानियो का कार्य है ॥९-१०॥

६-हरिणगमेषीदेव का अधिकार

संक्षिप्त कथा:—

भद्दिलपुर नाम का नगर था। वहा नाग नाम का एक गाथापति रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुलसा था। एक समय किसी एक ज्योतिषी से उसका भविष्यफल पूछने पर उसने वतलाया कि वह मृतवध्या है अर्थात् उसके पुत्र तो होगे किन्तु मरे हुए होगे। ज्योतिषी से यह जानकर सुलसा को बड़ा दुःख हुआ। उसने हरिणगमेशीदेव की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर वह देव आकर उपस्थित हुआ। सुलसा ने उसके सामने अपनी इच्छा जाहिर की। तव देव ने कहा कि तुम्हारे मरे हुए पुत्रों को जीवित करना यह शक्ति तो मेरे मे नही है, हा अलबत्ता इतना अवश्य कर सकता हू कि तुम्हारे मरे हुए पुत्रो को दूसरी माता के पास रखकर उसके अत्यत सुन्दर और रूपवान वालक लाकर तुम्हारे पास रख सकता हूं। सुलसा ने देव की वात स्वीकार करली।

भवितव्यता के प्रभाव में कुछ निमित्त योग ऐसा मिलता था कि जिस समय वसुदेव महाराज की रानी देवकी के पुत्र जन्म होता था उसी समय सुलसा के पुत्र जन्म होता था। तब वह हरिणगमेशीदेव सुलसा के मरे हुए पुत्र को लाकर देवकी के पास रख देता और देवकी के पुत्र को उठा कर सुलसा के पास रख देता था। इस तरह उसने देवकी के छः पुत्र सुलसा के पास पहुचा दिये और कस के भय से उन वालको को मुक्त कर दिया। इस प्रकार हरिणगमेशीदेवी ने अनुकम्पा करके छ वालको के प्राण वचाये। वे छः ही वालक चरम-शरीर (उसी भव मे मोक्ष जाने वाले) जीव थे। अतः बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

❀ ढाल ❀

हरिणगमेशी अनुकम्पा करने,
देवकी बालक सुलसा ने दीधा ।
चरमशरीरी छउ जीव बचिया,
संजम पालि ने हो गया सिद्धा ।।अनु. 1 ।।

भावार्थ.—हरिणगमेशीदेव ने अनुकम्पा करके देवकी के बालको को सुलसा के पास रख दिये । जिससे चरमशरीरी वे छहो जीव बच गये । पश्चात् दीक्षा लेकर छहो जीव मोक्ष मे गये ।।१।।

मन्दमत्यां रे मन नहीं भाया,
हरिणगमेशी ने पाप बतावे ।
आवण जावण रो नाम लेई ने,
अनुकम्पा ने सावज गावे ।।अनु. 2 ।।

भावार्थ:—रक्षा से जिनको द्वेष है ऐसे मन्दबुद्धि लोगों को यह बात पसन्द नही आई । इसलिये अनुकम्पा करके छः जीवो के प्राण बचानेरूप कार्य से हरिणगमेशीदेव को पाप होना बतलाते हैं । उन बालको की रक्षा के लिये हरिणगमेशीदेव ने आने जाने की जो क्रिया की थी उस क्रिया का नाम लेकर उसकी अनुकम्पा को सावद्य-पापकारी बतलाते हैं ।।२।।

आवण जावण री तो किरिया न्यारी,
अनुकम्पा परिणामां मे आई ।
जिनवन्दन देव आवे ने जावे,
वंदना सावज जिन ना बताई । अनु. 3।।

आवण जावण अनुकम्पा जो सावज,
वन्दना ने पिण सावज कहणो ।
आवण जावण वन्दना नहीं सावज,
अनुकम्पा पिण निरवद वरणी ।।अनु. 4।।

भावार्थ —आने जाने की क्रिया दूसरी है और अनुकम्पा का परिणाम दूसरा है। अतः आने जाने की क्रिया के कारण अनुकम्पा सावद्य नही हो सकती। जैसे तीर्थङ्कर भगवान् को वन्दना करने के लिये देव आते जाते हैं परन्तु आने जाने की क्रिया से तीर्थङ्कर भगवान् की वन्दना अलग है उसी तरह आने जाने की क्रिया दूसरी है और अनुकम्पा दूसरी है। इसलिये आने जाने की क्रिया के सावद्य होने पर भी अनुकम्पा सावद्य नही हो सकती। यदि कोई आने जाने की क्रिया के सावद्य होने से अनुकम्पा को सावद्य माने तो उसे आने जाने के सावद्य होने से तीर्थङ्कर भगवान् की वन्दना को भी सावद्य कहना चाहिये। परन्तु जिस प्रकार आने जाने की क्रिया से तीर्थङ्कर भगवान् की वन्दना सावद्य नही होती उसी तरह आने जाने की क्रिया से अनुकम्पा भी सावद्य नही हो सकती ॥३-४॥

मन्दमती ऊंधी शरधा सूं,
अनुकम्पा सावज बतलावे।
वन्दना ने तो निरवद केवे,
जाणे म्हारी पूजा उठ जावे ॥अनु. 5॥

भावार्थः—उन लोगो से पूछना चाहिये कि तुम्हारे भक्त लोग दूर-दूर से रेल मोटर आदि मे बैठकर तुम्हारे दर्शन करने के लिये आते हैं। बतलाइये, आपके दर्शन सावद्य है या निरवद्य ? तब तो झट से कह देते हैं कि हमारे 'दर्शन' तो निरवद्य है। भक्त लोगो के आने जाने की क्रिया अलग है और 'हमारेदर्शन' अलग हैं। इसलिये भक्त लोगो के आने जाने की क्रिया के सावद्य होने पर भी हमारे 'दर्शन' सावद्य नही होते।

यहा पर उनका एक स्वार्थ रहा हुआ है—वे जानते हैं कि यदि हम अपने दर्शनो' को सावद्य कह देंगे तो हमारे दर्शन करने कौन आयेगा ? इस तरह से हमारी सारी पूजा-प्रतिष्ठा और मान-सम्मान सब उठ जावेगे।

जिस प्रकार भक्त लोगों की आने जाने की क्रिया के सावद्य होने पर भी वे अपने-'दर्शन' को सावद्य नही मानते उसी तरह से

आने जाने की क्रिया को सावद्य होने पर भी हरिणगमेशीदेव की अनुकम्पा सावद्य नही है यह बात भी उन्हे सरल बुद्धि से माननी चाहिये ।।५।।

देव करी सुलसा री करुणा,
तेथी छेहूं बाल बचाया ।
कंस रा भय थी निरभय कीधा,
अभयदान फल देवता पाया ।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ।।6।।

भावार्थ —हरिणगमेशीदेव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके उसके दु ख की निवृत्ति की और उन बालको पर अनुकम्पा करके उनके प्राण बचाये थे । इस अनुकम्पा का यह फल हुआ कि छहो कस के भय से बच गये और हरिणगमेशीदेव को अभयदान का फल मिला । अत· हरिणगमेशोदेव को अनुकम्पा को सावद्य कहना अज्ञानता है ।।६।।

७—हरिकेशी मुनि का अधिकार

संक्षिप्त कथा:—

हरिकेशी मुनि का जन्म चाण्डाल कुल मे हुआ था । वे कुरूप थे । रूप की कुरूपता के साथ-साथ उनकी वाणी में बडी कटुता थी । इसलिये वे सबको अप्रिय लगते थे । यहा तक कि उनके कुटुम्वी लोग भी उनको अपने पास तक नही बिठाते थे । एक दिन उनके अपने जातीयभोज मे वे सब लोग एक साथ बैठकर भोजन कर रहे थे और हरिकेशी को अलग बिठाकर उन्हे वहीं भोजन परोस दिया था। उसी समय वहा एक सर्प निकल आया । उसको देखते ही चाण्डाल उस पर टूट पड़े और उसे जान से मार डाला । इसके थोडी देर बाद ही एक दूसरा सर्प (जिसे द्विमुखी यानी योगी कहते हैं) निकल आया उसको देखते ही उन सब चाण्डालो ने उसकी पूजा की । यह देखकर हरिकेशी के मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि इन दोनो का आकार एक

सरीखा है फिर क्या कारण है कि एक को तो इन लोगो ने जान से मार डाला और दूसरे की पूजा की। इस पर गहरा विचार करते हुए वे इस नतीजे पर पहुचे कि—पहले सर्प मे विष था इसलिये वह प्राणदण्ड को प्राप्त हुआ और दूसरा सर्प (द्विमुख–योगी) निर्विष है इसलिये लोगो ने इसकी पूजा की। उन्होने इस घटना का समन्वय अपने जीवन के साथ किया कि इस सर्प के समान मेरी वाणी मे भी कटुतारूपी विष भरा हुआ है। इसी से मैं सबको अप्रिय लगता हूं है। और लोग मेरा अनादर करते है। इसमे उनका कोई दोष नही है। मेरी आत्मा का ही दोष है। इस पर गहरा विचार करते–करते उन्हे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। तत्पश्चात् उन्होने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। दीक्षा लेकर हरिकेश मुनि अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगे। एक समय वे गोचरी के लिये ब्राह्मणों के पाड (मोहल्ले) में जहा ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे वहा गये। वहा जाकर वे उन ब्राह्मणो से भिक्षा की याचना करने लगे ब्राह्मणो ने मुनि का तिरस्कार किया और वे मुनि को वहा से हटाने की कोशिश करने लगे। तब.—

जक्खो तहिं तिंदुगरुक्खवासी,
　　अणुकम्पओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं,
　　इमाइ वयणाइमुदाहरित्था॥

(उतरा० अध्य० १२ गाथा ८)

भावार्थ :—तिंदुक वृक्ष पर निवास करने वाला उस महामुनि का अनुकम्पक यानी उनमे भक्तिभाव रखने वाला यक्ष अपने शरीर को छिपाकर यानी अदृश्य रखता हुआ मुनि के शरीर मे प्रविष्ट होकर उन ब्राह्मणो को उपदेश देने के लिये इस प्रकार वचन कहने लगा:—

समणो अहं संजओ बंभयारी,
　　विरओ धणपयणपरिग्गहाओ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले,
　　अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि॥9॥

वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जइ य,
अन्नं पभूयं भवयाणमेयं।
जाणाहि मे जायणजीवणु त्ति,
सेसावसेसं लहओ तवस्सी ॥10॥

(उत्तरा० अध्य० १२ गाथा ९–१०)

अर्थात्—मैं श्रमण हूं और संगत यानी सर्व सावद्य कार्यों से निवृत्त हुआ हूं, मैं ब्रह्मचारी और धन पचन-पाचन तथा परिग्रह से रहित हूं। गृहस्थ लोग अपने भोजनार्थ जो अन्न बनाते हैं उसी अन्न की भिक्षा के लिये भिक्षा के समय मैं आपके यहां आया हूं। आपके इस यज्ञस्थान मे प्रचुर अन्न अन्य लोगो को दिया जाता है और खाया जाता है तथा खिलाया जाता है। यह सब अन्न आप लोगो का ही है। मैं भिक्षाजीवी तपस्वी हूं इसलिये आपके यहा जो बचाखचा अन्न हो वह मुझे दीजिये।

इस तरह यक्ष ने मुनि को भिक्षा देने के लिये ब्राह्मणों को बहुत समझाया किन्तु उन्होने भिक्षा न दी। प्रत्युत उन ब्राह्मणों के लडके वेत से, डंडे से और कोड़े से मुनि को मारने लगे। कौशल देश के राजा की पुत्री भद्रा जो उस समय वहा उपस्थित थी और जिसे मुनि के उग्रपत और त्याग का परिचय था, उसने भी उन ब्राह्मणकुमारों को ऐसा करने से मना किया। फिर भी वे न माने तब उस यक्ष को क्रोध आ गया। जिससे मुनि को मारने वाले उन ब्राह्मणकुमारों को वह भी मारने लगा जिससे वे ब्राह्मणकुमार मुख से रुधिर का वमन करते हुए औंधे मुंह धरती पर गिर पडे। यह हाल देखकर वे ब्राह्मण बहुत घबराये। अपनी गल्ती के लिये वे मुनि से क्षमायाचना करने लगे। तब यक्ष ने उन ब्राह्मणकुमारों को ठीक कर दिया।

मुनि ने उन ब्राह्मणो से कहा कि हे विप्रो ! यह सारा कार्य यक्ष ने किया है। मुझे तो पहले भी तुम्हारे प्रति किञ्चिन्मात्र द्वेष नहीं था और न अब है।

उग्रतप का आचरण करते हुए मुनि विचारने लगे। बहुत

समय तक सयम का पालन कर समस्त कर्मों का क्षय करके हरिकेशी मुनि मोक्ष मे पधार गये ।

❀ ढाल ❀

हरिकेशी मुनि गोचरी आया,
ज्यां री निन्दा ब्राह्मण कीनी ।
जक्षदेव अनुकम्पा मुनि रो,
शास्तरयुक्त समझ बहु दीनी ॥अनु. 1॥

भावार्थ —हरिकेशी मुनि गोचरी के लिये आये तब ब्राह्मणो ने उनकी निन्दा एव तिरस्कार किया । तब उन महामुनि के अनुकम्पक यानी उनमे भक्तिभाव रखने वाले यक्ष ने उन्हे शास्त्रानुकूल बहुत उपदेश दिया ॥१॥

अनुकम्पा थी धर्म बतायो,
मूलपाठ रा वचन है सीधा ।
मन्द कहे अनुकम्पा रे कारण,
❀रुधिरवमन्ता ब्राह्मण कीधा ॥अनु. 2॥

भावार्थः—अनुकम्पा करके यक्ष ने उन ब्राह्मणों को धर्मोपदेश दिया था । यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के मूलपाठ में कही गई है । वे मूलपाठ की गाथाएं यहां कथा मे लिखी गई हैं । शास्त्र की ऐसी सरल और सीधी बात होते हुए भी वे मन्दबुद्धि कहते हैं कि:— 'अनुकम्पा करके यक्ष ने ब्राह्मणो को रुधिरवमन्ता किया था अर्थात् उन्हे मारा पीटा था ॥२॥'

❀ जैसा कि वे कहते हैं: -

यक्ष रे पाडे हरिकेशी आया, अशनादिक त्यां ने नही दीधा ।
यक्ष देवता अनुकम्पा कीधी, रुधिरवमन्ता ब्राह्मण कीधा ॥
(अनुकम्पा ढाल १ गाथा १३)

अनुकम्पा रा द्वेषी वेषी,
मिथ्या बोलता मूल न लाजे ।
ज्ञानी सूतर–पाठ दिखावे,
अज्ञानी जव दूरा भाजे ।।अनु. 3।।

भावार्थ:—अनुकम्पा के द्वेपी उन लोगों को इस प्रकार सफेद झूठ बोलते हुए जरा भी शर्म नही आती । जव शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् पुरुष उन्हे शास्त्र का मूलपाठ दिखाते हैं तो वे मुह छिपाकर दूर भागने लगते है । ३।।

सांचा हेतु जक्ष सुणाया,
(जद) ब्राह्मण वालक मारण आया ।
राजकुमारी भद्रा वारचा,
तो पिण मूढ नहीं शरमाया ।।अनु. 4।।

भावार्थ:–यज्ञ ने शास्त्रानुकूल एवं युक्तियुक्त वचन कहकर उन ब्राह्मणो को वहुत समझाया । किन्तु वे न समझे वल्कि उन ब्राह्मणों के लडके और अधिक उत्तेजित होकर मुनि को मारने के लिये दौडे । उस समय राजकुमारी भद्रा ने भी उन्हें वैसा करने से मना किया फिर भी वे ब्राह्मणों के लडके न माने और मुनि को मारने लगे ।।४।।

यज्ञ देव ने कोप जो आयो,
कष्ट देई ब्राह्मण समझाया ।
कूटणहार ने जक्षे कूटचा,
शास्तर मांहे प्रगट वताया ।।अनु. 5।।
अनुकम्पा थी तो वचन उचारचा,
पिण न दया थी ब्राह्मण मारचा ।
भवजीवां ! तुमें सांचो शरधो,
अज्ञानी खोट वचन उचारचा ।।
अनुकम्प स वज मत जाणो ।।6।।

भावार्थ:—तब यक्ष को भी क्रोध आ गया जिससे उसने उन ब्राह्मणों को मारा-पीटा। यह मारनेरूप कार्य ब्राह्मणो पर क्रोध करके यक्ष ने किया था, मुनि पर अनुकम्पा करके नहीं। क्योंकि जहाँ मारने-पीटने की बात आई है वहां मूलपाठ में यह नही कहा है कि यक्ष ने मुनि पर अनुकम्पा करके ब्राह्मणों को मारा था। अत यक्ष का यह क्रोध के कारण हुआ था, अनुकम्पा के कारण नही। अनुकम्पा करके उसने ब्राह्मणो को उपदेश दिया था मारा नही था। इसलिये इस मारनेरूप कार्य के सावद्य होने पर भी इसके पहले जो यक्ष ने अनुकम्पा कर ब्राह्मणों को उपदेश दिया था वह अनुकम्पा का कार्य सावद्य नहीं हो सकता। अत: उत्तराध्ययन सूत्र की गाथा का नाम लेकर हरिकेशी मुनि पर यक्ष की अनुकम्पा को सावद्य कहना एकान्त मिथ्या भाषण पर भव्यजीवो-बुद्धिमानों को कदापि विश्वास न करना चाहिये ॥६॥

८—धारिणी राणी की गर्भ अनुकम्पा-विषयक अधिकार

संक्षिप्त कथा :—

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी बडी रानी का नाम नन्दादेवी थी। उसकी कुक्षि से उत्पन्न हुआ अभयकुमार नाम का पुत्र था। वह बडा बुद्धिमान् था।

श्रेणिक राजा की छोटी रानी का नाम धारिणी था। जब मेघकुमार का जीव उसके (गर्भवती की इच्छा) उत्पन्न हुआ। उसने अपना दोहला राजा से कहा। राजा ने अभयकुमार से कहा। अभयकुमार ने तेले की तपस्या करके अपने पूर्वभव के मित्रदेव की आराधना की। जिससे वह देव अभयकुमार के सामने उपस्थित हुआ। उसने उसके सामने अपनी इच्छा प्रकट की। तब देव ने वर्षाऋतु की विक्रिया की। आकाश मे सर्वत्र मेघ छा गये और छोटी-छोटी बूंदे गिरने

लगी । हाथी पर बैठकर रानी धारिणी राजा के साथ वन मे गई । वैभार पर्वत के पास वनक्रीडा करती हुई अपने दोहले को पूर्ण करने लगी ।

"तए णं सा धारणी देवी तंसि अकालदोहलंसि विणियंसि सम्म-णियदोहला तस्स गब्भस्स अणुकंपणट्ठायाए जयं चिट्ठइ जयं आसइ जयं सुवइ आहारंपि य णं आहारेमाणी नाइतित्तं नाइकडुयं नाइकसायं नाइअंबिलं णाइमहुरं जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थं तं देसे य काले य आहारं आहारेमाणी नाइचितं नाइसोगं णाइदेणणं णाइमोहं णाइभयं णाइपरित्तासं ववगयचितासोगमोहभयपरित्तासा भोयणछायणगंधमल्लालंकारेंहि तं गब्भं सुहं सुहेण वहइ ।"

(ज्ञातासूत्र अध्य० १)

अर्थ:—इसके पश्चात् वह धारिणी राणी उस अकाल दोहले को पूर्ण करके गर्भ की अनुकम्पा के लिये यतना (जयणा) के साथ खड़ी होती थी, यतना के साथ बैठती थी यतना के साथ सोती थी और जो आहार करती थी वह भी न अति तीखा, न अति कडुआ न अति कषैला, न अति खट्टा, न अति मीठा किन्तु देशकाल के अनुसार उस गर्भ के हितकारक, परिमित तथा पथ्य आहार खाती थी और अति चिन्ता अति शोक, अति दीनता, अति मोह, अति भय तथा अति त्रास नहीं करती थी । चिन्ता, शोक, मोह, भय और परित्रास से रहित होकर आच्छादन, गन्धमाल्य और अलङ्कारो से युक्त होकर सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करती थी ।

नौ मास पूर्ण होने पर रानी की कुक्षि से एक पुत्र का जन्म हुआ । गर्भावस्था मे रानी को मेघ का दोहला उत्पन्न हुआ था इस-लिये उस बालक का नाम मेघकुमार रक्खा गया । युवावस्था को प्राप्त होने पर आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह किया गया ।

एक समय भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक उद्यान मे पधारे । मेघकुमार भगवान् को वन्दना करने के लिये गया । भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया । जिसे सुनकर उसे

वैराग्य उत्पन्न हो गया । माता-पिता की आज्ञा लेकर उसने भगवान् के पास दीक्षा अङ्गीकार की । उसी दिन रात्रि के समय उनका बिछौना सबके अन्त मे होने के कारण आने जाने वाले मुनियो के पादसगठन से उन्हे नीद न आई जिससे अतिखेदित होकर वे दीक्षा छोडकर घर जाने का विचार करने लगे । दूसरे दिन प्रात काल भगवान् के पास आये । भगवान् ने उनके पूर्वभव का वर्णन किया और हाथी के भव मे सहन किये गये उस महान् कष्ट का परिचय कराया । जिससे उन्हे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया और वे सयम में अति दृढ हो गये । अनेक वर्षो तक सयम का पालन कर सलेखना सथारा सहित कालधर्म को प्राप्त होकर विजय नामक अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुए । वहा महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सयम लेकर मोक्ष जाएगे ।

❀ ढाल ❀

गभ री अनुकम्पा करो राणी,
धारणी अजतना सहु टारी ।
जयणा सूं बैठे ने जयणा सूं उठे,
खाटा मीठा भोजन तजे भारी ।।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ।।1।।

आपने गमता भोजन छोडयां,
गर्भ हितकारी भोजन करती ।
चिन्ता भय अरु शोक मोहादि,
दुखदाई जाणी परहरती ।।अनु. 2।।

भावार्थ—गर्भ की अनुकम्पा करके धारिणी रानी ने सब अयतना का त्याग कर दिया था । वह यतना से बैठती और यतना से उठती थी । अपने मनगमते (मनपसन्द) खट्टे, मीठे आदि भोजन को उसने छोड दिया था किन्तु वह गर्भ के हितकारी भोजन करती थी और उसने चिन्ता भय, शोक और मोहादि सबको छोड़ दिया था ।।१-२।।

ऊंधो-अर्थ करी कहे मूरख,

"धारणीजी अनुकम्पा आणी ।

आपने गमता भोजन खाया"

झूठ बात कुगुरु मुख आणी ॥अनु. 3॥

भावार्थ'—ज्ञातासूत्र का पाठ जो ऊपर दिया गया है उसका उल्टा अर्थ करके कितनेक मूर्ख यह कहते हैं कि 'गर्भ की अनुकम्पा लाकर धारिणी राणी अपना मनगमता (मनपसन्द) *भोजन करती थी ।' इस तरह वे मूर्ख मिथ्या भाषण करते है ॥

अनुकम्पा कर मोह त्याग्यो,

या तो पन्थी दीनी छुपाई ।

भोजन पण मनमाग्या न खाया,

मनमान्या खावा री झूठी उठाई ॥अनु. 4॥

भावार्थ—गर्भ पर अनुकम्पा करके धारिणी रानी ने मोह का त्याग कर दिया था, इस बात को उन पन्थियो ने छिपा ही दिया और धारिणी रानी ने मनमाना भोजन किया था । यह झूठी बात उठा कर उन्होंने खडी कर दी ।

दूसरी बात यह है कि गर्भ पर अनुकम्पा करके धारिणी रानी ने अयतना का त्याग किया था तथा चिन्ता शोक, मोह और भय को छोड दिया था, ऐसा मूलपाठ मे लिखा है । अत. तेरहपन्थियो से पूछना चाहिये कि धारिणी रानी ने जो अयतना तथा चिन्ता, मोहादि का त्याग कर दिया था—यह अच्छा किया था बुरा ? यदि अच्छा किया था तो धारिणी की गर्भ पर अनुकम्पा सावद्य कैसे हुई ? ॥४॥

---

*जैसा कि वे कहते है :—

मेघकुमार गर्भ मा हो हुंता मुख रे तई किया अनेक उपायो ।
धारणी राणी अनुकम्पा आणी, मनगमता अशनादिक खायो ॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥
(अनुकम्पा ढाल १ गाथा १४)

मोह त्याग्यो अनुकम्पा रे अर्थे,
तिण ने मोह अनुकम्पा बतावे ।
मत अन्धा होय झूठा बोले,
आंधा री लारे आंधा जावे ।।अनु. 5।।

भावार्थः—ऊपर बताये हुये शास्त्र के मूलपाठ मे स्पष्ट लिखा है कि गर्भ पर अनुकम्पा करके धारिणी रानी ने मोह छोड़ दिया था। इस अनुकम्पा को वे तेरहपन्थी लोग मोह अनुकम्पा बतलाते हैं। परन्तु जरा विचारने की बात है कि जिस अनुकम्पा के होने से मोह छोड़ दिया जाता है वह अनुकम्पा खुद ही मोह-अनुकम्पा हो यह कैसे हो सकता है ? किन्तु मतपक्ष मे अन्धे होकर वे इस प्रकार झूठ बोलते हैं और उनके भक्तलोग भी मतान्ध बनकर अन्धानुकरण करते जा रहे हैं ।।५।।

श्रावक रा पहला व्रत मांई,
पञ्चम अतिचारे प्रभु केवे ।
अशन समय भात पाणी न देवे,
(तो) अतिचार लागे व्रत नहीं रेवे ।।अनु. 6।।
भातपाणी छोडायां हिंसा,
(तो) गर्भ भूखे मारया किम धर्मी ।
अज्ञानी इतनो नहीं सोचे,
गर्भ री दया उठाई अधर्मी ।।अनु. 7।।

भावार्थः—शास्त्र के पाठ मे कहा है कि 'गर्भ पर अनुकम्पा करके धारिणी रानी गर्भ के हितकारी आहार खाती थी।' इस आहार खाने का नाम लेकर गर्भ की अनुकम्पा को सावद्य कहना भी अज्ञान है क्योंकि गर्भ का आहार गर्भवती के आहार के आधीन है। इसलिये यदि गर्भवती श्राविका भोजन न करे तो उसके पहले व्रत का 'भातपाणी विच्छेए' नामक पाचवा अतिचार लगता है। आपने आश्रित प्राणी को यथा समय आहारादि न देने से हिंसा लगती है तो गर्भस्थ जीव को भूखो मारने से धर्म कैसे हो सकता है ? गर्भ-अनुकम्पा को मोह-

अनुकम्पा कहकर अधर्मी एव अज्ञानी लोग गर्भ-अनुकम्पा को उठा रहे हैं ।।६–७।।

जो बालक ने नाय चुंखावे,
(तो) पहलो व्रत श्राविका रो जावे ।
(जो) गर्भ रे वाई भूखो मारे,
तो तप व्रत तिण रे किम थावे ।।अनु. 8।।

भावार्थ:—जो श्राविका अपने बच्चे को नही चंखाती है (स्तनपान नही कराती है) उसको पहले व्रत में अतिचार लगता है। इसी तरह जो गर्भवती श्राविका भोजन नही करती वल्कि गर्भस्थ जीव को भूखो मारती है उसको भी पहले व्रत मे अतिचार लगता है और उसके व्रत तप आदि कुछ नही होता ।।८।।

गर्भवती ने तपस्या करावे,
उपवासादि रो उपदेश देवे ।
गर्भ मरे तिण री दया नाही,
प्रगट अधर्म ने धर्म वे केवे ।।अनु. 9।।
गर्भ आहार माता रे आहारे,
भगवती मांही वीरजी भाषे ।
आहार छोड़ावे ते भूखां मारे,
वेषधारी दया दिल नहीं राखे ।।अनु. 10।।

भावार्थ·—जो लोग गर्भवती श्राविका को उपवासादि करने का उपदेश देते हैं और उसे तपस्या कराते हैं वे प्रत्यक्ष शास्त्र-विरुद्ध कार्य करा कर गर्भहिंसा के समर्थक वनते हैं। भगवतीसूत्र शतक १ उद्देशा ७ साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान् महावीरस्वामी ने फरमायाया है कि 'माता के आहार से गर्भ को आहार मिलता है।" इसलिये जो गर्भवती को उपवासादि कराकर उसका आहार छुड़ाते हैं वे गर्भस्थ बालक को भूखों मारते हैं। सम्यग्दृष्टि दयावान् पुरुष ऐसा कदापि नही करते किन्तु जिनके हृदय में दया नही ऐसे निर्दयी, भेषधारी ही ऐसा करते हैं ।।९-१०।।

गर्भ अनुकम्पा धारणी कीनी,
सूतर मांही गणधर गाई ।
दयारहित रे दया न आई,
ज्ञानी अनुकम्पा आछी बताई ॥अनु. 11॥

गर्भ ने दुःख न देणो कदापि,
समदृष्टि अनुकम्पा राखे ।
दोपद चौपद भूखों न मारे,
पहले व्रत न जिनवर भाखे ॥अनु. 12॥

भावार्थः—शास्त्र मे गणधरदेवो ने स्पष्टरूप से इस बात का उल्लेख किया है कि धारिणी रानी ने गर्भ पर अनुकम्पा की थी। किन्तु दया रहित लोगो को यह बात अच्छी नही लगा । ज्ञानी पुरुष तो अनुकम्पा को अच्छी ही बताते हैं ।

यह बात केवल गर्भ के लिये ही नही है किन्तु अपने आश्रित द्विपद चतुष्पद आदि प्राणियो को भी श्रावक भूखा नही मारते किन्तु उन पर अनुकम्पा रखते हैं अन्यथा श्रावक के पहले व्रत मे अतिचार लगता है । अत धारिणी रानी की गर्भअनुकम्पा को मोह अनुकम्पा और सावद्य अनुकम्पा बताना अज्ञानियो का कार्य है ॥११-१२॥

—:❀❀:—

९-कृष्णजी का वृद्धविषयक अनुकम्पा-अधिकार

संक्षिप्त कथा :-

द्वारका नगरी मे कृष्णवासुदेव राज्य करते थे । इनके छोटे भाई नाम गजसुकुमाल (गजसकुमार) था । एक समय बाईसवे तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि द्वारका के बाहर उद्यान मे पधारे । श्रीकृष्णवासुदेव अपने छोटे भाई गजसुकुमाल को साथ लेकर भगवान् की वाणी सुनकर गजसुकुमाल को वैराग्य उत्पन्न हो गया । माता-पिता की आज्ञा लेकर उन्होने भगवान् के पास दीक्षा ले ली । उसी दिन बारहवी भिक्खुपडिमा

अङ्गीकार करके वे श्मशानभूमि में ध्यान धर कर खड़े रहे। उसी समय उनका श्वसुर सोमिल ब्राह्मण उधर आ निकला। पूर्व वैर के जागृत हो जाने के कारण उसने गजसुकुमाल के शिर पर गीली मिट्टी की पाल बाँध कर खैर की लकडी के खीरे रख दिये, जिससे उनका शिर खिचडी की तरह सीझने लगा। गजसुकुमाल मुनि ने इस तीव्र वेदना को समभावपूर्वक सहन की और परिणामो मे किसी प्रकार चञ्चलता एवं कलुषता न आने दी। परिणामो की विशुद्धता के कारण उनको तत्क्षण केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो गये और वे मोक्ष में पधार गये।

दूसरे दिन कृष्णवासुदेव भगवान् को वन्दना करने के लिये जाने लगे। रास्ते मे उन्होंने एक बुड्ढे आदमी को देखा, जिसका शरीर जरा मे जीर्ण होने के कारण काप रहा था वह एक एक ईंट उठा कर अपने घर मे रख रहा था। उसे देखकर कृष्णजी के हृदय में अनुकम्पा उत्पन्न हुई और उन्होने अपने हाथो से एक ईंट उठाना था कि उनकी सेना ने वे सारी ईंटे उस बुड्ढे के घर पहुचा दी।

तत्पश्चात् उद्यान मे जाकर उन्होने भगवान् को तथा समस्त मुनियो को वन्दना की किन्तु नवदीक्षित मुनि गजसुकुमाल को वहां नही देखा तब उन्होने भगवान् से पूछा। भगवान् ने फरमाया कि हे श्रीकृष्ण! आते समय मार्ग में उस बुड्ढे पुरुष पर अनुकम्पा कर जिस प्रकार तुमने उसे साज (सहायता) दिया जिससे उसका कार्य शीघ्र पूरा हो गया। उसी प्रकार एक व्यक्ति ने मुनि गजसुकुमाल को साज दिया जिससे शीघ्र ही कर्मों का क्षय कर वे मोक्ष चले गये।

इस बात को सुनकर कृष्णवासुदेव का मन खिन्न हो गया। वे वापिस द्वारका में लौटने लगे। सयोगवश सोमिल ब्राह्मण उसी रास्ते से आ रहा था। सामने से कृष्ण वासुदेव को आते देखकर वह भय से आशङ्कित होकर धरती पर गिर पड़ा और तत्काल उसके प्राणपखेरू उड गये। इस घटना से कृष्णवासुदेव ने समझ लिया कि मुनि गजसुकुमाल को उपसर्ग देने वाला यही है। इसलिये उसके शव की दुर्दशा करवाई।

तत्पश्चात् कालान्तर मे विगतशोक होकर कृष्णवासुदेव

आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे।

❀ ढाल ❀

श्रीकृष्ण नेम ने वन्दन चाल्या,
बुढा ने अति ही दुखियो जाणी।
जीर्ण जरा थी थरथर कम्पे,
देखि ने मन अनुकम्पा आणी॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो॥1॥

उण री ईंट श्रीकृष्ण उठाई,
बूढ़ा रे घर निज हाथ पूगाई।
दुरगुणनाशक सद्‌गुणभासक,
अनुकम्पा री रीत दिखाई॥अनु. 2॥

भावार्थः—श्रीकृष्ण भगवान् नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) को वन्दना करने के लिये जा रहे थे। रास्ते में जरा जीर्ण, अति दुःखी और कापते हुए एक बुड्ढे को ईंटें उठाते हुए देखा। उसे देखकर कृष्णजी के हृदय मे अनुकम्पा उत्पन्न हुई। उन्होंने अपने हाथो से एक ईंट उठाकर बुड्ढे के घर रख दी। दुर्गुणों का नाश करने वाले और सद्‌गुणो को प्रकट करने वाले श्रीकृष्ण ने यह कार्य करके समस्त लोगों के सामने यह आदर्श उपस्थित कर दिया कि 'अनुकम्पा' ऐसी होती है॥१–२॥

मोह अनुकम्पा इणने बतावे,
अज्ञानी ऊंधा हेतु लगावे।
स्वार्थरहित अनुकम्पा धरम ने
सावज कहि-कहि जन्म गमावे॥अनु 3॥

ईंट तोकण जिन आज्ञा न देवे,
तिणसूं अनुकम्पा सावज केवे।
ऊंधी श्रद्धा थी ऊंधी सूझे,
तिण थी कुहेतु बहुला देवे॥अनु. 4॥

भावार्थ :—कितनेक अज्ञानी कृष्णजी की इस स्वार्थरहित अनुकम्पा को मोह–अनुकम्पा कहते हैं और कुहेतु लगाकर निर्मल अनुकम्पाधर्म को सावद्य-पापकारी बताकर अपने दुर्लभ मानवजन्म को नष्ट करते हैं। उन लोगो की श्रद्धा विपरीत होने के कारण वे यह कुहेतु देते हैं कि 'ईंट उठाकर रखने की भगवान् एवं साधु आज्ञा नही देते हैं इसलिये कृष्णजी की यह अनुकम्पा सावद्य है ॥३–४॥

अनुकम्पा परिणामां मे आई,
ईंट तोकण किरिया छै न्यारी ।
नेमवन्दन री मनसा जागी,
(तब) चतुरङ्गी सेना सिणगारी ॥अनु. 5॥

सेना री जिन आज्ञा न देवे,
वन्दनभाव तो निर्मल जाणे ।
(तिम) ईंट तोकणरी आज्ञा न देवे,
(पिण) अनुकम्पा जिन आछी वखाणे ॥6॥

भावार्थ :—इसका उत्तर यह है कि अनुकम्पा परिणामों में आती है और ईंट उठाने की क्रिया शरीर से होती है। ईंट उठाने की क्रिया भिन्न है और अनुकम्पा भिन्न है एक नहीं है। इसलिये ईंट उठाने की क्रिया के सावद्य होने से अनुकम्पा सावद्य नही हो सकती। श्री नेमिनाथ भगवान् के दर्शन एवं वन्दन करने के लिये जब कृष्णजी की इच्छा उत्पन्न हुई तब उन्होने चतुरंगिनी सेना सजाई थी। उस सेना सजानेरूप कार्य की भगवान् एवं साधु आज्ञा नही देते परन्तु तीर्थङ्कर के वन्दन को अच्छा जानते हैं। सेना सजानेरूप कार्य के सावद्य होने पर भी जैसे तीर्थङ्कर का वन्दन सावद्य नही समझा जाता क्योकि सेना सजाना दूसरा कार्य है और वन्दन करना उससे भिन्न है वैसे ही ईंट उठाकर रखने की भगवान् एव साधु आज्ञा नही देते परन्तु अनुकम्पा करने की आज्ञा देते हैं। इसलिये ईंट उठाने की क्रिया का नाम लेकर अनुकम्पा को सावद्य बताना मिथ्या है ॥५–६॥

वन्दन काजे सेना चलाई,
अनुकम्पा काजे ईंट उठाई ।

सेना चले वन्दन नही सावज,
अनुकम्पा ईंट थी सावज नांहीं ॥अनु. 7॥

भावार्थ —भगवान् को वन्दना करने लिये जैसे कृष्णजी ने सेना सजाई और चलाई वैसे अनुकम्पा के लिये उन्होने ईट उठाकर रक्खी । सेना के सजाने से तथा चलने जैसे वन्दना सावद्य नहीं होती वैसे ही ईट उठाने से अनुकम्पा सावद्य नही होती । यदि ईंट उठाने की क्रिया के कारण अनुकम्पा सावद्य हो तो फिर सेना सजाकर आने जाने की क्रिया के कारण भगवान् नेमिनाथ का वन्दन भी सावद्य होना चाहिये परन्तु जिस तरह सेना सजाकर आने जाने से वन्दन सावद्य नही होता उसी तरह ईंट उठाने से अनुकम्पा भी सावद्य नहीं होती ॥७॥

ऊंचगोत्र वन्दनफल भाख्यो,
उत्तराध्ययन गुणतीस रे माही ।
अनुकम्पा फल सातावेदनी,
भगवती सूत्रे जिन फुरमाई ॥अनु. 8॥

भावार्थ .—उत्तराध्ययन सूत्र के उन्नीसवे अध्ययन मे वन्दना का फल उच्च गोत्र बाधना कहा है और भगवतीसूत्र मे अनुकम्पा का फल साता वेदनीय कर्म का वन्ध वतलाया है । इसलिये ये दोनो ही कार्य अच्छे हैं । अनुकम्पा करना सावद्य नही है । अतः बुड्ढे पर की गई कृष्णजी की अनुकम्पा को सावद्य वताना अज्ञानियो का कार्य है ॥८॥

दोनों कारज आछा जाणो,
समदृष्टि रे आज्ञा मांई ।
भवछेदन (संसारपड़त) सकाम निर्जरा,
ज्ञातादिक सूतर में आई ॥अनु. 9॥

भावार्थ .—वन्दना और अनुकम्पा ये दोनों कार्य अच्छे हैं और समदृष्टि के ये दोनो कार्य भगवान् की आज्ञा में हैं । ज्ञातासूत्र मे मेघकुमार आदि का दृष्टान्त देकर यह वतलाया गया है कि इनसे

ससार-परिमित होता है और सकाम निर्जरा होती है ॥९॥

पुण्यवंधे अज्ञानी जन रे,
        अकाम निर्जरा ते पिण पावे ।
आगे चढ़तां समकित पावे,
        जद वो जिन आज्ञा में आवे ॥अनु. 10 ॥

भावार्थ --इन दोनों कार्यों से अज्ञानी जीवों के पुण्यवन्ध और अकाम निर्जरा होती है और वे आगे वढते हुए समकित को प्राप्त कर जिनाज्ञा मे आ जाते है ॥१०।

दुखिया दीन दरिद्री प्राणी,
        पंचेन्द्रिय जीवो ने मारण धावे ।
मास अर्थी भूख दु.ख रा पीड्या,
        वां अज्ञानी जीवो ने कोण चेतावे ॥अनु. 11 ॥

दयावन्त उपदेशे वारचा,
        अचित्त वस्तु देई कारज सारचा ।
पंचेन्द्रिय जीव रा प्राण वचाया,
        हिसक हिंसादि पाप ज टारचा ॥अनु. 12॥

भावार्थ .—भूख के दु:ख से पीड़ित दीन, दु:खी, दरिद्री, मासार्थी प्राणी मास के लिये पचेन्द्रिय जीवो की घात करते है उन्हे दयावान् ज्ञानी पुरुप उपदेश देकर या अचित वस्तु देकर उस हिंसा के कार्य से रोकते हैं जिससे उन पंचेन्द्रिय प्राणियों की प्राणरक्षा हो जाती है और हिंसक भी हिंसा के पाप से बच जाता है ॥११-१२॥

मूरख इण में पाप बतावे,
        ज्ञानी पूछे जब जवाब न आवे ।
जो हिंसा उपदेशे छुड़ावे,
        वाहिज साज देई ने छुड़ावे ॥अनु. 13॥

हिंसा छुटी दोनों ही ठामे,
जिण में फर्क न दीसे कांई ।
साज सूं हिंसा छुटी तिण मांही,
एकान्त पाप री कुमति ठेराई ।।अनु. 14।।

भावार्थ :—कितनेक मूर्ख अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि अचित्त वस्तु देकर प्राणियो की रक्षा करना पाप है । उनके हृदय मे दया नही है अथवा उनके हृदय मे पाप बसा हुआ है इसलिये उन्हें प्रत्येक कार्य मे पाप ही पाप दिखाई देता है किन्तु ज्ञानी पुरुष जब शास्त्र एवं युक्ति उनसे पूछते हैं तब उन्हे जवाब नही आता । उनसे पूछना चाहिये कि जो हिंसा उपदेश से छुडाई जाती है और जो हिंसा कोई अचित्त वस्तु देकर छुडाई जाती है इन दोनो में किसी तरह का फर्क नजर नही आता क्योकि इन दोनो कार्यों से हिंसा छुटती है फिर अचित्त वस्तु देकर हिसा छुडाने में एकान्त पाप कैसे हो सकता है ?

साज सूं हिंसा छूट्या मां ही पायो,
***तो घोड़ा दोड़ावण जुक्ति थी लायो ।**
चित्तश्रावक परदेशी राय ने,
केशी समण जद धर्म बतायो ।।अनु. 15।।

---

*जैसा कि वे कहते है :—

आय राजा ने इम कहे, साभलज्यो महारायजी ।
घोडा देश कमोद ना, मैं ताजा किया चरायजी ।।
धर्मदलाली चित्त करे ।।१।।

किणविध ल्यावे राय ने, साभलज्यो नरनारीजी ।
चित्तसरीखा उपगारिया, विरला इण ससारीजी ।।२।।

आप मोने सूंप्या हूता, ते देख लेज्यो चौड़ेजी ।
अवसर वरते एहवो, घोडा किसड़ा क दौडेजी ।।
धर्मदलाली चित्त करे ।।३।।

(परदेशी राजा की संघ ढाल १०)

घोड़ा दौड़ाई राजा ने ल्यायो,
इणमें तो धर्मदलालो बतावे ।
(तो) साज देई ने हिंसा छुड़ावे,
(जामें) पाप बतावतां लाज न आवे ॥अनु. 16 ॥

भावार्थ:—जो लोग किसी अचित्त वस्तु का साज देकर हिंसा छुड़ाने में पाप बताते है उनको समझाने के लिये यहा एक शास्त्र का उदाहरण दिया जाता है: राजप्रश्नीयसूत्र मे श्वेताम्बिका नगरी के राजा परदेशी का वर्णन है । वह राजा बडा अधर्मी और पापी था । उसके चित्त नाम का एक सारथि था, वह बारह व्रतधारी श्रावक था। उसने केशीश्रमण से प्रार्थना की कि हे भगवान् ! यदि आप राजा परदेशी को धर्म सुनावें तो स्वय राजा परदेशी को तथा उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो को, बहुत से श्रमण, माहण, भिक्षुको को और उसके सम्पूर्ण राष्ट्र को बहुत लाभ हो । चित्त सारथि की इस प्रार्थना को स्वीकार कर केशीश्रमण श्वेताम्बिका नगरी के बाहर उद्यान में पधारे । तब चित्त सारथि ने राजा परदेशी से कहा कि राजन् ! आपने जो घोडे शिक्षित बनाने के लिये मुझे सौपे थे वे अश्वसम्बन्धी शिक्षा प्राप्त कर तैयार हो गये है । आप उन्हे दौड़ाकर देख लीजिये । तब राजा घोडे दौडाने लगा तब घोड़ो को दौडाने के बहाने से चित्त सारथि राजा को उद्यान में केशीश्रमण के पास ले आया । केशीश्रमण ने राजा को धर्मोपदेश दिया जिससे उसने हिंसा वाले पाप-कार्मों का त्याग करके श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिये और धर्मध्यानपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा ।

चित्त सारथि घोडे दौड़ाने के बहाने से राजा को धर्मश्रवण के लिये मुनि के पास ले आया, यह उसने धर्मदलाली की । इसको वे लोग भी धर्मदलाली मानते हैं जैसा कि उन्होंने अपनी दसवी ढाल मे लिखा है । इसी प्रकार सहायता देकर हिंसा छुड़ाने मे भी धर्मदलाली होती है ऐसा उन्हे मानना चाहिये किन्तु वे इसे पाप कार्य बताते हैं यह उनकी उल्टी समझ है ॥१५-१६॥

सुबुद्धि प्रधान थो जितशत्रु राजा,
पाणी परिचय थी समझाणो ।

या पिण धर्मदलाली जाणो,

आरम्भ हुवो तो अलग पिछाणो ।।अनु. 17।।

भावार्थ :—ज्ञातासूत्र के बारहवें अध्ययन में बतलाया गया है कि सुबुद्धि प्रधान ने खाई मे से जल मगाकर अनेक क्रियाओ के द्वारा उसे शुद्ध किया और उससे जितशत्रु राजा को सच्चा स्वरूप समझाया। इसमे भी आरम्भ तो हुआ किन्तु राजा को सच्चा स्वरूप समझा कर श्रावक के बारह व्रत ग्रहण करवा कर जीवाजीव का ज्ञाता बनाने रूप धर्मदलाली भी हुई। यहा आरभ के कारण धर्मदलाली को पापकार्य नही कहा जा सकता क्योकि धर्मदलाली भिन्न है और आरम्भ भिन्न है ।।१७।।

गाजर मूला रो नाम लेई ने,

कुमति भोलां ने भरमावे ।

अचित्त देई मूलादि छुड़ावे,

जां री तो चर्चा मूल न लावे ।।अनु. 18।।

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक मूर्ख अनुकम्पा को बु[रा] बतलाने के लिये ऐसा दृष्टान्त देते हैं कि कोई भूखा आदमी है उ[स] पर अनुकम्पा करके उसे गाजर मूली खिला दी। यह अनुकम्पा साव[द्य] हुई या निरवद्य ? इस प्रकार कहने वालो को यह पूछना चाहिये [कि] कोई भूखा आदमी गाजर, मूली खा रहा है उसको किसी ने सिके हु[ए] अचित्त चने (भूंगडे) देकर गाजर, मूली छुडवा दी। अब बतला[ओ] इस अनुकम्पा में धर्म हुआ या पाप ? इस अनुकम्पा में भी तुम पा[प] मानते हो फिर गाजर, मूली का नाम लेकर भोली जनता को भ्रम [में] क्यो डालते हो ? दरअसल बात तो यह है कि तुम्हे तो अनुकम्पा [से] ही द्वेष है। इसलिये गरीब, दीन, अनाथ, दुखी प्राणियो पर [की] जाने वाली अनुकम्पा को तुम पाप बताते हो। इसलिये कुहेतु लगाक[र] दुनिया से अनुकम्पा को सर्वथा उठा देने के लिए तुमने कमर कस रक्ख[ी] है। किन्तु यह तुम्हारा अज्ञान है ।।१८।।

अचित्त सहाय अनुकम्पा जो होवे,

(तो) सचित्त समदृष्टि क्यां ने खवावे ।

ऊंधा हेतु अणहूंता लगावे,
ज्ञानी रे सामे जवाब न आवे ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥19॥

भावार्थ —यदि अचित्त वस्तु देने से ही किसी प्राणी की अनुकम्पा हो जाती होगी तो वैसी हालत में समदृष्टि पुरुष उसे सचित्त वस्तु क्यों देगा ? वह अचित्त वस्तु देकर ही उसकी अनुकम्पा कर देगा। किन्तु अनुकम्पा के द्वेषी लोग अनुकम्पा को बुरी बताने के लिये ऊंधे एव कुहेतु लगाकर भोली जनता को भ्रम में डालने का प्रयत्न करते हैं परन्तु ज्ञानी पुरुष जब उनसे पूछते हैं तब उन लोगो को जवाब नही आता और वे चुप हो जाते है ॥१९॥

१०–अधिकार धूप में पड़े हुए जीवों के संबंध में

तड़के तड़फत जीवां ने देखी,
दया लाय कोई छाया में मेले ।
अज्ञानी तिणमें पाप बतावे,
खोटा दांव कुगुरु यों खेले ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥1॥

भावार्थ : धूप मे तडफते हुए जीवो को देखकर कोई दयावान पुरुष दया से प्रेरित होकर उन्हें छाया में रख दे तो इस कार्य मे भी वे अज्ञानी पाप बताते है और यहा तक कहते हैं कि यदि यह कार्य साधु करे तो उसके *पाचो ही महाव्रत टूट जाते हैं । इस तरह उन्होंने अपनी ढालों में जोड रक्खा है ॥१॥

---

*जैसा कि वे कहते हैं :—

उपाडी ने जो मेल्ने छाया, असजती री वियावच्च लागे ।
या अनुकम्पा साधु करे तो, त्यांरा पाचो ही महाव्रत भागे ॥

वस्त्र मे उत्पन्न हुई जू वो का पोषण करते हो और नीचे गिरने पर उन्हे वापिस उठाते हो तब फिर तुम्हारी मान्यता के अनुसार तुम्हारे महाव्रत कैसे रह सकते हैं ।।७।।

दशवैकालिक चौथे अध्ययने,
त्रसजीवां अनुकम्पा काजे ।
साधु ने प्रभुजी विधि बतावे,
मूलपाठ में इणविध राजे ।।अनु. 8।।

उपासरा वली उपाधि मांही
त्रस जोव देख दया दिल लावे ।
रक्षा रे ठामे त्यांने मेले,
दुःख रे ठाम नहीं परठावे । अनु. 9 ।

भावार्थ—दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन मे मूलपाठ मे भगवान् ने त्रसजीवो पर अनुकम्पा करने की साधु को विधि बताई है कि अपने आश्रित उपाश्रय, वस्त्र, पात्र आदि उपाधि मे यदि कोई त्रसजीव दिखाई दे तो साधु उस पर दया लाकर उसको रक्षा के स्थान पर रख दे, दु ख के स्थान पर न रक्खे ।।८-९।।

जीव बचायां जो महाव्रत भागे,
(तो) शास्त्र में आज्ञा प्रभु किम देवे
भारीकर्मा लोगों ने भ्रष्ट करण ने,
दया में पाप मिथ्यात्वी केवे ।।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ।10।।

भावार्थ. यदि जीव बचाने से महाव्रत भग हो जाता होता तो भगवान् शास्त्र मे जीव बचाने की आज्ञा कैसे देते ? अत. जो अज्ञानी जीव बचाने मे पाप बताते हैं वे भोले लोगो को सच्चे सिद्धान्त से भ्रष्ट करते हैं ।।१०।।

११–अधिकार अभयकुमार की अनुकम्पा का

अभयकुंवर तप तेलो करने,
ब्रह्मचर्य सहित पोसो कर बैठो ।
पूरव संगति देव ने समरयो,
मन एकाग्रह राख्यो सेंठो ।।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ।।1।।

भावार्थ: मेघकुमार की कथा विस्तार के साथ पहले लिखी जा चुकी है । राजा श्रेणिक की रानी धारिणी के गर्भ मे जब मेघकुमार का जीव आया तब उसको यह दोहला उत्पन्न हुआ कि 'आकाश मे मेघ हो, पानी वरसे और जमीन पर हरियाली हो । जब मैं हाथी पर बैठकर वैभार पर्वत की तलहटी में आनन्दपूर्वक विचरण करु ।' इस अकाल मेघ के दोहले को मनुष्यशक्ति मे बाहर का समझकर श्रेणिक राजा के बड़े पुत्र अभयकुमार ने देवता की आराधना के लिये ब्रह्मचर्य सहित तीन दिन तक पोषधोपवास किया और मन मे पूर्वभव के मित्रदेव का स्मरण करता हुआ वह दृढचित्त होकर बैठ रहा ।।१।।

तीजे दिन रे कष्ट प्रभावे,
आसण चलतां देवता देखे ।
तेला री अनुकम्पा आई,
गुणानुरागी हुवो तप रे लेखे ।।अनु. 2।।

भावार्थ तप के तीसरे दिन तेले के प्रभाव से देवता का आसन चलित हो गया । अपने आसन को चलित देखकर देवता ने उपयोग लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि मेरा पूर्वभव का मित्र अभयकुमार मुझे याद कर रहा है । अभयकुमार के तपजनित कष्ट को देखकर उसके हृदय मे अनुकम्पा उत्पन्न हुई । जैसा कि मूलपाठ मे कहा है:—

"अभयकुमारमणुकंपमाणे देवे पुव्वभवजणिय नेहपीइबहुमाण जाय-सोगे ।

टीका:—हा ! तस्य अष्टमोपवासरूप कष्टं विद्यते इति विकल्पयन् ।'

अर्थात्—मेरे मित्र को अष्टमोपवास (तेला) जनित कष्ट हो रहा है यह सोचते हुए उस देव के हृदय मे पूर्वजन्म का स्नेह, प्रीति बहुमान (गुणानुराग) के स्मरण होने से मित्रविरहरूप खेद उत्पन्न हुआ। इस प्रकार अभयकुमार के कष्ट को देखकर देव के हृदय मे अनुकम्पा उत्पन्न हुई वह उनके तप का गुणानुरागी होकर तत्क्षण उनके पास आया और उनसे पूछकर उनकी इच्छानुसार कार्य करके:—

"अभयकुमारं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया मए तणप्पियट्ठयाए सगज्जिया सफुसिया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया :"

अर्थात्—देव अभयकुमार से इस प्रकार कहने लगा कि, हे देवानुप्रिय ! मैंने तुम्हारे प्रेम के लिए गर्जन विद्युत् (बिजली) और जलबिन्दु के साथ दिव्य वर्षाऋतु की शोभा उत्पन्न की है ॥

"अनुकम्पा कर बरसायो पाणी"
मिथ्यामती एवी भूठी भाखे ।
अनुकम्पा तो तप री आई,
इण रो तो नाम छिपाई ने राखे ॥अनु. 3॥

भावार्थ :—वे मिथ्यामति अज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि 'अभयकुमार की अनुकम्पा करके देव ने पानी बरसाया था ।' उनका यह कहना सरासर भूठ है क्योकि शास्त्र के मूलपाठ मे अभयकुमार की प्रीति के लिए पानी बरसाना कहा गया है, अनुकम्पा के लिए नही । अनुकम्पा तो अभयकुमार के तपजनित कष्ट को देखकर आई थी ॥३॥

जल बरसावण कारज न्यारो,
तिहां अनुकम्पा रो नाम न आयो ।
भूठा नाम सूतर रा लेई ने,
अनुकम्पा रो धर्म उठायो ॥अनु. 4॥

भावार्थ:—पानी बरसाने का कार्य अलग है और वहां 'अनुकम्पा' शब्द भी नहीं आया है तथापि अनुकम्पा उठाने के लिए झूठमूठ ही सूत्र का नाम लेते हैं ॥४॥

(तप) संयमी री अनुकम्पा करे कोई,
समण माहण पर प्रेम ज लावे।
उत्तरवैक्रिय कर गुणरागी,
दर्श उमङ्गधरी, देव आवे ॥अनु. 5॥

दर्शन, अनुकम्पा, गुणराग तो,
निर्मल श्रीमुख जिन फुरमावे।
वैक्रिय करण आवण जावण री,
क्रिया तो तिण थी न्यारी बतावे ॥अनु. 6॥

क्रिया योग गुणराग न सावज,
तिम अनुकम्पा सावज नांही।
सांचो न्याय सुणि मूढ़ भड़के,
खोटा पक्ष री ताण मचाई॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥7॥

भावार्थ :—जैसे गुणों मे प्रेम रखने वाले देव तप संयम से युक्त मुनि पर अनुकम्पा करके उत्तरवैक्रिय शरीर बना कर उनके दर्शनार्थ हर्ष के साथ उमङ्गपूर्वक आते है। उन देवों के गुणानुराग और मुनि पर अनुकम्पा तथा साधुदर्शन को स्वयं तीर्थङ्कर भगवान् अपने श्रीमुख से उत्तम बतलाते हैं और उत्तरवैक्रिय करना तथा आने जाने की क्रिया को उससे भिन्न बताते हैं। जिस प्रकार उत्तरवैक्रिय शरीर बनाने और आने जाने की क्रिया से गुणानुराग और साधुदर्शन सावद्य नहीं है उसी तरह आने जाने की क्रिया से अनुकम्पा सावद्य नहीं होती क्योंकि आने जाने की क्रिया भिन्न है और अनुकम्पा भिन्न है। अतः अभयकुमार पर देवता की अनुकम्पा को सावद्य कहना अज्ञान का परिणाम है।

अभयकुमार पर अनुकम्पा कर पानी बरसाने की बात तो बिल्कुल मिथ्या और शास्त्र के मूलपाठ से विरुद्ध है फिर भी खोटे मतपक्ष के आग्रह मे पड़कर जो मूर्ख शास्त्राविरुद्ध झूठी बात कहता है वह अनन्त ससार बढता है ।।१०।।

१२–अधिकार पशु बांधने छोड़ने का

(कहे) "साधु थी अनेरा त्रस जीवां ने,
अनुकम्पा थी बांधे न छोड़े ।*
चौमासी दण्ड साधु ने आवे,
गृहस्थ रे (पिण) पाप रो बन्ध चोड़े ।।1।।

अनुकम्पा सावज इण लेखे,
अज्ञानी यों बात उच रे ।
निशीथ पाठ रो अर्थ ऊंधो कर,
भोला डूबाया मिथ्या मझधारे । अनु. 2।।

न्याय सुणो हिवे निशीथ पाठ रो,
'कोलुणवडियां' त्रस जो प्राणी ।
डाभ मूंज चरमादि रे फांसे,
बांधे न छोड़े सूतर री वाणी ।।अनु. 3।।

---

* जैसा कि वे कहते हैं:

साधु बिना अनेरा सर्व जीवां री,
अनुकम्पा आणे साधु बाधे बधावे ।
तिण ने निशीथ रे बारहवे उद्देशे,
साधु ने चौमासी प्रायश्चित्त आवे ।।
आ अनुकम्पा सावज जाणो ।।
(अनु० ढाल १ गाथा २२)

भावार्थ: कई अज्ञानी कहते हैं कि साधु ने भिन्न दूसरे त्रसजीवों को अनुकम्पा से बाधे और छोडे तो उस साधु को चौमासी प्रायश्चित्त आता है । इसी प्रकार यदि गृहस्थ भी त्रसजीवो को बांधे और छोडे तो उसको भी पाप का बन्ध होता है । इसके लिये वे लोग निशीथ सूत्र के बारहवें उद्देशे का प्रमाण देकर इस अनुकम्पा को सावद्य बताते हैं किन्तु यह उनका अज्ञान है ।।१।।

निशीथ सूत्र का ऊंधा (विपरीत) अर्थ करके वे भोले लोगों को मिथ्यात्व मे डालते है । निशीथसूत्र के पाठ का न्यायसगत अर्थ इस प्रकार है:—वहा 'कोलुणवडिया' शब्द है, जिसका अर्थ है कि अनुकम्पा की प्रतिज्ञा होने मे मुनि त्रसजीवो को डाभ, मूंज और चमडे आदि की रस्सी मे न बावे और न छोड़े' ।।२—३।।

डाभ मूंज चरमादि रा फांसा
साधु रे पास में रेवे नाहीं ।
(तो) साधु इण फांसे किम बांधे,
पण्डित न्याय तोलो मन मांही ।।अनु 4।।

भावार्थ:—साधु के पास मे डाभ, मूंज, चर्मादि की रस्सी नही होती फिर साधु इन रस्सियो के द्वारा कैसे बाध सकता है ? पण्डित पुरुप न्यायपूर्वक इस वात का विचार कर सकता है और शास्त्र के पाठ का अर्थ ठीक तरह विठा सकता है । ४ ।

चूरणी भाष्य में न्याय बतायो,
सेजातर रा घर री या वातो ।
जिण री जागा में साधु उतरिया,
तहां ये जोग मिले साक्षातो ।।अनु. 5।।

साधु आचार सेजातर न जाणे,
जद वो साधु ने घर सभलावे ।
खेत खला रे कामे जातां,
बांधण छोड़ण पशु रो बतावे ।।अनु. 6।।

भावार्थ :—चूर्णी और भाष्य में इस बात का खुलासा इस प्रकार किया गया है कि जिसके मकान मे साधु ठहरते हैं वह शय्यातर कहलाता है। वहाँ इन बातो का यानी पशुओ को बांधने और छोड़ने का योग मिल सकता है। जो शय्यातर (उस मकान का मालिक) जैनसाधु के आचार-विचार को नही जनता वह अपने कार्य के लिए खेत आदि जाते समय अपने मान मे ठहरे हुए साधुओं से अपने घर की देखभाल रखने के लिये कहता है तथा पशुओ को बांधने और छोडने का काम भी बताता है ॥५-६॥

साधु कहे हम बांधां न छोड़ां,
गृहस्थ रा घर री चिन्ता न लावे।
तब तो मुनि ने प्रायश्चित नाहीं,
बांधे छोड़े तो अनुकम्पा जावे ॥अनु. 7॥

भावार्थ :—तब साधु उस शय्यातर को उत्तर देते हैं कि "हम जैनसाधु हैं, गृहस्थ के घर की चिन्ता करना तथा उसकी देखभाल करना हमारा आचार-विचार नही है। अतः हम पशुओं को बाधने छोडने का कार्य नहीं करते क्योंकि ऐसा करने से हमारी अनुकम्पा नही रहती ऐसा उत्तर देने पर साधु को कोई प्रायश्चित्त नहीं आता है ॥७॥

विशिष्ट ओगेणावन्त गवादिक,
त्रस जीवों रो अर्थ पिछाणो।
चूरणी भाष्य में अर्थ यो कीनो,
जूना कोई टब्बा में जाणो ॥अनु. 8॥

द्विन्द्रियादिक जीव तरस रो,
अशुद्ध टब्बा में अर्थ बतायो।
यो अर्थ मिलतो नहीं दीखे,
तिण से न्याय सुणो चित्त लायो ॥अनु. 9।

भावार्थ :—निशीथसूत्र के इस पाठ में जो 'त्रस' शब्द आया है उसका अर्थ 'विशिष्ट' अवगाहना वाले त्रसजीव अर्थात् गाय, भैंस

आदि समझना चाहिए । यही अर्थ चूर्णी, भाष्य और कई पुराने टव्वों मे किया है किन्तु किसी-किसी टव्वे मे यहां 'त्रस' शब्द से बेइन्द्रियादि का ग्रहण भी कर लिया है किन्तु यह अर्थ युक्तिसंगत नही है । इसका कारण ध्यानपूर्वक सुनिये ॥८-९॥

लट, कीड़ी ने माखी, माछर,
द्वीन्द्रियादिक जीव पिछाणो ।
(जांने) चाम, वेंत फांसे बांधण रो,
अर्थ करे ते मन्दमति जाणो ॥अनु. 10॥

अशुद्ध टव्वा री ताण करी ने,
नाहीं हृदय सूं न्याय विचारे ।
'टीका मे नहीं तो टव्वा में क्यां थी',
पोते पिण एहवी वाणी उचारे ॥अनु. 11॥

यो ही न्याय यहां पिण जाणो,
टीका विरुद्ध टव्बो मत ताणो ।
भाष्य चूरणी थी मिले ते तो सांचो,
विपरीत तो विपरीत वखाणो ॥अनु. 12॥

भावार्थः—लट, मक्खी, मच्छर आदि द्वीन्द्रियादि प्राणी कहे जाते हैं । इनको चमडे, वेत आदि की रस्सी एवं फांसे से बांधने की जरूरत नही होती और निशीथसूत्र के इस पाठ में त्रस प्राणियों को बांधने के लिये चमडे और वेंत आदि की रस्सी और फांसे बताये गये हैं । अतः यहा त्रस' शब्द से द्वीन्द्रियादिक प्राणियो का ग्रहण नही करना चाहिए किन्तु विशिष्ट अवगाहना वाले त्रस प्राणी अर्थात् गाय भैंस आदि का ही ग्रहण करना चाहिए । इसलिये यहां 'त्रस' शब्द से द्वीन्द्रियादिक का ग्रहण जिस टव्वे में किया है उसे अशुद्ध समझना चाहिए । उस अशुद्ध टव्वे की ताण (आग्रह) करके कितने ही अज्ञानी लोग उपरोक्त न्याय को हृदय मे नहीं विचारते किन्तु उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि उन्ही (तेरहपन्थियों) के आचार्य जीतमलजी भी यह बात कहते है कि.—

"टीका मे नही तो टव्वा मे क्यां थी आयो ।"

अर्थात्—जो अर्थ टीका मे नही है वह टव्वे मे कहा से आ सकता है ? यही न्याय उन लोगो को वहा पर भी समझना चाहिए और टीका से विरुद्ध टव्वे की ताण नही करनी चाहिए । जो अर्थ टीका, भाष्य और चूर्णी से मिलता हो उसे ठीक समझना चाहिए और जो इनसे विपरीत हो उसे ठीक नही समझना चाहिये ॥९-१२॥

'कोलुणवडिया' सूतर पाठ रो,
चूरणी भाष्य थी अर्थ विचारो ।
बांध्या छोड्यां अनुकम्पा न रेवे,
दोष लागे कीनो निरधारो ॥अनु. 13॥

भावार्थ. निशीथसूत्र मे जो 'कोलुणवडिया' शब्द आया है उसका अर्थ चूर्णी और भाष्य मे इस प्रकार बतलाया गया है—कोलुणवडिया अर्थात् अनुकम्पा की प्रतिज्ञा होने से साधु पशुओ को बांधे छोडे नही क्योकि पशुओं को बाधने छोडने से साधु की अनुकम्पा नही रहती । पशुओ को बाधने, छोडने से मुनि को दोष लगता है और अनर्थ की सम्भावना रहती है ॥१३॥

कुण कुण दोष बांधण मे लागे,
भाष्य, चूरणी, टव्वा मे देखो ।
आपणी पर र घात ज होवे
तिण रो बतायो इण विध लेखो ॥अनु. 14॥

भावार्थ :—पशुओ को बाधने में तथा छोडने मे कौन-कौनसे दोष लगते हैं और अपनी तथा दूसरो की घात किस प्रकार होती है जिसका खुलासा भाष्य, चूर्णी और टव्वा मे इस प्रकार बतलाया गया है:—

बांध्या थी पशु पीड़ा पावे,
आंटी खाय रखे मर जावे ।
अन्तराय बांध्या या लागे,
तड़फड़तो अति ही दुःख पावे ॥अनु. 15॥

पर री विराधना या वतलाई,

साधु घात री हिवे सुणो वातो ।

सींग थी मारे ने खुर थी चांपे,

क्रोध चढ्यो करे मुनि री घातो ।।अनु. 16 ।

भावार्थ —पशुओ को वाघने से प्रथम दोप तो यह है कि—कही आंटी खाकर मर न जाय, (२) अन्तराय लगे और (३) तड़फड़ता हुआ अति कष्ट पावे । इस प्रकार यह परविराधना वतलाई गई है । आत्मविराधना का खुलासा इस तरह किया गया है कि पशु को वाधते समय वह (१) मुनि को सीग से मार दे अथवा (२) खुर से कुचल दे और क्रोध से आकर मुनि की घात कर दे ।।१५-१६।

लोकां मे पिण लघुता लाये,

साधु होकर ढांडा वांधे ।

इण कारण चौमासी प्राछित,

(पिण) अज्ञानी तो ऊंधी साधे ।।अनु. 17।।

भावार्थ —उपरोक्त दोषो के अतिरिक्त यह एक दोप और भी वतलाया गया है कि गृहस्थ के पशुओ को वाधने और छोड़ने से प्रवचन की लघुता होती है अर्थात् गृहस्थ के पशुओ को वाधते और छोड़ते हुए साधु को देखकर लोग साधु की निन्दा करते हैं कि यह कैसा साधु है जो गृहस्थ की नौकरी करता है, गृहस्थ के घर के कामकाज करता है । इनका धर्म अच्छा नही है । इस प्रकार प्रवचन की निन्दा होती है ।

इस प्रकार भाष्य और चूर्णी में गाय आदि पशुओ को वाधने से अनर्थ होना वतला कर प्रायश्चित्त कहा है किन्तु उन पर अनुकम्पा करने से प्रायश्चित्त होना नही कहा है । इसलिये निशीथसूत्र के इस पाठ का नाम लेकर गाय आदि प्राणियो पर अनुकम्पा करने से प्रायश्चित्त वताना अज्ञानियो का कार्य है ।।१७।।

किण कारण मुनि छोड़े नांहीं,

तिण रो विवरो भाष्य मे देखो ।

छोड्यां नर परजीवां ने मारे,
कूवा खाड मे पड़वा रो लेखो ।।अनु. 18।।

चोर हरे, अटवी मे जावे,
सिंहादिक छूटा ने मारे ।
इत्यादि हिंसा रा दोष बताया,
साधु तो चोखे चित्त धारे ।।अनु. 19।।

छूटां सूं प्राणी दुःखिया होसी,
तो दयावान छोड़ण नहीं चावे ।
साधु तो अनुकम्पा रा सागर,
वे छोड़ण मन में किम लावे ।।अनु. 20।।

भावार्थः—बधे हुए पशुओ को छोडने में कौनसे दोष लगते है जिसका खुलासा भी भाष्य और चूर्णी मे किया गया है कि(१)"पशु को बन्धन से छोडने पर वह किसी को मारे, (२) वह स्वय कुए, खाई, गड्ढे आदि मे गिर पडे, (३) उसे चोर चुरा ले जाय, (४) जङ्गल में चला जावे, (५) जङ्गल मे चले जाने से सिंहादि उसे मार देवे" इत्यादि दोष बताये हैं। साधु तो करुणा के सागर होते हैं। पशुओ को छोडने से वे दुखित होगे, इस दृष्टि से वे पशुओ को नही छोड़ते हैं ।।१८–२०।।

बांधे छोड़े अनुकम्पा न रेवे,
तिणथी चौमासी प्राछित आवे ।
करुणा, दया, शान्ति ऋषि चावे,
तिण रो दण्ड मुनि नहीं पावे ।।अनु. 21।।

भावार्थ.—भाष्य और चूर्णी मे बतलाये गये उपरोक्त अनर्थों की सम्भावना से जहा पशुओ को बाधने और छोड़ने से अनुकम्पा नही रहती है उस अपेक्षा से चौमासी प्रायश्चित्त यानि जहा बाधने और छोड़ने से अनुकम्पा होती हो, बताया है और अनुकम्पा के स्थान वहा यदि साधु बाधे और छोड़े तो उसका प्रायश्चित्त साधु को नही आता

है क्योंकि साधु तो सदा करुणा, दया और शान्ति के इच्छुक रहते हैं ॥२१॥

अनुकम्पा लायां रो प्राछित केवे,
झूठा नाम सूतर रा लेवे ।
भाष्य सूतर, चूरणी टव्वा में,
कठे ही न चाल्यो तो पिण केवे ॥अनु. 22॥
अनुकम्पा रा द्वेषी वेषी,
झूठ नाम लेता नहीं लाजे ।
अज्ञान अन्धेरे स्याल ज्यों कूके,
ज्ञान प्रकाशे डर कर भाजे ॥अनु. 23॥

भावार्थः—जो लोग अनुकम्पा लाने मे प्रायश्चित्त कहते है वे झूठमूठ ही शास्त्र का नाम लेते है क्योंकि सूत्र, भाष्य चूर्णी और टव्वा आदि में कही पर भी अनुकम्पा लाने मे प्रायश्चित्त नही बतलाया गया है तथापि अनुकम्पा के द्वेषी, जैन साधु के भेष को धारण करने वाले वे शास्त्र का झूठा नाम लेते जरा भी नही शरमाते । वे अज्ञान रूपी अन्धकार मे पडकर गीदड की भाति बकते हैं परन्तु जब ज्ञानरूपी प्रकाश का उदय होता है तब गीदड की भाति दुम दबाकर भाग जाते हैं एव निरुत्तर हो जाते है ॥२२–२३॥

खाड में पडतां ने अग्नि में जलतां,
सिंह थी खाता साधु जाणे ।
साध दया वांधे छोड़े तो,
प्राछित नांही अर्थ प्रमाणे ॥अनु. 24॥

प्राचीन भाष्य अरु चूरणी मे,
करुणानुकम्पा करणी बताई ।
मरतां जाण वांधे अरु छोड़े,
इण विधि में कछु प्राछित नांहीं ॥अनु. 25॥

भावार्थ—जहां पशु खड्डे मे गिर कर, आग मे जल कर या

सिंह आदि जङ्गली जानवरों से मारा जाने की आशङ्का हो वहा साधु उन्हे बाधते और छोडते भी है । इस प्रकार जहां बाधे और छोड बिना गाय आदि प्राणियो की रक्षा नही हो सकती हो वैसे अवसर उन्हे बाधने और छोडने का विधान इसी जगह निशीथ सूत्र के भाष्य और चूर्णी मे किया गया है । वह भाष्य और चूर्णी इस प्रकार है —

कारणे पुण बंधमुयणं करेज्जा'
विनियपदमणपज्झे, बंधे अविकोवितेव अप्पज्झे ।
विसमगउअ गणिआउ, वणण्फगादीसु जाणमवी ।।

(भाष्य)

"आणपज्भो बंधई अविकोविओ वा सेहो, अहवा विकोविओ वा सेहो । अहवा विकोविओ अप्पज्भो इमेहिं कारणेहिं बंधंति विसमा अगडि अगणिऊसु मरिज्जिहि । इइ दुगादि सणफएण वा मा खज्जिहित्त एवं जाणाणा वि बधइ मुयइ ।"

अर्थात्—जहा पशु आग मे जलकर गड्ढे में गिर कर या जगली जानवरो से मारा जाकर मर जाने की आशङ्का हो वहा साधु उन्हे बाधते और छोडते भी हैं परन्तु बन्धन गाढ न होना चाहिये।

यह ऊपर लिखे हुए भाष्य और चूर्णी का अर्थ है । उपर्युक्त अवसर पर दया लाकर बाधने, छोडने और उसकी रक्षा करने से प्रायश्चित्त नही कहा है ।।२४-२५।।

त्रस अर्थ बेइन्द्रियादिक करने,
दया थी बांध्यां दोष बतावे ।
(पोते) पाणी में माखी ठर मुरझाई,
कपड़ा में बांधे ने मूरछा मिटावे ।।अनु. 26।।

मूरछा मिटयां सू छोड़ उडावे
तिण में तो ते पिण धर्म बतावे ।
(तो) अनुकम्पा थी बांध्यां छोडयां में,
पाप परूप के भेप लजावे ।।अनु. 27।।

भावार्थः—जो अज्ञानी द्वीन्द्रियादिक त्रस प्राणियो को बाधने में दोष बताते हैं वे ही स्वय अपने जल के पात्र मे पडकर शीत से मूर्च्छित हुई मक्खी को कपडे मे बाध कर उसकी मूर्च्छा मिटाते हैं और मूर्च्छा मिट जाने पर उसे छोडकर उडा देते हैं। इसको तो वे धर्म बताते हैं परन्तु अनुकम्पा से गाय आदि त्रस आदि प्राणियों को बांधने और छोड़ने मे पाप बतला कर अपने साधु भेष को लजाते हैं ॥२६-२७॥

साधु पिण त्रस जीव कहीजे,
कारण करुणा थी बांधे ने छोड़े ।
भेषधारयां रे अर्थ प्रमाणे,
पाप हूंसो वांरी शरधा रे जोड़े । अनु. 28 ।

'साधु ने करुणा थी वांध्या छोडयां में,
धर्म हुवे' यूं ते पिण बोले ।
अर्थ कहो यह क्यां थी लाया ?
सूतर पाठ मे तो नहीं खोले ॥अनु. 29॥

तब तो कहे म्हें जुगती से केवां,
पण्डित त्यांने उत्तर देवे ।
भाष्य, चूरणी, टब्बा री युक्ति,
क्यों नहीं मानो सुगुरु यों केवे ॥अनु. 30॥

भावार्थः—पागल हो जाने की अवस्था में साधु को अनुकम्पा लाकर वे लोग भी बांधते और छोड़ते हैं। जब वे त्रस प्राणियों को बाधने और छोडने मे पाप बताते है तो उनकी मान्यता के अनुसार पागल साधु को बांधने और छोड़ने मे भी पाप होना चाहिए क्योंकि साधु भी त्रस प्राणी है। परन्तु वे पागल साधु को अनुकम्पा से बाधने और छोड़ने मे धर्म बताते हैं तब उनसे पूछना चाहिए कि 'पागल साधु को बाधने में धर्म होता है ? यह अर्थ तुम कहां से करते हो क्योंकि निशीथ सूत्र के मूलपाठ मे तो ऐसा नहीं बतलाया है। वे इसका यह उत्तर देते हैं कि हम युक्ति से यह बात कहते हैं तब पण्डित पुरुष

उनसे कहते हैं कि जब युक्ति से यह बात कहते हो तब भाष्य, चूर्णी और टव्वा की युक्ति को तुम क्यों नही मानते ? निशीथ सूत्र की चूर्णी और भाष्य मे जो बात कही है उसका आप लोग भी मक्खी तथा साधुओं आदि पर व्यवहार करते हैं परन्तु गाय आदि के विषय मे इसे पाप कहने लगाते हैं यह आप लोगो का अज्ञान और मताग्रह के सिवाय और कुछ नही है ।।२८-३०।।

मन रे मते मतहीणा बोले

शुद्ध परम्परा सूत्र ने ठेले ।

माखो ने बांधे अरु छोड़े,

दूजा जीवां री कुयुक्ति क्यों मेले ।।अनु. 31।।

भावार्थ —वे अज्ञानी शुद्ध परम्परा और सूत्र के पाठ को छोडकर अपनी इच्छानुसार यत्किञ्चित् प्रलाप करते है क्योकि मक्खी को तो वे बाधते और छोडते हैं तो गाय आदि त्रस प्राणियो को बाधने और छोड़ने मे वे कुयुक्तिया क्यों देते है ?। ३१।।

सूत्र निशीथ उद्देशे द्वादश,

इण रे नाम थी द्वन्द्व मचायो ।

तिण कारण यो मैं कियो खुलासो,

सूत्र री सांचो अर्थ बतायो ।।अनु. 32।।

जिण बांध्या अनुकम्पा न रेवे,

तिण रो प्रायश्चित्त निश्चय जाणो ।

बांध्या छोड्यां जीव बचे तो

दण्ड नहीं तजो खेंचाताणो ।।

अनुकम्पा सावज मत जाणो ।।33।।

भावार्थ —निशीथसूत्र के बारहवें उद्देशे का नाम लेकर उसके मूलपाठ का जो लोग गल्त अर्थ करते हैं उनको उपर्युक्त कथन द्वारा सच्चा अर्थ बतलाया है कि जहा बाधने और छोडने मे अनुकम्पा नहीं रहती हो वहा साधु को प्रायश्चित्त आता है और जहा बाधने और

छोड़ने में त्रस प्राणी की रक्षा होती हो वहां बांधने और छोड़ने से साधु को कोई प्रायश्चित्त नहीं आता । इसलिए खींचातान को छोड़कर इस सत्य अर्थ को मानना चाहिए ॥३२-३३॥

१३-अधिकार व्याधि मिटावण विषयक

—:॰:—

व्याधि वहुत कोढादिक सुण ने,
वैद्य अनुकम्पा तिण री लावे ।
प्रासुक औषध दुःख मिटावे,
निर्लोभी ने पिण पाप बतावे ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥1॥

भावार्थ—कोई निर्लोभी वैद्य किसी को कोढादि व्याधि से पीडित जान कर उस पर अनुकम्पा करके प्रासुक औषधि से उसकी व्याधि को दूर करता है । परन्तु अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक अज्ञानी इससे वैद्य को पाप होना बतलाते हैं ॥१॥

दुःख न देणो तो पुण्य मे बोले,
दुःख मिटावा में पाप बतावे ।
दुःख मिटायो तिण दुःख न दीधो,
मन्दमति क्यों पाप लगावे ॥अनु. 2॥

भावार्थः—'किसी को दुःख न देना' इसमें तो वे लोग भी पुण्य मानते हैं किन्तु किसी के दुःख को दूर करने में वे पाप बतलाते हैं । यह कैसी उल्टी समझ है क्योंकि दुःख मिटाना भी दुःख न देना ही है । फिर वे अज्ञानी लोग इसमें पाप क्यों बतलाते हैं ?॥२॥

जैन रा देखो अङ्ग उपाङ्गो
वेद पुराण कुरान मे देखो ।

दु ख न देणो अरु दुःख मिटाणो,

दोना रो शुद्ध बतायो लेखो ।।अनु. 3।।

भावार्थ :—जेन के ग्यारह अङ्ग और बारह उपाङ्ग सूत्र में तथा वेद, पुराण और कुरान आदि सब धर्मशास्त्रो मे किसी जीव को दुःख न देना और किसी दु खी जीव के दुःख को दूर कर देना' इन दोनो कार्यो को शुद्ध एव उत्तम बतलाया है ।।३।।

दु ख मिटावा मे पाप घणे रो,

मन्दमति बिन दूजो न बोले ।

घोर अंधारी हिरदा में छायो,

भोलां ने नांख दिया भकझोले ।।अनु. 4।।

भावार्थ —अज्ञान रूपी अन्धकार से जिसका हृदय आच्छादित हो गया है ऐसे मन्दबुद्धि के सिवाय दूसरा कोई व्यक्ति यह नही कह सकता कि किसी के दु.ख को दूर करने मे बहुत पाप लगता है' इस प्रकार करने वाला स्वय अज्ञान रूपी अन्धकार मे पडा हुआ है और दूसरे भोले प्राणियो को भी अज्ञानान्धकार मे डालता है ।।४।।

दुःख देई कोई दु ख मिटावे,

तिण रो तो नाम मुख पर लावे ।

दु.ख दिया बिना दु.ख मिटावे,

इण रो नाम मन्द छिपावे।।अनु. 5।।

भावार्थः—'एक को दुःख देकर दूसरे के दुःख को दूर करना' इस बात को तो वे अज्ञानी मुख पर लाते हैं परन्तु किसी को दु.ख दिये बिना ही किसी के दु ख को मिटा देना इस बात को वे छिपाते हैं अर्थात् इस बात का वे जिक्र तक नही करते ।।५।।

साधुजी दूजा ने साता जो देवे,

पाप लगे अज्ञानी केवे ।

नारिभोग दृष्टान्त देई ने,

दुर्गुणी केई मिथ्या मत सेवे ।।अनु. 6।।

भावार्थ . वे अज्ञानी कहते हैं कि साधु के सिवाय किसी को साता उपजाने में पाप होता है । इसके लिए वे स्त्री भोग का दृष्टान्त देकर अपने मिथ्या मत का पोषण करते हैं अर्थात् वे ऐसा खोटा दृष्टान्त देते है कि—यदि प्राणियो के दुःख को दूर करने मे पुण्य होता है तो एक मनुष्य स्त्रीभोग के बिना दुःखी हो रहा है उसको स्त्री भोग देकर उस दुःख को दूर करने मे भी पुण्य होना चाहिए' इस प्रकार अयुक्त दृष्टान्त देते हैं । इसका उत्तर निम्न प्रकार है:—

नारीभोगे पंचेन्द्रिय हिंसा,

मोह उदीरणा दोनो रे होवे ।

यो दृष्टान्त दया (अनुकम्पा) रे जोड़े

जो देवे वो भव-भव रोवे । अनु. 7॥

भावार्थ —ज्ञानी पुरुष कहते है कि 'नारीभोग' मे पचेन्द्रिय प्राणियो की हिंसा होती है तथा स्त्री और पुरुष दोनो के मोह कर्म का उदय होता है । इसलिए 'नारीभोग' के दृष्टान्त की दया के साथ मे तुलना नही हो सकती । जो लोग अनुकम्पा को उठाने के लिए ऐसे खोटे दृष्टान्त देते है वे अनन्तकाल तक संसार मे गोते खाते रहते हैं ॥७॥

रोग छुड़ावण तिरिया सेवण,

दोनो ने कोई सरीख केवे ।

त्यां दुर्गुण रो भेद न जाण्यो,

खोटा हेतु कुपन्थी देवे ॥अनु. 8॥

भावार्थ :—जो कुपन्थी कुहेतु देकर नारीभोग को और किसी को रोगमुक्त करने को समान बतलाते है उन्होने दुर्गुण के भेद को नही समझा है ॥८॥

रोग तो वेदनी कर्म उदय मे,

नारीभोग मोह कर्म में जाणो ।

रोग मिटायां दुःख मिट जावे,

नारीभोग मोह वधवा रो ठाणो ॥अनु. 9॥

भावार्थ.—वेदनीय कर्म के उदय से रोग पैदा होता है और मोहनीय कर्म के उदय से भोग की इच्छा पैदा होती है। किसी का रोग मिटाने से तो उस प्राणी का दु ख मिट जाता है किन्तु नारीभोग से दु'ख मिटता नही, प्रत्युत दु.ख बढता है क्योकि नारीभोग से मोह-कर्म का बन्ध होता है और मोहबन्ध दु'खो का कारण है। इस प्रकार नारीभाग से दु खो की परम्परा बढती है किन्तु दु.ख घटते नही। इसलिए रोग मिटाने मे पाप बतलाने के लिए नारीभोग का दृष्टान्त देना महामूर्खों का काम है ॥६॥

रोग मिटावा में पाप घणेरो,
नारीभोग समान बतावे ।
माता रो भोग अरु रोग मिटावण,
तिण री श्रद्धा में सरीखो थावे ॥अनु. 10 ॥

भावार्थ --जो अज्ञानी यह कहते है कि रोग को दूर करने मे और नारीभोग करने मे समान पाप होता है तो उनकी इस श्रद्धा-मान्यता के अनुसार तो अपनी माता के रोग को दूर करना और उसके साथ भोग करना समान ही होगा ॥१०॥

कोई माता बेन रो रोग मिटावे,
कोई तिण थी भोग कुकर्मी चावे ।
दोनों पाप कर्म रा कर्त्ता,
तुल्य कहे ते धर्म लजावे ॥अनु. 11॥

भावार्थ —कोई अपनी माता और बहिन के रोग को दूर करे और कुकर्मी नीच उनसे भोग की इच्छा करे इन दोनो को जो समान पापकर्त्ता कहता है वह अपने धर्म को लजाता है और अपने आप को भी उसी की श्रेणी मे ले जाता है ॥११॥

लब्धिधारी री लब्धि प्रभावे,
रोग मिटे सूतर में बतायो ।
(पिण) लब्धिधारी मुनि रे प्रतापे,
पाप बधे यो कठेहि न आयो ॥अनु. 12॥

भावार्थ:—शास्त्र मे भगवान् ने फरमाया है कि लब्धिधारी मुनि की लब्धि के प्रभाव से रोगी का रोग दूर हो जाता है परन्तु यह कही पर नही बतलाया गया है कि लब्धिधारी मुनि को उस लब्धि के कारण पाप का बन्ध होता है ॥१२॥

दुःख छूटे मुनि रै परतापे,
या तो बात सभी जग जाणे ।
परस्त्री पाप मुनि परतापे,
ऐसी तो कोई मूरख माने ॥अनु. 13॥

भावार्थ:—लब्धिधारी मुनि के प्रताप से रोग मिटता है, दुःख दूर होता है यह तो सभी जानते हैं कि किन्तु लब्धिधारी मुनि के प्रताप से परस्त्री का पाप होता है ऐसा तो कोई मूर्ख ही मानता है ॥१३॥

दुःख मिटयो दुर्गुण में थे केवो,
तो साधु परतापे दुर्गुण मानो ।
साधु थी दुर्गुण बधतो न समझो,
तो रोग मिटयो दुर्गुण मे न जानो ॥अनु. 14॥

भावार्थ:—जो लोग दुःख मिटाने को दुर्गुण कहते हैं अर्थात् पाप मानते हैं उनकी मान्यतानुसार लब्धिधारी मुनि के प्रताप से दूर होने वाले दुःख को भी दुर्गुण—पाप मानना चाहिए परन्तु वे ऐसा नही मानते । जिस प्रकार लब्धिधारी मुनि के प्रताप से दुःख दूर होने मे वे पाप नही मानते उसी प्रकार किसी ने प्रासुक औषधि द्वारा किसी के रोग को मिटा दिया तो इसमे भी उन्हे पाप न समझना चाहिए ॥१४॥

जिण जिण देश तीर्थङ्कर जावे,
सौ-सौ कोसां रो दुःख मिट जावे ।
धान (रो) उपद्रव मूल न होवे,
'ईति' मिटण अतिशय यो पावे ॥अनु. 15॥

भावार्थः—समवायाग सूत्र के चौतीसवें समवाय मे तीर्थङ्कर भगवान् के चौतीस अतिशयो का वर्णन आया है । वहा बतलाया गया है कि जिस-जिस देश मे तीर्थङ्कर भगवान् विचरते हैं वहा उनके अतिशय से सौ-सौ कोस तक दु.ख नही रहता । अर्थात् ईति, भीति आदि कोई उपद्रव नही होता । टीड्डी, चूहे आदि से धान की फसल एव धान का नष्ट होना 'ईति' कहलाता है । तीर्थङ्कर भगवान् के सत्ताईसवें अतिशय के प्रभाव से सौ-सौ कोस कोस तक यह उपद्रव नही होता ।।१५।।

मिरगी रे रोग मनुज बहु मरता,
जिनजी गया मिरगी नही रेवे ।
लाखों मनुष्य मरण थी बचिया,
मिथ्याती इण ने दुर्गुण केवे ।।अनु. 16।।

भावार्थः—जहां मिरगी (प्लेग) के कारण बहुत से मनुष्य मरते हो वहाँ तीर्थङ्कर भगवान् के पधारने पर मिरगी नही रहती । मिरगी मिटकर सर्वत्र शान्ति हो जाती है और लाखो मनुष्य के प्राण बच जाते हैं । इसको दुर्गुण– पाप मिथ्यात्वी पुरुष ही बतला सकता है ।।१६।

देश री सेन्या देश ने मारे,
स्वचक्री नृप रो भय थावे ।
ए गुणतीस अतिशय प्रभावे
भीति (भय) मिटे जन शान्ति पावे ।।अनु. 17।।

भावार्थ देश की सेना अपने ही देश पर चढ आती है वह स्वचक्री राजा का भय कहलाता है । वहा तीर्थङ्कर भगवान् के पधारने पर वह भय मिटकर शान्ति हो जाती है । यह तीर्थङ्कर भगवान् के उनतीसवे अतिशय का प्रभाव है ।।१७।।

पर राजा री सेना आई,
देश लूटे वो दुःख अति देवे ।

प्रभु प्रतापे भय मिट जावे,
तीस अतिशय सूतर केवे ॥अनु. 18॥

भावार्थ:—एक देश के राजा की सेना दूसरे देश पर चढ़ाई करके आती है और उस देश की प्रजा को लूटती है और अनेक प्रकार से कष्ट देती है। यह परचक्री भय कहलाता है। वहा तीर्थङ्कर भगवान् के पधारने पर भय मिट कर प्रजा में शान्ति हो जाती है। यह तीर्थङ्कर भगवान् के तीसवे अतिशय का प्रभाव है ।।१८।।

अतिवर्षा बहु जन दुःख पावे,
नदी री बाढे जन घबराये ।
जिण देशे श्री जिनजी विराजे,
तिण देशे अतिवृष्टि न थावे ॥अनु. 19॥

भावार्थ:—अति वृष्टि अर्थात् अधिक वर्षा होने से नदियों में बाढें आ जाती है, जिससे लोग घबराते है और अनेक प्रकार का कष्ट पाते हैं किन्तु जिस देश मे तीर्थङ्कर भगवान् विराजते हैं उस देश मे 'अति वृष्टि' नही होती ॥१६॥

बिन वृष्टि दुःख जग में मोटो,
दुष्काले होवे धर्म रो टोटो ।
अतिशय द्वातिश मे प्रभु केरे,
सुभिक्षे शान्ति सुख मोटो ॥अनु. 20॥

भावार्थ:—वर्षा न होने से ससार में बड़ा दुःख होता है, दुष्काल पड़ जाता है। दुष्काल में धर्म की भी हानि होती है किन्तु जिस देश मे तीर्थङ्कर भगवान् विराजते है वहाँ यह 'अनावृष्टि' रूप उपद्रव नही होता प्रत्युत सुभिक्ष होता है जिससे प्रजा मे शान्ति छाई रहती है। यह तीर्थङ्कर भगवान् के बत्तीसवें अतिशय का प्रभाव है। २०॥

अनरथसूचक रक्त री वृष्टि,
यह उत्पात हुआ जिण देशे ।
चिन्तातुर दुखिया अति भारी,

कहो हिवे शान्ति होवे कैसे ॥अनु. 21॥

तिण काले श्री जिनजी पधारया,
विघ्न तुरत तित देशों रा टलिया ।
परतख गुण जिनजी रे जोगे,
जय जय बोले जन सहु मिलिया ॥अनु. 22॥

भावार्थ: जिस देश मे अनर्थसूचक रक्त की वृष्टि होती है जिससे मनुष्य चिन्तातुर होकर बहुत दु:खी होते हैं उस समय उस देश मे तीर्थङ्कर भगवान् के पधारने पर सब विघ्न तुरन्त दूर हो जाते हैं। तीर्थंकर भगवान् के प्रताप से यह प्रत्यक्ष गुण होता है । विघ्नो के शान्त हो जाने से प्रसन्न होकर सब लोग तीर्थंकर भगवान् की जय बोलते हैं ॥२१-२२॥

खांस, स्वांस, ज्वर, कोढ़, भगन्दर,
विविध व्याधि जिण देश में आई ।
प्रभु पग धरतां व्याधि न रेवे,
तत्क्षण शान्ति देश में छाई ॥अनु 23॥

भावार्थ —जिस देश मे खांसी, श्वास, ज्वर कोढ, भगन्दर आदि अनेक व्याधियो का प्रकोप हो रहा है । उस देश मे तीर्थंकर भगवान् के पधारने पर सब व्याधियाँ दूर होकर तत्क्षण सारे देश मे शान्ति छा जाती है ॥२३॥

समवायांग चौतीस में देखो,
यो वृत्तान्त तो पाठ में गायो ।
सौ सौ कोसां उपद्रव टलतो,
केवलज्ञानी आप बतायो ॥अनु. 24॥

भावार्थ· जो लोग समवायाग सूत्र के चौतीसवे समवाय मे केवलज्ञानी भगवान् ने उपरोक्त सारा वृत्तान्त बतलाया है । तीर्थंकर भगवान् जहा विराजते हैं वहां सौ-सौ कोसों में किसी प्रकार का उपद्रव नही होता ॥२४॥

टलियो उपद्रव दुर्गुण जाणो,
तो प्रभुजी रा जोग सूं दुर्गुण मानो ।
प्रभु जोगे दुर्गुण नहीं होवे,
तो मिटयो उपद्रव गुण मे वखानो ।।अनु. 25।।

भावार्थ:—जो लोग उपद्रव टल कर जीवो मे शान्ति होने को दुर्गुण कहते है । उनकी मान्यतानुसार तीर्थकर भगवान् के प्रताप से जो उपद्रव मिट जाते है उन्हे दुर्गुण मे मानना चाहिये । यदि वे ऐसा कहे कि तीर्थकर भगवान् के योग से दुर्गुण नही होते तो फिर उपद्रव मिटने को उन्हे गुण मानना चाहिये ।।२५।।

आरत रुद्र जीवो रा टले अरु,
प्रभु ऊपर शुद्ध भाव ज आवे ।
परतख लाभ यो दु:ख मिटयां सू,
प्रभु अतिशय गणधर फरमाठे ।।अनु. 26।।

भावार्थ.—उपद्रव मिटने से जीवो के आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान दूर हो जाते हैं और प्रभु पर शुद्ध भाव उत्पन्न होते हैं । दु:ख मिटने का यह प्रत्यक्ष लाभ है । यह तीर्थङ्कर भगवान् का अतिशय है ऐसा गणधर फरमाते है ।।२६।।

'रायपसेणी' सूतर मे देखो,
चित्त केशी मुनिजी ने बोले ।
परदेशी ने धर्म सुणायां,
किण ने गुण होसी विवरो खोले ।।अनु. 27।।

दोपद चौपद जीवो ने बहु गुण,
समण माहण भिखारी रे जाणो ।
देश ने प्रभुजी बहुगुण होसी,
तिण कारण प्रभु धर्म वखाणो ।।अनु. 28।।

भावार्थ:—रायप्रश्नीय सूत्र में श्रावक चित्त सारथि केशी स्वामी से अर्ज करता है कि 'हे भगवन् ! आप राजा परदेशी को

धर्म सुनाओ। राजा परदेशी को धर्म सुनने से किन-किन को गुण होगा जिसका विवरण मैं अर्ज करता हू। द्विपद, चतुष्पद जीवो को बहुत लाभ होगा उसी प्रकार श्रमण ब्राह्मण भिखारी यावत् सारे देश को बहुत लाभ होगा अर्थात् राजा द्वारा जो अन्याय किया जा रहा है उससे सारा देश का सन्तप्त हो रहा है। राजा को धर्म सुनाने से सारे देश सन्ताप दूर होकर शान्ति छा जायगी। अत हे भगवन ! आप राजा परदेशी को धर्म सुनाओ ॥२७-२८॥

जोव देश अरु समरण भिखारी,
राजा थी यांरो दु ख मिट जासी।
आरत मिटसी गुण मे भाख्यो,
जाण्यो जीव घणा सुख पासी ॥अनु. 29॥

भावार्थ:—'राजा की तरफ से जीवो को, श्रमण, माहण, भिखारी को यावत् सारे देश को जो दु ख दिया जा रहा है वह दूर हो जायगा, सब जीव सुखी हो जाएगे और उनका आर्त्त-रौद्र ध्यान मिट जायगा' इस प्रकार बहुत लाभ देख कर केशीस्वामी वहा पधारे और राजा परदेशी को धर्म सुनाया ॥२९॥

तिम रोग आरत मिटियो पिण गुण में,
भवि जीवां ! शङ्का मत आणो।
बिन स्वारथ थी वैद्य मिटावो,
तो तिण ने गुण निश्चय जाणो ॥अनु. 30।

भावार्थ.—इसी तरह रोगी का रोग मिट जाने से उसका आर्त्त ध्यान मिट जाता है यह गुण होता है। इसमे हे भव्यजीवो ! शङ्का मत करो। जो बिना स्वार्थ किसी को रोगमुक्त करता है उसको निश्चय ही गुण होता है ॥३०॥

वैद्य स्वारथबुद्धि आरम्भ ने,
गुण रो मुनि जन नाय वखाणे :
पर उपकारी दु ख मिटावे,
तिण मे एकान्त पाप न जाणे ॥अनु. 31॥

भावार्थ —जो वैद्य स्वार्थबुद्धि से या आरम्भादि करके किसी को रोगमुक्त करता है तो उसकी स्वार्थबुद्धि और आरम्भ को साधु गुण नही बताते हैं किन्तु पर-उपकार की बुद्धि से जो वह रोग मिटाता है उसको एकान्त पाप नही बतलाते हैं ।।३१।।

आरम्भ कर कोई (मुनि) वन्दन जावे,
अथवा स्वारथ बुद्धि आणे ।
आरम्भ स्वारथ गुण में नांही,
वन्दन भाव तो गुण में जाणे ।।अनु. 32।।

शुद्ध भाव और बिन आरम्भ थी,
मुनि वन्द्या अधिको फल पावे ।
तिम कोई रोगी रो रोग मिटावे,
वैद्यादिक गुण रो फल पावे ।।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ।।33।।

भावार्थ.—जैसे कोई पुरुष आरम्भ करके अथवा स्वार्थबुद्धि से मुनिवन्दन के लिए जावे तो उसका आरम्भ और स्वार्थबुद्धि गुण में नही है किन्तु उसका वन्दनभाव तो गुण मे है और जो पुरुष बिना आरम्भ और शुद्ध भाव से मुनिवन्दन को जाता है उसको उससे भी अधिक फल होता है । इसी प्रकार कोई वैद्य स्वार्थबुद्धि से अथवा आरम्भ करके रोगी का रोग दूर कर उसका आर्त्तध्यान मिटाता है तो उसकी स्वार्थबुद्धि और आरम्भ तो गुण मे नही है किन्तु रोगी का रोग दूर कर आर्त्तध्यान मिटाना गुण मे है और जो वैद्य बिना स्वार्थ केवल परोपकार बुद्धि से प्रासुक औषधि द्वारा किसी का रोग मिटाता है उसको उससे भी अधिक फल होता है ।।३३।।

१४—अधिकार साधु की लब्धि से साधु की प्राणरक्षा का

—:△:—

लब्धिधारी रा खेलादिक सूं,
सोले रोग शरीर सूं जावे ।
साधु ने रोग सूं मरता बचावे,
※ज्यां पुरुषां ने भी पाप बतावे ।।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ।।1।।

भावार्थ—लब्धिधारी मुनि के खेलादिक से अर्थात् थूक, खेखार आदि का रोगी के शरीर के साथ स्पर्श हो जाने पर श्वास, खासी आदि सोलह ही रोग दूर हो जाते हैं किन्तु कितनेक अज्ञानी कहते हैं कि "यदि इन रोगो से कोई साधु मर रहा हो तो उसे नही बचाना चाहिए । यदि लब्धिधारी मुनि के खेलादिक के स्पर्श से रोगी साधु की प्राणरक्षा हो जाय तो इससे लब्धिधारी मुनि को पाप लगता है" ।।१।।

अठारह पाप प्रभुजी भाख्या,
अनुकम्पा पाप कठेहि न चाल्यो ।
धेटा धर्म ने भ्रष्ट करण ने,
तो पिण धोचो कुगुरां धाल्यो ।।अनु. 2।।

※ जैसा कि वे कहते हैं :—
लब्धिारी रा खेलादिक सूं,
सोलह ही रोग शरीर सूं जावे ।
वले जाणे इण रोगा सूं साधु मरसी,
अनुकम्पा आणी नही रोग गवावे ।।
आ अनुकम्पा सावज जाणो ।।
(अनु. ढाल १ गाथा २५)

भावार्थ:—भगवान् ने अठारह पाप फरमाये हैं उनमें 'अनुकम्पा नाम का कोई पाप नही बताया गया है फिर भी कितनेक धृष्ट अज्ञानी 'अनुकम्पा' को पाप बतला कर सच्चे धर्म को कलंकित करते हैं। उन धृष्ट लोगों को जरा भी शर्म नही आती ॥२॥

लब्धिधारी रा खेल रे फरसे,
साधु रा रोग मिट्यां कुण पापो ।
साधु बचिया रो पाप बतावो,
तो खाणा पीणा में धर्म क्यों थापो ॥अनु. 3॥

भावार्थ:—उन लोगो से पूछना चाहिए कि लब्धिधारी मुनि के खेलादिक का स्पर्श होने से यदि साधु का रोग मिट कर उसकी प्राणरक्षा हो गई तो इसमे कौनसा पाप हुआ ? यदि साधु की प्राण-रक्षा को भी पाप बताते हो तो फिर तुम (साधु) लोग अपने खाने पीने को धर्म कैसे बताते हो ? तुम्हारी इस मान्यतानुसार तो तुम साधु लोगों का खाना-पीना भी पाप (अधर्म) ठहरेगा ॥३॥

लब्धिधारी रा शरीर रे फरसे,
रोग सूं मरतो साधु बचियो ।
लब्धिधारी ने पाप बतावे,
कुगुरु खोटो पाखण्ड रचियो ॥अनु. 4॥

भावार्थ—लब्धिधारी मुनि के शरीर के स्पर्श से रोगी साधु का रोग दूर होकर वह मरने से बच जाता है जिससे लब्धिधारी मुनि को पाप होता है ऐसा कहने वाले अज्ञानी लोगों ने संसार में पाखण्ड फैला रक्खा है ॥४॥

गुरु रा चरण शिष्य नित फरसे,
आवश्यक अध्ययन तीजा देखो ।
देह फरसियां धर्म बतायो,
आनन्द चरण फरसियां रो लेखो ॥अनु. 5॥

भावार्थ.—आवश्यक सूत्र के तीसरे अध्ययन मे बताया गया

है कि शिष्य हमेशा 'संफासं खमरिगज्जो मे' ऐसा कह कर गुरु का चरण स्पर्श करता है और चरण स्पर्श करने को धर्म बताया गया है। शास्त्रो मे आनन्द आदि के उदाहरण दिये गये है ॥५॥

लब्धिधारी री काया फरसे,
धर्म तो प्रभुजी प्रगट बतायो ।
फरसण वाला ने धर्म हुवो तो,
लब्धिधारी ने पाप क्यों आयो ॥अनु. 6॥

भावार्थः- लब्धिधारी मुनि के चरणस्पर्श करने से धर्म होता है यह भगवान् स्पष्ट बताया है जब चरणस्पर्श करने वाले को धर्म होता है तो तो फिर जिसके चरणस्पर्श किये गये है उस लब्धिधारी मुनि को पाप कैसे हो सकता है ? ॥६॥

उत्तराध्ययन ग्यारवें मांही
रोगी ने शिक्षा अजोग बतायो ।
लब्धिधारी रा चरण फरस ने,
रोग मिटयां शिक्षा गुण पायो ॥अनु. 7॥

भावार्थः- उत्तराध्ययन सूत्र के ग्यारहवे अध्ययन की तीसरी गाथा मे बतलाया गया है कि अभिमानी, क्रोधी प्रमादी, रोगी और आलसी यह पाच पुरुष शिक्षा के आयोग्य होते है। इसमे रोगी भी शिक्षा के आयोग्य बताया गया है। रोगी साधु लब्धिधारी मुनि के चरणस्पर्श करके रोगमुक्त होकर शिक्षा के योग्य बन जाता है और शिक्षागुरण को प्राप्त करता है। लब्धिधारी मुनि के चरणस्पर्श का यह प्रत्यक्ष गुण है ॥७॥

रोग मिटयां गुण चरणफरस गुण,
किणविध अवगुण कुगुरु बतावे ।
गुण में अवगुण री थाप करी ने,
मिथ्याती पोल में ढोल बजावे ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥8॥

भावार्थ :—लब्धिधारी मुनि के चरणस्पर्श करने वाले रोगी मुनि को रोग मिटने रूप गुण और चरणस्पर्श रूप गुण इस प्रकार दो गुणो की प्राप्ति होती है । इस प्रकार गुणप्राप्ति मे भी अवगुण की स्थापना करके मिथ्यात्वी लोग पोल मे ढोल बजाते हैं और शास्त्र-विरुद्ध थोथी और निर्मूल बात की कल्पना करके अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ बर्बाद करते है ।।८।।

१५–अधिकार मार्ग भूले को साधु किस कारण रास्ता नहीं बतावे

□□□

अटवी रे मांही गृहस्थी भूल्यो,
साधु ने मारग पूछण लागे ।
किण कारण मुनि नाय बतावे,
अर्थ भाष्य में देखो सागे ।।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ।।1।।

भावार्थ: किसी जङ्गल मे कोई गृहस्थ रास्ता भूल गया । संयोगवश उधर मे जाते हुए मुनि को वह रास्ता पूछता है किन्तु किन कारणो से मुनि उसको रास्ता नही बताते हैं इसका खुलासा निशीथ सूत्र के भाष्य मे किया गया है । वह इस प्रकार है.—

मुनि रे बताये मार्ग जातां,
चोर कदाचित् उण ने लूटे ।
सिंहादिक श्वापद दुःख देवे,
तिण उपसर्ग थी प्राण भी छूटे ।।अनु. 2।।
वा, तिण रस्ते गृहस्थी जातां,
मृग आदिक जीवो ने मारे ।
तिण कारण दयावन्त मुनीश्वर,
मार्ग बतावा रो परिचय टारे ।।अनु. 3।।

भावार्थ.—मुनि के बताये हुए मार्ग से जाते हुए उस गृहस्थ को शायद कोई चोर लूट ले, सिंह, चीते आदि जगली जानवर उसे तकलीफ देवे या उसे मार भी दे अथवा मुनि के बताये हुए रास्ते से जाता हुआ वह गृहस्थ स्वयं मृगादि जीवों को मारे इत्यादि अनर्थ की सम्भावना से दयावान् मुनि गृहस्थ को रास्ता नही बताते हैं ॥२-३॥

इसड़ा सूत्र रा सरल अर्थ ने,
अज्ञानी तो उलटा मोड़े ।
अनुकम्पा कर मार्ग बतायां,
चार मास ※चारित्तर तोड़े ॥अनु. 4॥

भावार्थः—इस प्रकार सूत्र का सीधा और सरल अर्थ है किन्तु अज्ञानी इसका उल्टा अर्थ करके कहते हैं कि यदि साधु अनुकम्पा करके गृहस्थ को मार्ग बता दे तो उसे चौमासी प्रायश्चित्त आता है अर्थात् उसका चार महीने संयम चला जाता है ॥४॥

भाष्य चूरणी अरु मूल में देखो,
अनुकम्पा रो नाम ही नांही ।
तो पिण अनुकम्पा रा द्वेषी रे,
झूठ बोलण री लाज न कांही ॥अनु. 5॥

भावार्थः मार्ग बताने सम्बन्धी अधिकार जहां आया है वहा निशीथ सूत्र के मूलपाठ में तथा उस पाठ के भाष्य और चूर्णी में कही पर भी 'अनुकम्पा' शब्द का नाम तक नही आया है फिर भी अनुकम्पा

※ जैसा कि वे कहते हैं :—
गृहस्थ भूलो ऊजड वन में:
अटवी ने वले ऊजड जावे ।
अनुकम्पा आणी साधु मार्ग बतावे,
तो चार महीना रो चारित्र जावे ॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥
(अनु. ढाल १ गाथा २७)

के द्वेषी उन लोगों ने यहाँ झूठमूठ ही अपनी तरफ से 'अनुकम्पा' शब्द लगा दिया है। इस प्रकार झूठ बोलते हुए उन्हे जरा भी शर्म नही आती ॥५॥

हितकारी मुनि सर्व जीवां रा,
अनुकम्पा रो प्राछित नांही ।
समदृष्टि तो सूतर माने,
कुगुरु री बात देवे छिटकाई ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥6॥

मुनिराज तो समस्त जीवो के हितकारी होते है। जीवो पर अनुकम्पा करने का उनको प्रायश्चित्त नही आता। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष तो सूत्र की बात को मान कर उन कुगुरुओ की बात छोड देता है ॥६॥

॥ इति प्रथम ढाल समाप्त ॥

❀ दोहा ❀

समकित रो लक्षण कह्यो, अनुकम्पा प्रभु आप ।
पापबन्ध तिणथी कहे, खोटी थापे थाप ।।1।।

भावार्थ—भगवान् ने अनुकम्पा को समकित का लक्षण बताया है । जो लोग अनुकम्पा से पापबन्ध होना कहते हैं वे खोटी स्थापना करते हैं ।।१।।

अनुकम्पा साधु करे, गृहस्थ करे मन लाय ।
सुकृत लाभ सहु ने हुवे, तिण में शङ्का नाय ।।2।।

भावार्थ—साधु या श्रावक कोई भी हृदय से अनुकम्पा करता है उन सबको पुण्य का फल होता है । इसमे किसी प्रकार की शङ्का नही है ।।२।।

अनुकम्पा अभयदान ने, सर्वश्रेष्ठ कह्यो दान ।
'सूयगडांग' में देख लो, तज दो खींचाताण ।।3।।

भावार्थ:—सूयगडांग सूत्र में अनुकम्पा रूप अभयदान को सर्वश्रेष्ठ दान बतलाया है यथा :—

'दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं'

अर्थात्—सब दानो मे अभयदान श्रेष्ठ है हृदय मे अनुकम्पा होने से ही अभयदान दिया जा सकता है, अनुकम्पा के बिना नही दिया जा सकता है । वाचकमुख्य श्री उमास्वाति ने अनुकम्पा दान का लक्षण इस प्रकार बतलाया है :—

कृपणेऽनाथ दरिद्रे, व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहते ।
यद्दीयते कृपार्थात् अनुकम्पा तद्भवेद्दानम् ।।

अर्थात्—कृपण (दीन), अनाथ, दरिद्र, दु:खी, रोगी, शोकग्रस्त

आदि प्राणियो पर अनुकम्पा करके जो दान दिया जाता है वह अनुकम्पा दान है।

जो लोग अनुकम्पा' को सावद्य बताते हैं उन्हे अपनी यह झूठी खींचातान छोड देनी चाहिए ॥३॥

साधु वन्दे साधु ने, गृहस्थ वन्दे चित्त लाय।
उच्चगोत्र रो फल लहे, नीचो गोत्र खपाय ॥4॥

भावार्थ —शुद्ध हृदयपूर्वक साधु को वन्दन नमस्कार करने वाला साधु अथवा श्रावक नीचगोत्र का क्षय करके उच्च गोत्र का बन्ध करता है। यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवे अध्ययन मे बतलाई गई है ॥४॥

गाड़ी घोड़ा साज सूं, गेही वन्दन जाय।
साधु तिम-जावे नहीं, पण्डित समझो न्याय ॥5॥

अनुकम्पा वन्दन जिसी, दोनों ने सुखदाय।
कारण न्यारा जाणजो, साधु गृहस्थ रे मांय ॥6॥

भावार्थ:—वन्दना का फल साधु और श्रावक दोनो के लिए समान बताया गया है किन्तु पण्डित पुरुष इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि श्रावक तो रेलगाडी, घोड़ागाडी आदि साधनो से साधु को वन्दन करने के लिए जा सकता है किन्तु साधु इस तरह से नही जा सकता। इसी प्रकार वन्दना के समान अनुकम्पा भी साधु और श्रावक दानो के लिये शुभ फलदायक है किन्तु वन्दना के साधनो के समान अनुकम्पा के साधन भी साधु और श्रावक के भिन्न-भिन्न हैं ॥५–६॥

सावज कारण सेव ने, गेहीं वन्दन जाय।
साधु वन्दन कारणे, कल्प बिगाड़े नाय ॥7॥

तिम अनुकम्पा कारणे, कल्प न तोड़े साध।
जाणे अनुकम्पा भला, वन्दन सम निर्बाध ॥8॥

भावार्थः—जिस प्रकार श्रावक गाडी, घोडा ग्रादि सावद्य साधनों के द्वारा वन्दन के लिए जा सकता है उस प्रकार सावद्य साधनों के द्वारा साधु नही जा सकता है। वह तो ग्रपने कल्प की मर्यादा के ग्रनुसार ही वन्दन को जाता है किन्तु वन्दन के लिए ग्रपने कल्प को नही तोडता। इसी प्रकार ग्रनुकम्पा के लिए भी ग्रपने कल्प को नही तोडता। वन्दन के समान ग्रनुकम्पा को वह अच्छी जानता है ग्रौर ग्रपने कल्प की मर्यादा के ग्रनुसार ग्रनुकम्पा भी करता है ।।७–८।।

ग्रनुकम्पा कारण कोई, सावज करे जो काम ।
कारण ग्रनुकम्पा नहीं, ग्रनुकम्पा निरवद नाम ।।9।।

भावार्थ :—यदि कोई ग्रनुकम्पा करने के लिए सावद्य साधनो का उपयोग करे तो वे साधन ग्रनुकम्पा नही कहलाते किन्तु साधन भिन्न चीज है ग्रौर ग्रनुकम्पा उनसे भिन्न चीज है। हृदय के शुद्ध परिणामो का नाम ग्रनुकम्पा है। वे परिणाम निरवद्य होते हैं, सावद्य नही। इसलिए अनुकम्पा भी निरवद्य ही होती है, सावद्य नही ।।९।।

सावज कारण सेवतां, वन्दन सावज नाय ।
ग्रनुकम्पा तिम जाणज्यो, निरमल ध्यान लगाय ।।10।।

भावार्थ—जिस प्रकार श्रावक गाड़ी, घोड़ा ग्रादि सावद्य साधनो से वन्दन के लिए जाता है किन्तु उन साधनो के सावद्य होने पर भी वन्दन सावद्य नही होता क्योंकि साधन भिन्न हैं ग्रौर वन्दन उनसे भिन्न हैं। इसी प्रकार ग्रनुकम्पा के लिए भी समझना चाहिए। साधनों के सावद्य होने पर भी अनुकम्पा सावद्य नही होती क्योंकि साधन भिन्न हैं ग्रौर ग्रनुकम्पा उनसे भिन्न है। ग्रत: वन्दन के समान अनुकम्पा को निरवद्य ही समझना चाहिए ।।१०।।

भाषा सुमति थी करे वन्दन नो उपदेश ।
तिम ग्रनुकम्पा नो करे, मुनि रे राग न द्वेष ।।11।।

भावार्थः—मुनि भाषासमतिपूर्वक वन्दन का उपदेश देते हैं उसी प्रकार ग्रनुकम्पा का भी वे उपदेश देते हैं। मुनि को तो न किसी पर राग है ग्रौर न किसी पर द्वेष ।।११।।

गेही पिण समझू हुवे, विवेक मन में लाय ।
वन्दन अनुकम्पा करे, वैसी ही फल पाय ॥12॥

भावार्थः—श्रावक भी समझदार होता है वह विवेकपूर्वक वन्दन और अनुकम्पा करता है और उसको उसी के अनुसार फल मिलता है ॥१२॥

कुगुरु कूड़ी खेंच सूं, अनुकम्पा उत्थाप ।
वन्दन रा तो लोलुपी, जोर सूं मांडे थाप ॥13॥

भावार्थ—वन्दन और अनुकम्पा दोनों शुभ फलदायक हैं किन्तु अनुकम्पा के द्वेषी पन्थियो के कुगुरु अनुकम्पा को संसार से उठा देने का प्रयत्न करते हैं और वन्दन के लोलुपी बन कर वन्दन का जोरदार उपदेश करते हैं और वन्दन करने के लिए जाने का श्रावकों को आग्रह पूर्वक नियम तक करवाते हैं ॥१३॥

कारण कारज भेद ते, कुगुरु खोले नाय ।
कारण ने आगे करि, अनुकम्पा दीवी उठाय ॥14॥

भावार्थ—अनुकम्पा का कार्य और उसके कारणों को वे अज्ञानी कुगुरु भिन्न-भिन्न नही बतलाते किन्तु केवल कारणों को सामने रखते हैं और इस तरह से उन्होने अपने अन्धभक्तों के हृदय से अनुकम्पा को निकाल दिया है जिससे उनको आज दुनिया निर्दयी तक कहती है । १४॥

वन्दन कारण प्रगट में, बहुविध आरम्भ थाय ।
कुगुरु देखे तोहि पिण, वन्दन वर्जे नाय ॥15॥

भावार्थ—वन्दन करने के लिए जाने मे उनके अन्धभक्त श्रावक अनेक प्रकार का आरम्भ करते है वे साधुभेषधारी कुगुरु इन सब आरम्भ को प्रत्यक्ष देख रहे हैं फिर भी वन्दन का वे निषेध नही करते ॥१॥

रस्ता री सेवातणो, अतिशय लाभ बताय ।
गृहस्थी राखे साथ में, भोजन खाता जाय ॥16॥

भावार्थः—वे साधुभेषधारी कुगुरु श्रावकों को मार्ग की सेवा का बडा भारी लाभ बताकर उनको मार्ग मे अपने साथ रखते हैं और उनके द्वारा उनके लिए बनाये हुए मिष्टान्नादि भोजनो को खाते हुए मौज उड़ाते है ।।१६।।

इणविध सेवा ना कही, सूतर में जिनराज ।
प्राछित पिण भाख्यो प्रभु, संजम राखण काज ।।17।।

भावार्थः—इस प्रकार मार्ग की सेवा का शास्त्र में भगवान् ने कही भी विधान नही किया है प्रत्युत इस प्रकार श्रावको को साथ रखकर आधाकर्म मिश्र एव उद्दिष्ट भोजन खाने वाले साधुओं को प्रायश्चित्त कहा है । यथा.—

जे भिक्खू अन्नउत्थिएणं वा गारत्थिएणं वा ।
गामाणुगामं दुइज्जइ दुइज्जंतं वा साइज्जइ ।।
(निशीथ सूत्र उद्देशा २)

अर्थात्--जो साधु अन्यतीर्थिक (संन्यासी आदि) और गृहस्थ (श्रावकादि) के साथ एक ग्राम मे दूसरे ग्राम को जाता है तो उसे मासिक प्रायश्चित्त आता है । आचाराङ्ग सूत्र में भी यही बात कही गई है ।।१७।।

खोटो सेवा थापने, लोपी जिनवर कार ।
अनुकम्पा उत्थापने, डूबा काली धार ।।18।।

भावार्थ.—इस प्रकार मार्ग की सेवा की खोटी स्थापना करके उन्होने तीर्थकर भगवान् की आज्ञा का उल्लघन किया है और अनुकम्पा को उठाकर तो वे कालीधार डूब गये हैं अर्थात् ऐसे पाप के हरे गड्ढे मे गिरे हैं जिससे निकलना अत्यन्त कठिन है । ऐसे पाप का फल नरकनिगोदादि में भ्रमण करते रहने के सिवाय दूसरा कुछ नही हो सकता ।।१८।।

सावज कारण साधु ने, वरज्या सूतर मांय ।
कल्प वतायो साधु रो, करुणा सावज नांय ।।19।।

भावार्थ:—शास्त्र में बतलाया गया है कि साधु को सावद्य साधनों का उपयोग नही करना चाहिए। यह साधु का कल्प है किन्तु अनुकम्पा करने का कही पर निषेध नही किया है। अनुकम्पा सावद्य नहीं है ॥१६॥

साधु कल्प रा नाम सूं, भोलां ने भड़काय ।
अनुकम्पा सावज कहे, खोटा चोज लगाय ॥20॥

भावार्थ:—साधु सावद्य साधनों का उपयोग नहीं करता, यह उसका कल्प है। इसको सामने करके वे कुगुरु भोले प्राणियों को भ्रम मे डालते हैं और कुहेतु कुयुक्तियाँ एव खोटे दृष्टान्त देकर अनुकम्पा को सावद्य कहते हैं। अनुकम्पा को सावद्य कह कर वे अपना दुर्लभ मनुष्यजन्म तो व्यर्थ गंवाते है किन्तु साथ मे भोले प्राणियो के जन्म को भी बर्बाद करते हुए—

"दोनो डूबे बापडा, बैठ पत्थर की नाव"
वाली कहावत चरितार्थ करते है ॥२०॥

साधु ने वरजी नहीं, अनुकम्पा जिनराज ।
निज निज कल्प संभालने, करने सारे काज ॥21॥

भावार्थ:—शास्त्रों में साधु को अनुकम्पा करने का कहीं पर भी तीर्थंकर भगवान् ने निषेध नही किया है किन्तु अपने कल्प के अनुसार सभी कार्य करने के लिए तीर्थंकर भगवान् ने साधु को आज्ञा दी ॥२१॥

अनुकम्पा करणी साधने, भाखूं सूतर साख ।
भवि जीवा ! तुम सांभलो, वीर गया छै भाख ॥22॥

भावार्थ.—हे भव्य जीवो! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने शास्त्रो मे साधु को अनुकम्पा करने का फरमाया है। शास्त्रानुसार उस अनुकम्पा का वर्णन किया जाता है सो तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥२२

-: दूसरी ढाल :-

—:※※:—

१—अधिकार जीवों की दया के खातिर दयावान मुनि द्वारा उन्हें बांधने छोड़ने का

[तर्ज—हीवे सांभलज्यो नरनार]

डाभ मुञ्जादिक रे फांसे
गाय भैंसादि बंध्या विमासे ।
जो छोड़ूं रखे दु.ख पासे,
अटवी में दौड़ी ने जासे ॥1॥

रखे सिंहादिक याने खावे,
म्हारी अनुकम्पा उठ जावे ।
अनुकम्पा घणी घट मांही,
तेथी मुनिश्वर छोड़े नांही ॥2॥

भावार्थ:—जो गाय, भैंस आदि पशु डाभ, मूंज आदि के फांसे से बन्धे हुए हैं उन्हें देखकर मुनि विचार करता है कि यदि मैं इन पशुओ को छोड दूगा तो ये दौड़ कर कही जङ्गल में न चले जाएं और वहा सिंहादि हिंसक प्राणी इन्हे मार कर न खा जाय । इन अनर्थों की सम्भावना से दयावान् मुनि बन्धे हुए पशुओ को छोडते नही हैं । वे अनुकम्पा के सागर हैं । इसलिए जहा अनुकम्पा का नाश हो वैसा कार्य वे नही करते ॥१-२॥

छोड्यां अनुकम्पा उठ जावे,
मुनिजी ने प्राछित आवे ।
इम बांध्यां सूं तड़फे प्राणी,
रखे मर जावे इसड़ी जाणी ॥3॥

इण कारण बांधे नांही,
अनुकम्पा घणी घट मांही ।
मरता जाणे तो बांधे ने खोले,
(जामें) दोष नांही अर्थ यों बोले ॥4॥

भावार्थ:—बन्धे हुए पशुओं को छोड़ देने से उपरोक्त अनर्थों की सम्भावना रहती है । इसलिए बन्धे हुए पशुओ को छोड देने से मुनि की अनुकम्पा का विनाश होता है इसलिए मुनि को प्रायश्चित्त आता है ।

इसी प्रकार पशुओ को बाधने से वे तड़फड़ावे, दु ख पावे और यहा तक कि आटी खाकर मर भी जावे । इन कारणो से दयावान् मुनि उन्हे बाधते नही हैं । उनके हृदय में अनुकम्पा बहुत है । जहा बाधे और छोडे बिना उन पशुओ की रक्षा नही हो सकती हो वैसे अवसर अनुकम्पा करके यदि मुनि उन्हे बाधे अथवा छोड़े तो इसमे कोई दोष नहीं है और मुनि को कोई प्रायश्चित्त नही आता ऐसा निशीथ सूत्र के भाष्य और चूर्णी मे स्पष्ट अर्थ किया गया है ।।३-४।।

साधु जन रा पातरा मांहो,
चिड़ियो उन्दर पड़ियो आई ।
भेषधारी पिण काढणो केवे,
विन काढ्यां (मारी) दया नहीं रेवे ॥5॥

अनुकम्पा थी छोड्यां पापो,
एहवी खोटी करो किम थापो ।
अनुकम्पा निरवद जाणो,
तिण रा साधु रे नहीं पचखाणो ॥6॥

भावार्थ:—साधुओ के जल के पातरे में यदि कोई चिड़िया का बच्चा अथवा चूहा गिर पड़े तो वे तेरहपन्थी साधु भी उसको बाहर निकाल कर छोड़ देते है और कहते हैं कि यदि हम उसे न निकालें तो हमारी दया नही रहती ।

जब वे स्वय चिडिया, चूहा आदि त्रस प्राणियो को जल के पातरे से निकाल कर छोडते हैं तब अनुकम्पा लाकर गाय आदि त्रस प्राणियो को छोडने मे वे पाप क्यो बताते हैं ? उन्हे सरल बुद्धि से यह बात समझनी चाहिए कि अनुकम्पा निरवद्य है और मुनि को अनुकम्पा का त्याग नही होता ।।५–६।।

साधु पातरां सूं जीव काढे,
तामे धर्म कहे चौड़े धाड़े ।
गृहस्थी यदि जीव छुड़ावे,
पाप लागा रो हल्लो उड़ावे ।।7।।

भावार्थ —साधु अपने जल के पातरे मे से जीवो को निकाल कर छोड़ देते हैं और इसमे वे पन्थी साधु भी धर्म बताते हैं परन्तु गृहस्थ अनुकम्पा लाकर यदि गाय आदि त्रस प्राणियो को छोड देता तो वे उसमे पाप बताते है यह उनका अज्ञान है ।।७।।

गृहस्थी रे मूंज रा फांसा,
पशु बांध्या पावे त्रासा ।
जो उणने वो नहीं खोले,
पाप लागे सूतर यो बोले ।।8।।

भावार्थ.—गृहस्थ के डाभ, मूज आदि के फासो मे बधे हुए गाय, भैंसादि पशु यदि त्रास पा रहे हो वैसी अवस्था मे यदि वह उन्हे न खोले तो उसे पाप लगता है । ऐसा शास्त्र मे बतलाया गया है।।८।।

जो खोले तो पाप सू बचियो,
हुओ अनुकम्पा रो रसियो ।
भेषधारी उलटी सिखावे,
गृहस्थी रे छोड्यां पाप बतावे ।9।

भावार्थ —उपरोक्त डाभ मुजादिक के फासो मे त्रास पाते हुए पशुओ को अनुकम्पा लाकर यदि गृहस्थ उन्हे खोल देता है तो वह पाप से बच जाता है और अनुकम्पा का शुभ फल प्राप्त करता

किन्तु तेरहपन्थी साधु इससे उल्टी शिक्षा देते हैं कि यदि गृहस्थ उन पशुओ को खोल देता है तो उसे पाप लगता है क्योकि वे पशु असयती हैं और असयती की रक्षा करना पाप है ॥६॥

तब उत्तम नर कोई प्राणी,
भेषधारचां ने बोल्यो वाणी ।
थारे पातरिके रे मांही,
जीव तड़फ रयो दु ख पाई ॥10॥

तिण ने जीवतो काढो के नांही,
के मरवा देवो असंजती ताहीं ।
कहे जीवतो काढां म्हें प्राणी,
नहीं काढ्यां पाप लेवो जाणी ॥11॥

भावार्थ —तब कोई चतुर पुरुष अनुकम्पा के उत्थापक उन साधुओ से पूछे कि आपके जल के पातरे मे कोई चिड़िया का बच्चा या चूहा आकर गिर पडा और तडफडाता हुआ दुःख पा रहा है। अब बतलाइये कि आप उसे जीवित बाहर निकालेंगे या वह असयति है ऐसा जानकर आप उसे पातरे मे ही मरने देंगे ? तब तो वे चटपट उत्तर देते हैं कि हम उसे जीवित बाहर निकालेंगे। यदि जीवित बाहर न निकालें और पातरे मे मरने दे तो हमे पाप लगता है ॥१०-११॥

साधु नहीं काढे तो पापी,
या तो ठीक तुमें पिण थापी ।
जो) जीव छोडयां में पाप नहीं लागे,
दया धर्म रो काम हैं -गे ॥12॥

तो गृहस्थो ने पाप म केवो,
छोड़ मिथ्यामत तुम देवो ।
साधु उपधि सूं जीव मर जावे,
तिण रो पाप साधु नं थावे ॥13॥

गेही उपधि सूं जीव मर जावे,
तिण रो पाप गृहस्थ पिण पावे ।
साधु छोड़े तो साधु ने धर्मो,
गेहीं ने किम कहो पापकर्मो ॥14॥

भावार्थ.—तब वह चतुर पुरुष कहता है कि आपने यह ठीक बात कही कि यदि साधु अपने पातरे मे से उस प्राणी को जीवित निकाल कर न छोडे तो उसे पाप लगता है । जब आप यह बात स्वीकार करते है कि दु:ख पाते हुए जीव छोडने मे पाप नही लगता बल्कि यह तो धर्म का कार्य है तब फिर आप ऐसा क्यो कहते हैं कि दु.ख पाते हुए गाय, भैसादि पशुओ को छोडने से गृहस्थ को पाप लगता है ? अत· आपका यह कहना मिथ्या है इस मिथ्यामत को आप छोड दें ।

तब वे भेषधारी साधु कहते है कि पातरे आदि साधु के पास रहते हैं । वे साधु की 'उपाधि या 'उपकरण' कहे जाते है इसलिए साधु की उपाधि से यदि कोई जीव मर जाता हैं तो उसका पाप साधु को लगता है ।

तब वह चतुर पुरुष उन साधुओं को कहता है कि डाभ, मूंज आदि के फासे गृहस्थ के पास रहते हैं इसलिए वे गृहस्थ की 'उपाधि' या 'उपकरण' है । जिस तरह साधु की उपधि से जीव मर जाने से साधु को पाप लगता है उसी प्रकार गृहस्थ की उपधि से जीव मर जाने से गृहस्थ को पाप लगता है । साधु की उपधि से मरते हुए जीव को छोड देने से साधु को धर्म होता है तो फिर गृहस्थ की उपधि से मरते हुए जीव को छोडने से गृहस्थ को पाप होना कैसे कहते हो ?

उपकरण दोनो रा सागे,
नहीं छोड़्यां पिण पाप लागे ।
साधु ने तो बतावे धर्म,
गृहस्थी ने कहे पाप कर्म ॥15॥

भावार्थ —इन लोगो का बडा विचित्र न्याय है कि साधु की उपधि से मरते हुए जीव को साधु छोड दे तो उसे धर्म होना कहते हैं और गृहस्थ की उपधि से मरते हुए जीव को गृहस्थ छोड दे तो उसे पाप होना कहते हैं ॥१५॥

अनुकम्पा एक बतावे,*
साधु श्रावक री एक सिखावे ।
अमृत री उपमा देवे,
दोनां सेव्यां समफल केवे ॥16॥

भावार्थः—वे लोग अनुकम्पा को अमृत की उपमा देते हैं और कहते हैं कि जैसे अमृत सब के लिए एक सरीखा है और उसका सेवन करने वालो को समान लाभ होता है । उसी प्रकार साधु और श्रावक दोनों के लिए अनुकम्पा एक सरीखी है और उसका सेवन करने से दोनो को समान शुभ फल की प्राप्ति होती है ॥१६॥

जो बात खरी छै थारी,
तो यहां भेद करो क्यों भारी ।
साधु ने धर्म बतावो,
गृहस्थी ने क्यों पाप लगावो ॥17॥

भावार्थः—चतुर पुरुष उनसे कहता है कि साधु और श्रावक दोनो के लिए अमृत के समान अनुकम्पा एक सरीखी है यह तो आपकी बात बिल्कुल ठीक है फिर यहा पर अर्थात् दुःख पाते हुए त्रस जीव

---

*जैसा कि वे कहते हैं:—

जो अनुकम्पा साधु करे, तो नवा न बन्धे कर्म ।
तिण मा हिली श्रावक करे, तो तिण ने पिण होसी धर्म ॥२॥

साधु श्रावक दोनो तणी, एक अनुकम्पा जाण ।
अमृत सहु ने सारखो, तिणरी म करो ताण ॥३॥

(अनुकम्पा ढाल २ गाथा २–३)

को छोडने की अनुकम्पा के विषय में इतना भारी भेद क्यो करते हो ? साधु की उपधि से मरते हुए प्राणी को छोड़ देने से साधु को धर्म होना कहते हो तब फिर गृहस्थ की उपाधि से मरते हुए प्राणी को छोड़ देने से गृहस्थ को पाप होना क्यो बताते हो ?

निज बोली रो बन्ध न कांई,
मोह मिथ्यात री छाक रे मांही ।
ज्ञान केरो अंजन आंजो,
अब मिथ्या बोलता लाजो ॥18॥

भावार्थ—चतुर पुरुष उनसे कहता है कि आपके वचन का कोई ठिकाना नही है । जिस प्रकार मदिरा के नशे से बेभान बना हुआ मनुष्य कभी कुछ बकता है और कभी कुछ बकता है इसी तरह मोहमिथ्यात्व से वेभान बने हुए आप कभी कुछ कहते है और कभी कुछ कहते है । अपने वचन पर पाबन्द नही रहते । अब अपने नेत्रों मे ज्ञानरूपी अञ्जन आजो और झूठ बोलते हुए जरा शर्माओ ॥१८॥

२—अधिकार लाय से बचाने का

—: ❀ ❀ :—

(कहे) 'गृहस्थी रे लागी लायो,
घर बारे निसरयो न जायो ।
बलतां जीव बिलबिल बोले,
साधु जाय किवाड़ न खोले' ॥1॥

भावार्थः—तेरहपन्थी साधु कहते हैं कि यदि कभी किसी गृहस्थ के घर मे लाय (आग) लग जाय और उसमे रहे हुए मनुष्यो से बाहर न निकला जाय तथा उस आग में जलते हुए बच्चे, औरतें और मनुष्य आदि करुणक्रन्दन कर रहे हो तो भी साधु उस दरवाजे को नही खोले ॥१॥

खोले तिण ने पाप बतावे,
धर्म शरध्यां मिथ्यात लगावे ।
नर बचिया पाप कहे मोटो,
जांरो हिरदो हुवो घणो खोटो । 2।।

भावार्थः—यदि कोई दयावान् गृहस्थ उस घर का दरवाजा खोल दे तो उसको भी वे लोग पाप होना कहते हैं । इस कार्य मे जो लोग धर्म बताते हैं उन्हे वे तेरहपन्थी मिथ्यात्वी कहते हैं । जिनका हृदय वज्र सरीखा कठोर हो गया हो और जो निर्दयता की पराकाष्ठा को पहुंच चुके हों वे ही लोग मनुष्यों को आग से बचाने में पाप होना कह सकते है ।।२।।

थीवरकल्पी मुनि पिण खोले,
ठाणायंग चौभंगी रे ओले ।
द्वार खोल बाहर निकलणो,
थीवरकल्पी रा कल्प रो निरणो ।।3।।

पर री अनुकम्पा मुनि लावे,
द्वार खोल्यां प्राछित नहीं आवे ।
अगनी संघट्टा ने मुनि टारे,
मनुजों ने तो साधु उबारे ।।4।।

भावार्थः ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे अनुकम्पा के विषय में एक चौभङ्गी बताई गई है । उसमें आत्मानुकम्पक, परानुकम्पक, उभयानुकम्पक और उभयाननुकम्पक इस तरह चार पुरुष बताये गये हैं । उसमें स्थविरकल्पी मुनि को 'उभयानुकम्पक' बतलाया है अर्थात् वह अपनी आत्मा की अनुकम्पा करता है और दूसरे जीवों की अनुकम्पा करता है । इस चौभङ्गी के अनुसार स्थविरकल्पी मुनि उस आग वाले मकान का दरवाजा खोल सकता है । जिस मकान में साधु ठहरे हों, यदि उस मकान मे आग लग जाय तो स्थविरकल्पी मुनि उस मकान का दरवाजा खोलकर बाहर निकल जाते हैं उनकी 'स्व' अनुकम्पा हुई। इसी तरह किसी मकान मे आग लग जाय और उसमें मनष्य आदि

हों तो उन पर अनुकम्पा करके अग्नि का सघट्टा न करते हुए मुनि उस मकान का दरवाजा खोलकर उन मनुष्यों की रक्षा करते हैं। यह पर' अनुकम्पा करने के कारण 'उभयानुकम्पक' कहलाते हैं इसलिए आग से जलते हुए मकान का दरवाजा खोलकर उसमें रहे हुए मनुष्यादि की रक्षा करने में मुनि को किसी तरह का प्रायश्चित्त नही आता है ॥४॥

पोते तो निकल फट जावे,
दूजां मरतां री दया न लावे ।
उण ने तो निरदयी जाणो,
ठाणायंग रो है परमाणो ॥5॥

भावार्थः—मकान में आग लगने पर आप स्वयं तो निकल कर भाग जाय किन्तु आग में जलकर मरते हुए दूसरे प्राणियो की जो रक्षा न करे उसे ठाणाङ्ग सूत्र की उपरोक्त चौभङ्गी के अनुसार निर्दयी समझना चाहिए ॥५॥

नोट—ठाणाङ्ग सूत्र की चौभङ्गी का विस्तृत वर्णन धर्मरुचि अनगार की कीडियों पर अनुकम्पा' अधिकार मे किया गया है ।

अनुकम्पा रो दण्ड न आवे,
ज्ञानीजन परमारथ पावे ।
अनुकम्पा रो दण्ड बतावे, *
अणहूंता ही अरथ लगावे ॥6॥

भावार्थ :—अनुकम्पा का मुनि को दण्ड नही आता । शास्त्र

---

* जैसा कि वे कहते हैं:—

अनुकम्पा कियां दण्ड पावे, परमारथ विरला पावे ।
निशीथ रो बारमो उद्देशो, जिन भाख्यो दया रो रेसो ॥

(अन. ढाल २ गान २)

में यह बात कही पर भी नही कही गई है कि अनुकम्पा करने से मुनि को दण्ड प्रायश्चित्त आता है फिर भी अनुकम्पा के द्वेषी अनुकम्पा का दण्ड बतलाते है । वे अज्ञानी मूढ शास्त्रो का मनगढ़न्त उल्टा अर्थ करते है ॥६॥

भोलां ने बहु भरमाया,
कूड़ा कूड़ा अरथ बताय ।
अनुकम्पा में पाप ने गायो,
हलाहल कलियुग चलि आयो ॥7॥

भावार्थ.—उन तेरहपन्थी साधुओ ने शास्त्रो मे मनगढ़न्त झूठे-झूठे अर्थ करके बहुत से भोले प्राणियो को भ्रम मे डाल दिया है। अनुकम्पा सरीखे परमधर्म को भी उन्होने पाप बताया है तो समझना चाहिए कि उनके हृदय में हलाहल कलियुग छाया हुआ है । भगवान् ऐसे प्राणियो को सद्बुद्धि दे यही अभ्यर्थना है ॥७॥

३-अधिकार अपराधी को निरपराधी कहने का

—:❀❀:—

कोई चोर अने परदारी,
हत्या कीनी मनुज री भारी ।
अपराधी राजा ठहरायो,
मारण योग्य जगत् दरसायो ॥1॥

वधवा योग्य ते 'वज्झा' कहावे,
'वज्झा पाणा' पाठ मे गावे ।
मुनि मध्यस्थ भावना भावे,
समभाव पापी पर लावे ॥2॥

भावार्थ तेरहपन्थियो के चौथे आचार्य जीतमलजी ने भ्रम-विध्वसन में सूयगडाँग सूत्र की गाथा की समालोचना करते हुए कहा है कि 'हिंसक के हाथ से मारे जाते हुए प्राणी की प्राणरक्षा के लिए 'मत मार' कहना मरते जीव पर राग लाना है। किसी जीव पर राग करना साधु को उचित नही है अत मरते जीव की प्राणरक्षा करने के लिए 'मत मार' ऐसा साधु उपदेश न देवे' यह उनका कथन अज्ञान-तापूर्ण है क्योकि वे उस गाथा का ठीक-ठीक अर्थ ही नही समझ सके है। वह गाथा और उसका अर्थ इस प्रकार है—

"वज्झा पाणा न वज्झेत्ति, इति वाय न नीसरे।"

(सूडयाग सूत्र)

अर्थात् - कोई चोर या पारदारिक (व्यभिचारी-लम्पट) पुरुष ने किसी मनुष्य की हत्या कर दी अथवा ऐसा कोई भारी अपराध किया जिससे राजा ने उसे वध योग्य अपराधी ठहराया और सब लोगो में उद्‌घोषपूर्वक यह बात जाहिर करवा दी ऐसे पुरुष को साधु निरप-राधी न कहे किन्तु ऐसे पापी जीवो पर मुनि समभावपूर्वक मध्यस्थ भावना रक्खे। चार भावनाओ का वर्णन करते हुए वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र मे कहा है—

'मैत्री–प्रमोद–कारुण्य–माध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमा-नाविनेयेषु'।

(तत्त्वार्थ० अध्य० ७ सूत्र ६)

अर्थात्—सब जीवों के साथ मैत्रीभाव, अधिक गुणवानो मे प्रमोद, क्लेश पाते हुए जीवो पर करुणा और अविनेय अर्थात् जीवों की हिंसा करने मे तत्पर रहने वाले प्राणियो पर मध्यस्थता रक्खे ॥१-२॥

वधवा योग्य मुनि नहीं केवे,
दुष्ट कर्म पे मन नहीं देवे।
अनवध्य अपराधी प्राणी,
ऐसी मुनि कहे नहीं वाणी ॥3॥

भावार्थ:—सूयगडाङ्ग सूत्र की उपरोक्त गाथा में भाषासमिति

का वर्णन किया गया है कि 'यह पुरुष वध्य अर्थात् मार देने योग्य है ऐसा साधु न कहे और उसके दुष्ट कर्म की अनुमोदना करता हुआ अपराधी को निरपराधी भी न कहे ।।३।।

अपर धी होवे जो प्राणी,
निर अपराधी कहे किम जाणी ।
दोषी ने निर्दोषी थापे,
राजनीति धर्म उत्थापे । 4।।

भावार्थ. साधु अपराधी को निरपराधी कैसे कह सकता है क्योंकि दोषी को निर्दोषी अर्थात् अपराधी को निरपराधी स्थापित करने से राजनीति-धर्म का उल्लघन होता है ।।४।।

दोषी ने निरदोषी बतावे,
दोष री अनुमोदना पावे ।
तिण हेते मुनि मौन राखे,
सूयगडांग सूतर भाखे ।।5।।

भावार्थ.—सूयगडाग सूत्र की उपरोक्त गाथा मे भाषासमिति का वर्णन करते हुए शास्त्रकार फरमाते हैं कि दोषी को निर्दोषी बताने से साधु को उसके दुष्टकर्म की अनुमोदना लगती है इसलिए ऐसे अवसर पर मुनि मध्यस्थभावपूर्वक मौन रक्खे ।।५।।

मन्दमती तो ऊंधा बोले,
सूत्रपाठ हिये नहीं तोले ।
(कहे) 'मत मार कहे उण रो रागी
तीजे करणे हिंसा लागी' । 6।।

भावार्थ: मन्दमति वे लोग सूयगडाङ्ग सूत्र की इस गाथा का वास्तविक अर्थ ही नही समझ सके हैं । मनगढन्त अर्थ करके वे उल्टी बात कहते हैं कि 'हिंसक के हाथ से मारे जाते हुए प्राणी की प्राणरक्षा के लिए 'मत मार' कहना, मरते जीव पर राग लाना है

प्रश्नव्याकरण सूतर देखो,
संवर द्वारे कह्यो जिन लेखो ॥10॥

भावार्थः—प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम सवरद्वार मे लिखा है किः—

"सव्व-जग-जीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं"

अर्थात्—जगत् के सम्पूर्ण जीवों की रक्षारूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है । इस मूलपाठ में जीवरक्षा रूप धर्म के के लिए जैनागम की रचना होना बतलाया गया है । अत: जीवरक्षा रूप धर्म जैनधर्म का प्रधान अङ्ग है । उस जीवरक्षा को जो धर्म मानता है और विधिवत् उसका पालन करता है वही तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का आराधक पुरुप है । इसके विपरीत जो जीवरक्षा को धर्म नही मानता किन्तु इसको पाप और अधर्म बतलाता है वह धर्म का द्रोही और तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का तिरस्कार करने वाला है ॥१०॥

चार भावना मुनि नित भावे,
तेथी संवरगुण बढ़ जावे ।
मैत्री प्रमोद करुणा जाणो,
मध्यस्था चौथी बखाणो ॥11॥

भावार्थः—मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थ ये चार भावनाए बतलाई गई हैं । मुनि इन चार भावनाओ को नित्य भाता है जिससे उसके सवरगुण (संयम) मे वृद्धि होती है । १०।।

मैत्रीभाव सभी पे जावे,
गुणिजन से हर्ष बढ़ावे ।
करुणा दुखिया जीवो री लावे,
यथायोग्य मिटावण चावे ॥12॥

भावार्थः—उपरोक्त चार भावनाओ को मुनि किस तरह भावे, जिसका वर्णन किया जाता है .—

ससार के समस्त प्राणियो के साथ मुनि मैत्रीभाव रक्खे, गुणीजनो को देखकर चित्त मे हर्ष-प्रमोद लावे और दीन-हीन, दु.खी जीवो को देखकर उन पर करुणा लावे और यथाशक्ति उनके दुःख को दूर करने का प्रयत्न करे ॥१२॥

यह तीन भावनाओं का वर्णन हुआ । अब चौथी माध्यस्थ भावना का वर्णन किया जाता है :—

खोटा कर्म करे कोई जाणी
चोरी जारी हत्या मन आणी ।'
हिंसक क्रूर कर्म रो कारी,
देवे दुःख जगत् ने भारी ॥13॥

एवा दुष्ट देखे मुनि प्राणी,
मध्यस्थ भाव लावे गुणखाणी ।
मारण योग्य ऐसो नहीं बोले
'अवज्झा' वचन नहीं खोले ॥14॥

वधवा योग्य कहे किम ज्ञानी,
समभाव है महासुखदानी ।
आततायी 'अवज्झा' किम केवे,
लोक विरुद्ध कार्य किम सेवे ॥15॥

या मध्यस्थ भावना जाणो,
इणरो सूयगडाङ्ग वखाणो ।
दुष्ट जीवां रो यहां अधिकारो,
अध्ययन पांचवें ज्ञानी विचारो ॥16॥

भावार्थ·—कोई चोर, पारदारिक पुरुप चोरी, जारी करता है मनुष्यों की हत्या करता है इस प्रकार प्राणियों को भारी दु.ख देता है ऐसे हिसक, क्रूर कर्म करने वाले दुष्ट प्राणियों को देखकर मुनि माध्यस्थ भावना भावे । ये दुष्ट प्राणी 'वध्य' अर्थात् मार देने

योग्य है अथवा 'अवध्य' हैं ऐसे वचन न बोले क्योंकि आततायी दुष्ट पुरुष को 'अवध्य' कहना लोकविरुद्ध कार्य है। अतः ऐसे आततायी, दुष्ट प्राणियों को देखकर मुनि मध्यस्थभाव रक्खे; समभाव रक्खे।

इन चार भावनाओं का वर्णन सूयगडाङ्ग सूत्र के पांचवें अध्ययन मे किया गया है। इन चार भावनाओं का वर्णन करते हुए श्री अमितगति आचार्य ने 'प्रार्थना पञ्चविंशति' मे कहा है—

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव!॥1॥

अर्थात्—हे भगवन्! मेरी आत्मा संसार के समस्त प्राणियों पर मैत्रीभाव, गुणीजनों मे प्रमोद, दीन-हीन, दुःखी जीवों पर कृपा-करुणाभाव और विपरीतवत्ति अर्थात् दुष्ट जीवो पर माध्यस्थभाव सदा रक्खे।

इस प्रकार चार भावनाओ का वर्णन किया गया है। वहां बतलाया गया है कि दुष्ट जीवो पर मध्यस्थभाव रक्खे॥१३-१६॥

ऊंधा अरथ करी भ्रम पाड़े,
नांखे मिथ्यामत रे खाड़े।
'कहे साधु थी अनेरा प्राणी,
जांने हिंसक लेवो जाणी'॥17॥

'मत मार' कहे उण रो रागी,
तीजे करणे हिंसा लागी।
'मत मार' जीव नहीं केणो,
ऐसा कुमति काढे वेणो॥18॥

भावार्थः—सूयगडाग सूत्र की उपरोक्त गाथा की टीका में

आये हुए, आदि' शब्द का ऊधा अर्थ करके भोले जीवों को भ्रम में डालकर मिथ्यात्व के गड्ढे मे गिराते हैं। वे कहते हैं कि साधु के सिवाय सभी जीव हिंसक उन्हे यदि कोई मार रहा हो तो 'मत मार' ऐसा नही कहना चाहिए क्योंकि 'मत मार' कहने से उस प्राणी पर राग आता है। 'मत मार' कहने वाला तीसरे करण मे हिंसा का भागी होता है अर्थात् 'मत मार' कहने से यदि वह जीव बच गया तो फिर जीवित रहकर वह जो सासारिक क्रिया करेगा उसकी अनुमोदना उस 'मत मार' कहने वाले पुरुष को लगेगी।' वे मूढ अज्ञानी इस प्रकार कहते हैं ॥१७-१८॥

हिवे सूत्र प्रमाण पिछाणो,
सभी जीव दुष्ट मत जाणो।
क्षुद्र प्राणी रो चाल्यो लेखो,
ठाणायङ्ग सूत्र में देखो ॥19॥

भावार्थ:—साधु के सिवाय सभी जीवो को हिसक एवं दुष्ट नही समझना चाहिए। ठाणाङ्ग सूत्र के छठे ठाणे के सूत्र नबर ५१३ मे 'क्षुद्र' प्राणियो को कथन किया गया है वह इस प्रकार है :—

क्षुद्रिक अधम कह्या प्राणी,
षट्भेद कह्या ज्यां रा नाणी।
असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्री,
तेउ वाउ वली विकलेन्द्री ॥20॥

दूसरी वाचना रे मांही,
सिंह बाघ वरगड़ा दुखदाई।
दीवड़ा रीछ तिरक्ष लहिये,
षट् क्रूर प्राणी इम कहिये ॥21॥

भावार्थ:—क्षुद्र अर्थात् अधम प्राणियों के छः भेद कहे गये है। यथा—(१) असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, (२) तेउ काय (३) वायुकाय, (४) द्वीन्द्रिय (५) त्रीन्द्रिय और (६) चतुरिन्द्रिय।

ठाणाङ्ग सूत्र की किन्ही-किन्ही प्रतियों में इन छ. के स्थान दूसरे छ. क्रूर प्राणी बतलाये गये है। यथा–(१) सिह, (२) व्याघ्र (३) बरगड़ा (भेड़िया), (४) दीवडा (द्वीपी-गेडा), (५) रीछ और (६) तिरक्ष। इस प्रकार छः क्रूर प्राणी गिनाये गये है।

सब जीव क्रूर मत जाणो,
ठाणायङ्ग सूतर परमाणो।
साधु थी अनेरा जो प्राणी,
तेने क्षुद्र कहे ते अनाणी ॥22॥

भावार्थ —ठाणाङ्क सूत्र मे उपरोक्त छ. प्राणी ही क्रूर बतलाये गये हैं। इसलिए सब प्राणियो को क्रूर नही समझना चाहिए। लोग साधु के सिवाय दूसरे सभी प्राणियो को क्षुद्र एव क्रूर कहते हैं वे अज्ञानी है ॥२२॥

तिम दुष्ट सर्व मत जाणो,
कोई कुकर्मी ने पिछाणो।
जिम उत्तराध्ययन रे मांही,
भद्र प्राणी कह्या जिनराई ॥23॥

जम्बुक आदिक कुत्सित कहिये,
हिरणादिक भद्रक लहिये।
निरअपराधी भद्रक भाखे,
सूत्र अरथ टीका री साखे ॥24॥

भावार्थ.—जिस प्रकार सब प्राणी क्रूर नही कहे जा सकते है उसी प्रकार सब प्राणी दुष्ट भी नही कहे जा सकते। किन्तु कोई कुकर्मी ही दुष्ट कहा जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र के बाईसवें अध्ययन मे भगवान् अरिष्टनेमि का वर्णन है जब भगवान् की बा त तोरण के नजदीक पहुची तब वहा बाड़ो और पिजरो मे बन्द पशु-पक्षियो को देखकर भगवान् ने सारथि से कहा है कि—

एए भद्दा उ पाणिणो'

अर्थात्— ये भद्र प्राणी ।'

यहा सूत्र के मूलपाठ मे उन प्राणियो के लिए भद्र शब्द का प्रयोग किया गया है । हिरण आदि प्राणी दूसरो को नहीं सताते वे 'भद्र कहे जाते हैं । इस गाथा की टीका मे भी इनको 'भद्र कहा है और शृगालादि कुत्सित कहे जाते है ।

जो कहे साधु थी अन्य क्रूर प्राणी,
तो भद्रिक अर्थ री होवे हाणी ।
तिम हिंसक सर्व नही प्राणी,
अति दुष्ट हिंसक लेवो जाणी ॥25॥

भावार्थ—जो लोग साधु के सिवाय दूसरे सभी प्राणियो को 'क्रूर' कहते हैं उनसे पूछना चाहिए कि फिर भद्र' प्राणी कौन कहे जाएगे ? यदि साधु के सिवाय सभी प्राणियो को क्रूर कहा जायगा तो फिर भद्र' शब्द के वाच्य कोई प्राणी ही नही रहेगे । इसी प्रकार साधु के सिवाय दूसरे सभी प्राणियो को 'हिसक' भी नही समझना चाहिए किन्तु अति दुष्ट सिंह, व्याघ्रादि प्राणी ही हिंसक कहे जाते है ॥२५॥

वध्या ने वध्या न बतावे,
निरदोषी कह्यां दोष आवे ।
या मध्यस्थ भावना भाई,
दुरगुण री उपेक्षा बताई ॥26॥

भावार्थ. 'वध्य' प्राणी को देख कर साधु उसे 'वध्य' न कहे और उसे निर्दोषी—निरपराधी भी न कहे क्योकि दोषी को निर्दोषी कहने से उसके दोष की अनुमोदना होती है । अत: ऐसे हिसक, दुष्ट एव वध्य प्राणियो के विषय मे साधु मौन रख कर मध्यमस्थ भावना रक्खे । इस प्रकार दुष्ट दुर्गुणी के प्रति साधु के लिए उपेक्षाभाव बतलाया गया है ॥२६॥

करुणा री बात यहां नांई,
सूयगडांग टीका रे माई ।
इण रो ऊंधो अरथ केई ताणे,
'मत मार' में पाप बखाणे ।।27।।

नाम सूयडांग रो लेवे,
खोटी जुगत्यां मन सूं देवे ।
तिण हेत कियो विस्तारो,
शुद्ध श्रद्धा थी है निस्तारो ।।28।।

भावार्थ:—'वज्झा पाणा न वज्झेति इति वाय न नीसरे' इस गाथा की टीका मे यह साफ बतलाया गया है कि इस गाथा मे करुणा की बात नही है किन्तु मुनि के लिए भाषासमिति का वर्णन किया गया है । इस गाथा का वास्तविक अर्थ न समझ कर कितनेक अज्ञानी इसका ऊंधा अर्थ करते हुए कहते है कि, 'मत मार' ऐसा कहने पर साधु को पाप लगता है । इसमे वे मूढ सूयगडाग सूत्र की उपरोक्त गाथा का प्रमाण देते हैं और अपनी मनगढन्त कुयुक्तिया देते हैं । इसलिए इस गाथा का विस्तारपूर्वक अर्थ करके वास्तविक खुलासा किया गया है । इसलिए बुद्धिमान् विवेकी पुरुषो को चाहिए कि खोटी श्रद्धा को छोड़ कर शुद्ध श्रद्धा ग्रहण करें । शुद्ध श्रद्धा से ही आत्मा का कल्याण है ।।२७–२८।।

४–अधिकार जीना मरना चाहने का

—:❀❀:—

संक्षिप्त कथा:—

तेरहपन्थियो के आचार्य जीतमलजी ने भ्रमविध्वंसन पृष्ठ १३८ में लिखा है कि 'साधु अपना जीना और मरना न चाहे । जब साधु स्वय का जीना भी न चाहे तो दूसरे प्राणियो का जीना क्यों चाहेगा ?' इस प्रकार लिख कर हिसक के हाथ से मारे जाते हुए

प्राणी की प्राणरक्षा करने का निषेध करते है और प्राणरक्षा करने में एकान्त पाप बतलाते हैं। किन्तु यह जीतमलजी का अज्ञान है। उनसे पूछना चाहिए कि यदि साधु अपनी प्राणरक्षा नही चाहता तो फिर वह आहार क्यों करता है? उत्तराध्ययन सूत्र के छव्वीसवें अध्ययन मे अपनी प्राणरक्षा के लिए साधु को आहार करने का विधान किया गया है। वह गाथा यह है:—

वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुणधम्मचिंताए ॥32॥

अर्थात्—(१) भूख प्यास से उत्पन्न हुई वेदना की निवृति के लिए, (२) गुरु की वेयावच-सेवा करने के लिए (३) ईर्यासमिति का पालन करने के लिए, (४) सयम की रक्षा के लिए, (५) अपने प्राणो की रक्षा के लिये और (६) शास्त्र का पठन-पाठन आदि धर्म के चिन्तन के लिए साधु को आहार-पानी का अन्वेषण करना चाहिए ॥३२॥

इस गाथा में तथा इसकी टीका मे बतलाया गया है कि अपने जीवन की रक्षा के लिए साधु को आहार-पानी का अन्वेषण करना चाहिए क्योकि शास्त्रीय विधि से विपरीत अपने प्राणो को छोड़ना हिंसा एव आत्महत्या है। जब साधु अपने प्राणो की रक्षा करता है तब वह दूसरे प्राणी की प्राणरक्षा का उपदेश देवे तो इसमे पाप कैसे हो सकता है? यह बुद्धिमानो को स्वय विचार लेना चाहिए।

जीवणो आपणो मन में आणी,
भोजन-पान करे शुद्ध ज्ञानी।
उत्तराध्ययन छब्बीस रे मांई,
छे कारण में बात या आई ॥1॥

जो बिन अवसर अन्न त्यागे,
तो आत्महत्या मुनि ने लागे।
जीवन हेते आहार रो करणो,
सूतर मे कीनो थो निरणो ॥2॥

भावार्थः—उत्तराध्ययन अध्ययन छब्बीस की उपर बताई हुई बत्तीसवी गाथा मे साधु को आहार करने के छः कारण वतलाये गये हैं उनमें पाचवा कारण यह है कि 'साधु अपनी प्राणरक्षा के लिए शुद्ध आहार-पानी की गवेषणा करे, क्योकि यदि साधु बिना अवसर आहार-पानी छोड दे तो उसे आत्महत्या का दोष लगता है। इस प्रकार अपनी प्राणरक्षा के लिए साधु को आहार-पानी करने का विधान शास्त्र मे किया गया है ।।१-२।

अवसर जाण मरण रे काजे,

तजे आहार धर्म शुद्ध साजे ।

यों जीवणो मरणो चावे,

पाप न लागे सूतर बतावे ।।3।।

भावार्थः—अवसर देखकर मारणान्तिक सलेखनापूर्वक सथारा करके धर्म की शुद्ध आराधना के लिए साधु आहार-पानी छोड दे। इस प्रकार शास्त्राय-विधि अनुसार साधु अपना जीवन-मरण चाहता है। इसमे उसे किसी तरह का पाप नही लगता प्रत्युत धर्म की शुद्ध आराधना होती है ।३।।

राजमती रहनेमी ने भाखे

धिक्कार तू जीवन राखे ।

मरणो तुझ ने श्रेयकरी,

धर्म लाभ हुवे तुझ भारी ।।4।

भावार्थ.—कामभोगों की प्रार्थना करने वाले रथनेमि को सती राजमती जोशपूर्वक कहती है किः—

धिरत्थु तेऽजसोकामी जो तं जीवियकारणा ।

वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।।

(उत्तरा अध्य. २२ गाथा ४२)

अर्थात हे अपयश के कामिन् रथनेमि ! तुझे धिक्कार है जो तू असयमपूर्ण जीवन की इच्छा करता है, इससे तो तेरे लिए मर

जाना श्रेष्ठ है ।

इस गाथा मे जीना चाहने की बात कही गई है ॥४॥

अज्ञानी अनुकम्पा थी भागा,
ऊंधा अरथ करण यूं लागा ।
'आपणो जीवणो साधु वंछे,
तो * पापकर्म रो होवे संचे' ॥5॥

भावार्थ:—कितनेक अज्ञानियों को अनुकम्पा से द्वेष है इसलिए वे शास्त्र के पाठो का उटपटाङ्ग अर्थ करके अनुकम्पा को उठाने की निन्दित चेष्टा करते हैं । सलेखना के पाँच अतिचार बताये गये हैं उनमें तीसरा अतिचार है:—जीवियाससपओगे' और चौथा अतिचार है—'मरणासंसपओगे' । इन दोनों अतिचारों का वास्तविक अर्थ न समझकर उन लोगों ने इनका उटपटाग एव ऊंधा अर्थ किया है कि—'साधु अपना जीवन चाहे तो उसे पाप लगता है' ॥५॥

करुणा थी पर जीव बचावे,
तिण ने पाप संताप लगावे ।
इण में साख संथारा री देवे,
ऊंधा अरथ सूं दुरगति लेवे ॥6॥

भावार्थ:—उन अज्ञानियों का कहना है कि साधु अपना जीना भी न चाहे और दूसरे प्राणियो की रक्षा भी न करे । यदि कोई अनुकम्पा करके हिसक के हाथ से मारे जाते हुए प्राणी की रक्षा करता है तो उसे एकान्त पाप लगता है । इसके लिए वे लोग संथारा के अतिचारों मे आये हुए 'जीवियासंसपओगे' नामक अतिचार का प्रमाण देते हैं । इस प्रकार शास्त्रों के पाठ का ऊंधा अर्थ करने वाले नरक निगोदादि दुर्गतियों मे जाते हैं ॥६॥

जैसा कि वह कहते हैं :—

आपणो वंछे तो ही पापो, परनो कुण घाले संतापो ।
मरणो जीवणो वछे अज्ञानी समभाव राखे ते सुज्ञानी ॥

(अनु. ढाल २ गाथा ४१)

जीवियासंसपओगे' और 'मरणाससपओगे' का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है :—

पुजा श्लाघा संथ रा में देखी,
जीवणो चावे कोई विशेखी ।
अतिचार संथारा रो भाख्यो,
पिण नहीं अनुकम्पा रो दाख्यो ॥7॥

महिमा पूजा नहीं पावे,
तथा कष्ट शरीर में आवे ।
तब मरण आशंसा लावे,
संथारा मे दोष यों आवे ॥8॥

भावार्थ.—जैसे किसी मुनि ने अपना अवसर जानकर संथारा कर लिया । तब लोगो में उसकी कीर्ति बहुत फैली और उसकी महिमा पूजा होने लगी । उस समय यदि वह मुनि अपनी महिमा श्लाघा को देखकर यह चाहे कि मैं अधिक समय तक जीवित रहूं तो अच्छा है तो उस मुनि को जीवियासंसपओगे—'जीविताशंसा प्रयोग' नामक अतिचार लगता है । इसी तरह किसी मुनि ने संथारा किया । उसकी महिमा श्लाघा तो नही फैली किन्तु शरीर में वेदना अधिक बढ गई उससे घबराकर वह मुनि यह इच्छा करे कि अब शीघ्र मरण हो जाय तो अच्छा है । तो उस मुनि को 'जोवियासमपओगे—जाविताशंस प्रायोग' नामक अतिचार लगता है ।

यहाँ पर संथारे के अतिचारों का वर्णन किया गया है । अनुकम्पा का यहाँ कुछ भी अधिकार नही है ॥७—८॥

जीवन मरण तो नाम तो लेवे,
'आसंसापओग' नहीं केवे ।
अनुकम्पा उठावा रा कामी
झूठा अर्थ करे दुःखगामी ॥9॥

भावार्थः—अनुकम्पा के द्वेषी अतएव दुर्गति के अधिकारी वे अज्ञानी लोग अनुकम्पा को उठाने के लिये शास्त्रों के पाठ का ऊधा अर्थ करते हैं। वे सिर्फ जीवन और मरण का नाम लेते हैं किन्तु उनके साथ मे लगे हुए 'आससापओग' शब्द का प्रयोग नही करते अर्थात् सथारे के अतिचारो मे केवल 'जीवन और मरण' ये ही शब्द नही है किन्तु वहाँ पूरा शब्द यह है—जीवियासपओगे-जीविताशसप्रयोग' और 'मरणाससपओगे-मरणाशसप्रयोग .'

सथारे के इन अतिचारों के साथ मे आशसाप्रयोग' शब्द लगा हुआ है जिसका अर्थ अभिधानराजेन्द्रकोष मे इस प्रकार किया गया है : -

अप्राप्तप्रापणमाशंसा'

अर्थात्—नही प्राप्त हुई चीज को प्राप्त करने की इच्छा आशसा कहलाती है। इस प्रकार जो जीवन प्राप्त नही है उसके पाने की इच्छा करना अर्थात् महिमा-श्लाघा को देखकर चिरकाल तक जीने की इच्छा करना 'जीविताशसप्रयोग' कहलाता है। यही साधु के लिए वर्जित किया गया है किन्तु प्राप्त जीवन की इच्छा वर्जित नही की है। अतः साधु अपने और दूसरे का जीवन नही चाहता यह कहना अज्ञान तथा एकान्त मिथ्या है ॥६॥

५—अधिकार शीत-तपादि न चाहने सम्बन्धी

※ ※ :—

वायु वर्षा शीत्त ने तापो,
राजविग्रह रो नही संतापो ।
सुभिक्ष उपद्रव नाशो
सात बोलों रो यो समासो ॥1॥

दुःख-सुखदायो ये जाणो,
हो मत हो कहणी नहीं वाणी ।

निज सुख दुःख सम मुनि जाणे,
तेथी एवो वचन मुख नाणे ॥2॥

भावार्थः—दशवैकालिक अध्ययन ७ गाथा ५१ मे साधु को अपनी पीडा की निवृत्ति के लिए सात बातो की प्रार्थना करना वर्जित किया गया है क्योकि आर्त्त ध्यान करना साधु को उचित नही है और यह आर्त्त ध्यान है। परन्तु असयति जीव की प्राणरक्षा होने के भय से सात बातो का निषेध यहा नही किया गया है। दशवैकालिक सूत्र की वह गाथा यह है :—

वाओ वुट्ठि च सीउण्हं, खेमं धायं सिवं ति वा ।
कया णु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥51॥

अर्थात्—वायु, वर्षा, शीत उष्ण, राजरोग दूर होना, सुभिक्ष होना, उपसर्गरहित होना गर्मी आदि से घबराया हुआ साधु इस प्रकार न कहे कि ये बाते कब होगी, अथवा ये न हो। इस प्रकार इन सात बातो की प्रार्थना साधु को न करनी चाहिए। यद्यपि साधु के कहने से वायु आदि चलती नही है तथापि साधु को आर्त्त ध्यान करना उचित नही है। साधु अपने सुख और दुःख दोनो को समझता है ॥१-२॥

अज्ञानी तो उल्टा बोले,
भोलां नें नाखे झखझोले ।
उपद्रव मिटण कोई चावे,
तिण मांही वे पाप बतावे ॥3॥

भावार्थ.—दशवैकालिक सूत्र की उपरोक्त गाथा का वास्तविक अर्थ न समझकर कितनेक अज्ञानी इसका उल्टा अर्थ करके भोले प्राणियों को भ्रम मे डालते हैं वे कहते है कि यदि कोई मुनि जीवो का उपद्रव मिटाना चाहे तो उसे पाप लगता है ॥३॥

संवरद्वारे जिनजी भाख्यो
खेमंकर मुनिगुण दाख्यो ।

उपद्रव मेटे ते खेमङ्कर,
ते जीवो रो जाणो हितङ्कर ।।4।।

भावार्थ प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम सवरद्वार मे मुनि को 'क्षेमङ्कर' कहा है । 'क्षमङ्कर' शब्द का अर्थ यह है-जो जीवो के उपद्रव को मिटाकर उनका हित करे । अत. साधु प्राणियो के उपद्रव को मिटाकर उनका हित करते है । इसमे पाप बताना अज्ञानियो का कार्य है ।।४।।

श्री वीर रा गुण इम भाखे,
आदरकुंवर गोशाला ने दाखे ।
त्रस थावर खेम करता,
शान्ति-करणशील भगवन्ता ।।5।।

भावार्थः—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के गुणो का वर्णन करते हुए आर्द्रकुमार मुनि गोशाला से कहते है :—

'समिच्च लोगं तसथावराणं, खेमंकरे समणे माहणे वा'

(सूय० श्रु० २ अध्य० ६ गाथा ४)

अर्थात्—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी त्रस और स्थावर सम्पूर्ण प्राणियो के क्षम अर्थात् शान्ति एव रक्षा के लिए उपदेश देते थे । क्षेमङ्कर शब्द का अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि:—

'क्षेमं शान्तिः रक्षा तत्करणशील क्षेमंकरः"

अर्थात्—भगवान् सब प्राणियो का क्षेम शान्ति यानि रक्षा करते थे ।

यदि कोई कहे कि हिंसा के पाप से बचा देना ही जीव की रक्षा यानि क्षेम है, मरने से बचाना नही, तो उसे कहना चाहिए कि इस गाथा मे भगवान् को स्थावर जीवो का भी क्षेम करने वाला कहा है । यदि वे मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए उपदेश नही देते

थे तो स्थावर जीवो का क्षेम करने वाले क्यो कहे गये है ? क्योंकि स्थावर जीवों में उपदेश ग्रहण करने की योग्यता नही होती, इसलिए हिंसा के पाप से बचाने के लिए उनको उपदेश देना नही घट सकता किन्तु उनकी प्राणरक्षा के लिए उपदेश देना हा घटता है । अत भगवान् मरते प्राणी की क्षेम यानि प्राणरक्षा के लिए उपदेश देते थे । यह इस गाथा का अर्थ है ।

यदि दशवैकालिक सूत्र की उक्त गाथानुसार साधु को क्षेम यानि शान्ति (रक्षा) करना बुरा होता तो स्वय भगवान् त्रस और स्थावर जीवों का क्षेम यानि शान्ति, रक्षा करने के लिए उपदेश क्यो देते ? इसलिए दशवैकालिक सूत्र की उक्त गाथा का टीकानुसार यही अर्थ है कि—अपनी पीड़ा की निवृत्ति के लिए साधु को इन सात बातो की प्रार्थना नही करनी चाहिए परन्तु प्राणियो की रक्षा को पाप जानकर उसकी निवृत्ति के लिए इन सात बातों का निषेध नही किया है ॥५॥

पर उपद्रव मेटण चावे,
तिण में तो पाप न थावे ।
शीत तापादि उपद्रव कोई,
निज पे आयो मुनि लियो जोई ॥6॥

होवो, मत होवो मुनि नहीं केवे
आरतध्यान जाण मौन रेवे ।
आरतध्यान रो तीजो भेदो,
रोग आयां कोई करे खेदो ॥7॥

भावार्थ:—दूसरे प्राणियो के उपद्रव मिटाने की मुनि इच्छा करता है तो इसमे कोई पाप नही लगता । किन्तु शीत, ताप आदि से घबराकर मुनि अपनी पीडा की निवृत्ति के लिये इन सात बातो की प्रार्थना न करे क्योंकि ऐसा करने से चित्त मे आर्त्तध्यान होता है । रोग आने पर उसकी निवृत्ति के लिए चिन्ता करना आर्त्तध्यान का तीसरा भेद है ॥६-७॥

रोग रो वियोग जो चावे,

आरतध्यान प्रभुजी बतावे ।

और मुनियों रो रोग मिटावे,

ते तो आरत नहीं कहावे ॥8॥

भावार्थ:—भगवान् ने फरमाया है कि अपने शरीर मे उत्पन्न हुए रोग को मिटाने के लिए चिन्तित रहना आर्त्तध्यान है किन्तु दूसरे मुनियों के रोग को मिटाना आर्त्तध्यान नही कहलाता है ॥८॥

तिम पर उपद्रव रो जाणो,

पाप केवे ते कुमति पीछाणो ।

ज्यों वन्दना मुनि नहीं चावे,

चावे तो दूषण पावे ॥9॥

यों आपणा आसरी जाणो,

सूयगडाङ्ग सूत्र पिछाणो ।

कोई वन्दना मुनि ने देवे,

दोष तिण में सूत्र नहीं केवे ॥10॥

भावार्थ:—इसी प्रकार दूसरे प्राणियों के उपद्रव को मिटाने में कोई दोष नही है । इसमे पाप बताना अज्ञानियो का कार्य है । जिस प्रकार मुनि अपने लिए 'वन्दना' नही चाहते और चाहने पर उन्हे दोष लगता है किन्तु कोई मुनि को 'वन्दना' करे तो इसमे कोई दोष नही है । इसी तरह यहां भी समझना चाहिए कि शीत, तपादि का परीषह अपने ऊपर आने पर उसकी निवृत्ति के लिए चिन्तित रहकर आर्त्तध्यान करना मुनि के लिए दोष है किन्तु दूसरे प्राणियों के उपद्रव को मिटाने मे कोई दोष नही है ॥९-१०॥

खेम निरउपद्रव तिम जाणो,

पर रो वंछ्या न दोष रो ठाणो ।

खेमङ्कर मुनि गुण कहिये,

ते वंछ्या दोष किम लहिये ॥11॥

भावार्थः—अपनी पीड़ा की निवृत्ति के लिए मुनि आर्त्त ध्यान न करे किन्तु दूसरे प्राणियो का क्षेम अर्थात् रक्षा करने में मुनि को कोई दोष नही लगता है क्योकि 'क्षेमङ्कर' यह तो मुनि का गुण है फिर दूसरे प्राणियो का क्षेम अर्थात् शान्ति, रक्षा करने में गुण मुनि को दोष कैसे लग सकता है ?

सूयगडाग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के छठे अध्ययन की चौथी गाथा में भगवान् महावीर स्वामी के लिए 'क्षेमङ्कर' विशेषरण दिया है । यथाः—

'समिच्च लोगं तसथावराण, खेमंकरे समणे माहणे वा'

क्षेमङ्कर शब्द का अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि;—

'क्षेमं शान्तिःरक्षा तत्करणशील. क्षमङ्करः"

अर्थात्—भगवान् महावीर स्वामी त्रस और स्थावर समस्त प्राणियों का क्षेम अर्थात् शान्ति रक्षा करते थे ।

इसलिए दशवैकालिक सूत्र की उक्त गाथा में गर्मी आदि से पीडित होकर साधु को अपनी पीडा की निवृति के लिए वायु, वृष्टि सात वातों की प्रार्थना करने का निषेध किया गया है किन्तु प्राणियों की रक्षा को पाप जानकर उसकी निवृत्ति के लिए इन सात बातो की प्रार्थना का निषेध नही किया गया है । इसलिए इस गाथा का नाम लेकर जीवरक्षा में पाप सिद्ध करना अज्ञानियों का काम है ।।११।।

६—अधिकार नौका का पानी बताने का

—:❀❀:—

साधु बैठा नाव में आई
नावड़िये नाव चलाई ।
नाव फूटी मांय आवे पाणी,
उपरा उपरी जल सूं भराणी ।।1।।

आता पाणी बतावा रो नेमो
तेथी मुनि बतावे केमो ।
अव र डूबण केरो आवे,
जतना से निकल मुनि जावे ॥2॥

विधि से उतरया नदी घाट,
'आहारियं रियेज्जा' पाठ ।
जतना सूं निकलने जाणो,
डब जाणे रो नहि बखाणो ॥3॥

भावार्थ:—शास्त्र में कथन किया गया है कि यदि कभी मुनि को नदी पार करनी पडे तो मुनि नौका मे बैठ सकता है । जिस नौका मे मुनि बैठा है संयोगवश उस नौका मे कोई छेद हो जाय और उस छेद में से नौका में पानी आने लगे तो उस आते हुए पानी को मुनि बतावे नही क्योकि नौका मे आते हुए पानी को बताना मुनि का कल्प नही है । यदि नौका डब जाने का अवसर आ जाय तो 'आहारियं रियेज्जा' अर्थात् उस नाव से निकलकर शास्त्रीय-विधि अनुसार यतना-पूर्वक तैर कर नदी पार कर जाय । ऐसा आचाराङ्ग सूत्र मे विधान किया गया है किन्तु जल से डूब जाने का विधान नही है ॥१-३॥

एवा सरल अर्थ ने छोड़ी,
खोटी ढालां मूंडा सूं जोड़ी ।
(कहे) "मनुज बचाया पापो,
तेथी (मुनि) जल न बतावे आपो ॥4॥

जो जीव बचाया में धर्मो,
तो मनुज वचियां हुवे शुभ कर्मो ।
जल बताई नांय बचावे,
(तेथी मनुज) बचायां पाप बहु थावे" ॥5॥

भावार्थ:—आचाराङ्ग सूत्र के पाठ का सीधा और सरल अर्थ

जो ऊपर बताया गया है उसको छोडकर तेरहपथियों के आचार्य भीषणजी और जीतमलजी ने अपनी इच्छानुसार ढालें जोडकर मनगढन्त उटपटांग अर्थ किया है। उनका कहना है कि 'मनुष्यों की रक्षा करना पाप है इसीलिए नाव मे आते हुए पानी को मुनि नही बताते। यदि मनुष्यों की रक्षा करने में धर्म होता हो तो मुनि नाव मे आते हुए पानी को क्यो नही बताते ? इसलिए मनुष्यों की रक्षा करना महान् पाप है' ॥४-५॥

एवी खोटी करे कोई थापो,
जांरे उदय हुवा महा पापो ।
जो जल ने मुनि नाय बतावे,
(तेथी) मनुज बचायां पाप में गावे ॥6॥

भावार्थः—'नाव मे आते हुए पानी को मुनि नही बताते इसलिए मनुष्यों की एव जीवों की रक्षा करने मे पाप होता है।' इस प्रकार जो खोटी स्थापना करता है उस अज्ञानी के महान् पापकर्मों का उदय हुआ है ऐसा समझना चाहिए ॥६॥

मुनि निज रो तो जीवणो चावे,
आहार पाणी मुनि नित खावे ।
निज नी अनुकम्पा करणो,
या तो तुम पिण मुख थो वरणी ॥7॥

तो निज अनुकम्पा लाई,
क्यो पाणी वतावे नांही ।
(कहे) अनुकम्पा तो निज री करणी,
पाणी वतावा री (सूतर में) नाही वरणी ॥8॥

कल्प पाणी बतावा रो नांही,
(पिण निज) अनुकम्पा में दोष न कांई ।
तो इम हिज समझो रे भाई,
पर री अनुकम्पा धर्म रे मांई ॥9॥

मनुजां ने बचाया में धर्मो
यो ठाणायङ्ग रो मर्मो ।
निज (अनुकम्पा) काजे न पाणी बतावे,
(तिम) पर काजे पिण नांही दिखावे ।।10।।

भावार्थ:—उन लोगों से पूछना चाहिए कि 'आप लोग दूसरे प्राणी की रक्षा करना पाप मानते हैं अपनी रक्षा करने मे तो पाप नही मानते। अपनी रक्षा करना तो आप साधु का कर्त्तव्य मानते है इसीलिए साधु सदा आहार-पानी की गवेषणा करता है। ऐसी दशा मे दूसरे मनुष्यो की रक्षा के लिए न सही, अपनी रक्षा के लिए साधु नाव मे आता हुआ पानी क्यों नही बतला देता ? क्योकि नाव मे पानी आने पर दूसरे लोगो के समान साधु स्वयं भी तो डूब सकता है फिर वह अपनी रक्षा के लिए पानी क्यो नही बताता ? यदि कहो कि अपनी रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य तो है परन्तु पानी बतलाने की तीर्थकर भगवान् की आज्ञा नही है, पानी बताना साधु का कल्प नही है इसलिए साधु नाव मे आता हुआ पानी नही बतलाता तो उसी तरह यह भी समझो कि दूसरे जीव की रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य है परन्तु पानी बतलाना उसका कल्प नही है इसलिए साधु नाव में आता हुआ पानी नही बतलाता। ठाणाङ्ग सूत्र की अनुकम्पा की चौभङ्गी मे स्थविरकल्पी साधु को उभयानुकम्पक बतलाया है। जिस तरह वह अपनी रक्षा अपना कर्त्तव्य समझता है उसी तरह दूसरों की रक्षा करना भी वह अपना कर्त्तव्य समझता है किन्तु पानी बताने का उसका कल्प नहीं है इसलिए वह पानी नही बताता ॥७-१०॥

पाणी बतावा रो कल्प नांहीं,
मनुजरक्षा धर्म रे माहीं ।
जीव बचिया न व्रत में भङ्गो,
तिण रो साक्षी आचारङ्गो ।।11।।

भावार्थ :—जिस तरह अपनी रक्षा करना धर्म है उसी तरह दूसरे मनुष्यों की रक्षा करना भी धर्म है। दूसरे जीवो की रक्षा करने से साधु के व्रत भङ्ग नही होते यह आचाराङ्ग सूत्र मे स्पष्ट बतलाया

गया है। किन्तु पानी बताने का उनका कल्प नहीं है इसलिए नाव मे आता हुआ पानो वे नही बताते ॥११॥

अनुकम्पा किण री न करणी,❀
ऐसो आचारंगे ने वरणी ।
शाङ्का होवे तो सूतर देखो,
नाव रो बतायो जठे लेखो ॥12॥

भावार्थ:—भीषणजी ने अपनी अनुकम्पा की ढाल में यह लिखा है कि आप डूबे अनेरा प्राणो, अनुकम्पा किणरी न आणी' अर्थात् नाव में बैठा हुआ साधु आप भी डूबे और दूसरे प्राणी भी डूब जाए परन्तु साधु किसी पर अनुकम्पा न करे। यह उनका कथन अयुक्त है। ऐसा मानने से भीषणजी तथा उनकी सम्प्रदाय के सब साधु ठाणाङ्ग सूत्र की पूर्वोक्त चौभङ्गी के 'उभयाननुकम्पक' नामक चौथे भङ्ग मे शामिल होते है क्योकि इस भङ्ग वाले जीव न अपनी अनुकम्पा करते हैं और न पर की, जैसे कालशोकरिक आदि। किन्तु यह बात शास्त्र तथा इनके सिद्धान्त से भी विरुद्ध है। आचाराङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुत-स्कन्ध के छब्बीसवें अध्ययन मे जहा नाव का प्रकरण बतलाया गया है वहा यह भी बतलाया गया है कि यदि डूबने का अवसर आय तो साधु तैर कर नदी पार कर जाय। यदि भीषणजी की उक्ति अनुसार अपनी रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य नहीं हाता तो आचाराङ्ग में नदी पार कर साधु की अपनी रक्षा करना कैसे बतलाया जाता ? इसलिए यह समझना चाहिए कि ठाणाङ्ग सूत्र की चौभङ्गी के अनुसार स्थविरकल्पी साधु अपनी और दूसरे की दोनों की रक्षा करते हैं परन्तु नाव मे आता हुआ पानी गृहस्थ को बताना उनका कल्प नही है इसलिए नाव मे आता हुआ पानी नही बताते ॥१२॥

❀ जैसा कि वे कहते हैं :—

आप डूबे अनेरा प्राणी, अनुकम्पा किण री नही आणी ॥
(अनु. ढाल २ गाथा १९)

॥ इति दूसरी ढाल समाप्त ॥

❀ दोहा ❀

वाछे मरण जीवणो, धर्म तणे जे काज ।
सतधारी ते शूरमा, सारचा आत्मकाज ।।1।।

भावार्थ:—जो पुरुष धर्म के लिए जीना और मरना जानते हैं वे सत्यधारी शूरवीर हैं । ऐसे पुरुष शीघ्र ही आत्मकार्य सिद्ध कर लेते है ।।१ ।

(पर) अनुकम्पा कीधां थकां, कटे कर्म नो वंश ।
ठाणायङ्ग चौथे कह्यो, मोह तणो नहीं अंश ।।2।।

भावार्थ:—ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे कहा है कि दूसरे जीवों की अनुकम्पा करने से कर्मों की परम्परा का विनाश हो जाता है इसमें मोहनीय कर्म का अश नही है अर्थात् यह मोहानुकम्पा नही है ।।२।।

पर अनुकम्पा जो करे, मिटे राग अरु धेख ।
भोग मिटे इन्द्रियां तणा, अन्तर-दृष्टि देख ।।3।।

भावार्थ.—दूसरे जीवों की अनुकम्पा करने से इन्द्रियो की विषयलालसा तथा राग और द्वेष का विनाश होता है । इस बात पर अन्तर्दृष्टि से विचार करना चाहिए ।।३।।

जीव दया रे कारणे, मेघरथ खंडी काय ।
शान्तिनाथ नो जीव ये, समवायंग रे मांय ।।4।।

भावार्थ.—समवायाङ्ग सूत्र में बतलाया गया है कि सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ का जीव पूर्वभव में मेघरथ राजा था । उसने जीवदया के लिए अर्थात् एक कबूतर की रक्षा के लिये अपने शरीर के टुकड़े कर दिये अर्थात् उन्होंने अपने शरीर का मास देकर भी कबूतर की रक्षा की थी ।।४।।

सेठां रया चल्या नहीं सेंठा, कर्म किया चकचूर ।
ममता छांडी देह नो, दयावन्त महाशूर ।।5।।

भावार्थ:—दयावान् महाशूरवीर मेघरथ राजा अपने शरीर की ममता छोड़कर दृढ रहा किन्तु लेशमात्र भी चलित नही हुआ। उस समय अशुभ कर्मों का क्षय करके उन्होने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया ।।५।।

—:Δ:—

-: तीसरी ढाल :-

-: ▭▭ :-

१—अधिकार मेघरथ राजा का परेवा (कबूतर) पर दया करने का

[तर्ज:—बिछया नी]

इन्द्र करी परसंसिया,
मेघरथ मोटो राय रे जीवा ।
दयावन्त दानेश्वरी,
शरणागण देवे सहाय रे जीवा ॥1॥

मोह अनुकम्पा न जाणिये,
नहीं मोह तणो यह काम रे जीवा ।
परकाश अन्धेरा रा ज्यूं जुदा,
दोयां रा न्यारा-न्यारा नाम रे जीवा ॥मो. 2॥

भावार्थ:—एक समय सौधर्म देवलोक में देवों की सभा हो रही थी उस समय इन्द्र ने मेघरथ राजा की प्रशंसा करते हुए कहा कि इस समय जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह की पुष्कलावती विजय में मेघरथ राजा बडा दानी और दयावान् है । वह शरणागत की पूर्णरूप से रक्षा करता है ॥१॥

कितनेक अज्ञानी जीव रक्षा को मोह-अनुकम्पा कहते हैं किन्तु इसे मोह-अनुकम्पा न समझना चाहिए, क्योंकि अनुकम्पा मे मोह नही होता । जिस प्रकार अन्धेरा और प्रकाश तथा रात और दिन परस्पर विरोधी हैं उसी प्रकार मोह और अनुकम्पा ये दोनों भी परस्पर विरोधी हैं । जहा मोह है वहां अनुकम्पा नही हो सकती और जहां अनुकम्पा है

वहा मोह नही हो सकता । मोह और अनुकम्पा ये दोनो भिन्न-भिन्न हैं ॥२॥

तिण काले एक देवता,
दयाभाव देखण रे काज रे जीवा ।
रूप परेवो बाज नो,
तिण कीनो वैक्रिय साज रे जीवा ॥मो. 3॥

पडियो राय री गोद में,
भय थी तड़फे तस काय रे जीवा ।
शरणो दियो महारायजी,
भय मत पावो कहि वाय रे जीवा ॥मो. 4॥

भावार्थः—इन्द्र द्वारा की गई मेघरथ राजा की प्रशंसा एक मिथ्यात्वी देव को सहन न हुई । उसने मेघरथ राजा की दया की परीक्षा करने की ठानी । उसने वैक्रिय करके कबूतर और बाज पक्षी ऐसे अपने दो रूप बनाये । आगे कबूतर उड़ने लगा और उसको पकड़ने के लिए पीछे बाज उड़ने लगा । वह उड़ता हुआ कबूतर मेघरथ राजा की गोद मे गिरा । भय के मारे उसका शरीर काप रहा था । तब मेघरथ राजा ने उसे शरण दी और कहा कि हे कबूतर ! अब तू मेरी शरण मे आ चुका है । अब तुझे किसी से डरने की आवश्यकता नही है । अब तू सब प्रकार से अभय है ॥३-४॥

बाज कहे भख माहरो,
मुझ भूखा नो यह शिकार रे जीवा ।
और कछू लेसूं नहीं,
मोने आपो म्हारो आहार रे जीवा ॥मो. 5॥

भावार्थ—इतने मे कबूतर के पीछे उड़ने वाला वह बाज भी वहा आ पहुचा और राजा से कहने लगा कि हे राजन् ! मैं भूखा हूं । यह कबूतर मेरा शिकार है, यह मुझे दे दीजिए । मैं और कुछ नही चाहता ॥५॥

यो शरणागत माहरे,
और मांग तू वस्तु रसाल रे जीवा ।
जे मांगे ते आपसूं,
हूं जीवदया प्रतिपाल रे जीवा ।।मो. 6।।

भावार्थः—तब राजा बाज से कहने लगा कि यह कबूतर तो मेरा शरणागत है । मैं इसे नही दे सकता । शरणागत की रक्षा करना मेरा धर्म है । मैं जीवदया प्रतिपालक हूं । इसलिए इसके बदले तू और कोई दूसरी चीज मांग ले । मैं प्रसन्नतापूर्वक वह तुझे दे दूगा ।।६।।

मांस आपो निज देह नो,
इण रे बराबर तोल रे जीवा ।
हर्षित हो राय इम कहे,
यह तो भलो कह्यो थें बोल रे जीवा ।।मो. 7।।

भावार्थ:—तब बाज कहने लगा कि हे राजन् ! मैं मासभोजी पक्षी हूं । मास के सिवाय दूसरी चीज नही खाता इसलिए यदि आप इस कबूतर को न देना चाहे तो इसके बराबर तोलकर अपने शरीर का मास मुझे दे दीजिये । बाज के वचन को सुनकर राजा बड़ा हर्षित हुआ और कहने लगा कि यह तो तुमने अच्छा मागा ।।७।।

तुरन्त तराजू मांड ने,
राय खण्डन लागो काय रे जीवा ।
हाहाकार हुओ घणो,
अन्तेवर अति बिलखाय रे जीवा ।।मो. 8 ।

भावार्थ.—राजा ने उसी वक्त तराजू मंगवाया । उसके एक पलड़े मे कबूतर को रखकर दूसरे पलडे मे अपने शरीर का मास काटकर रखने लगा । राजा के इस कार्य को देखकर महल मे हाहाकार मच गया । खिन्न होकर सब रानियां राजा से कहने लगी कि हे नाथ ! आप यह क्या कर रहे है ? इस तुच्छ कबूतर के लिए आप अपने अमूल्य शरीर को काट रहे हैं ।।८।।

उत्तर दीधो राजवी,

नहीं मोह तणो यहां काम रे जीवा ।

क्षत्री धर्म छै माहरो,

धर्म राखे छै थारो स्वाम रे जीवा ।।मो. 9।।

भावार्थः—तब राजा ने उनको उत्तर दिया कि तुम वृथा मोह न करो । यहां मोह करने का काम नही है । मैं क्षत्रिय हू । क्षत्रिय शब्द का अर्थ हैः—

'क्षतात् विनाशात् त्रायते रक्षति क्षत्रं तदस्यास्तीति इति क्षत्रियः'

अर्थात्—विनाश से यानि मरते हुए प्राणी के प्राणों की जो रक्षा करे उसे क्षत्र कहते हैं, वह धर्म जिसका हो वह क्षत्रिय कहलाता है । इसलिए मैं अपने क्षत्रिय-धर्म की रक्षा कर रहा हूं ।।९।।

सब समझाया ज्ञान सूं,

विलखाया सामा जोय रे जीवा ।

इसड़ो धर्मी जगत् में,

हुओ वली होसी न कोय रे जीवा ।।मो. 10।।

निज नो मरणो बंछियो,

ते तो जाणी धर्म रो काम रे जीवा ।

प्राण कपोत रा राखिया,

ते शुद्ध धर्म रे नाम रे जीवा ।मो. 11।।

भावार्थ :—राजा ने उन सबको ज्ञानपूर्वक समझा दिया । वे सब राजा की तरह खिन्न दृष्टि से देखने लगे । राजा के इस कार्य को देखकर सब लोग कहने लगे कि ससार में ऐसा धर्मी न हुआ और न होगा । राजा ने पर-अनुकम्पारूप धर्म के लिए अपने शरीर को न्यौछावर करके कबूतर के प्राणों की रक्षा की ।।१०–११।।

तन खंड्यो मन खंड्यो नहीं,

अपूरण जाण्यो तोल रे जीवा ।

वीर रसे महारायजी,

तन मेल दियो अनमोल रे जीवा । मो. 12।।

भावार्थ:—शरीर का मास काटकर राजा उस पलड़े मे रखने लगा किन्तु वह कबूतर तो वैक्रिय शरीरधारी देव था इसलिए वह इतना भारी हो गया कि मांस उसके बराबर नही हुआ और वह कबूतर वाला पलड़ा नीचे झुकता रहा । तब राजा ने अपना सारा शरीर उस पलड़े मे रख दिया । तब उस देव ने अवधिज्ञान द्वारा देखा तो ज्ञात हुआ कि राजा का चित्त अनुकम्पा से तिलमात्र भी चलित नही हुआ है बल्कि वीररस से परिपूर्ण उसके अनुकम्पा के परिणाम अत्यन्त शुद्ध, उज्ज्वल और चढ़ते हुए हैं ।।१२।।

जय जयकार सुर करे,

धन-धन तूं महाराय रे जीवा ।

इन्द्र किया गुण ताहरा,

मै देख लिया यहां आय रे जीवा ।।मो. 13।।

भावार्थ.—उसी समय देव ने बाज और कबूतर का रूप छोड़कर अपना असली रूप धारण किया और मेघरथ राजा की जय-जयकार करता हुआ कहने लगा कि हे राजन् ! आप धन्य हैं आज देवसभा के अन्दर इन्द्र ने आपके गुणों की प्रशसा की थी किन्तु मैंने उस पर विश्वास नही किया । इसलिए मैं बाज और कबूतर का रूप धारण करके आपकी परीक्षा करने के लिए यहां आया । जैसी इन्द्र ने आपकी प्रशंसा की थी वैसे ही गुण आपके अन्दर विद्यमान है । यह मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है ।।१३।।

खम अपराध तूं माहरो,

मै हुओ सुवरण पारस संग रे जीवा ।

गोत तीर्थङ्कर बांधियो,

राय दयातणे परसंग रे जीवा ।।मो. 14।।

भावार्थ—फिर देव दोनों हाथ जोडकर कहने लगा कि "हे राजन् ! मैंने आपको इतना कष्ट दिया इस अपराध के लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हू । आप क्षमासागर हैं अतः आप मेरे अपराध को क्षमा करें । आप लोह को सोना बनाने वाले पारस के समान हैं । आपके सयोग से मैं सुवर्ण बन गया हू अर्थात् जिस प्रकार पारस-मणि के सयोग से लोह सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार आपके संयोग से मैं मिथ्यात्वी से सम्यक्त्वी बन गया हू ।"

नोट—इस भव से बहुत पहले किसी एक भव मे मेघरथ राजा का जीव महाविदेह क्षेत्र मे अपराजित नाम के बलदेव थे और इस देव का जीव दमितारि प्रतिवासुदेव था । अपराजित बलदेव के छोटे भाई अनन्तवीर्य वासुदेव ने दमितारि प्रतिवासुदव को मारा था । इसके पश्चात् कुछ भव निकल जाने पर भी इस समय उसका पूर्वभव का द्वेष जागृत हो गया । इस कारण से इन्द्र द्वारा की हुई मेघरथ राजा की प्रशसा उसे सहन न हुई । इस-लिए वह उसकी परीक्षा करने के लिए आया था ।

इस प्रकार राजा मेघरथ के गुणों की प्रशसा करता हुआ देव अपने स्थान को चला गया ।

इस अनुकम्पा से राजा मेघरथ ने तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया, जो कि वर्तमान अवसर्पिणी मे सोलहवे तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ हुए ॥१४॥

इण अनुकम्पा में मोह कहे,
उण रे पूरो उदे मिथ्यात रे जीवा ।
यह तो परतख मोह रो जीतणो,
ग्रंथ मांहे देखो साक्षात रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥15॥

भावार्थ—जो लोग इस अनुकम्पा को मोह-अनुकम्पा कहते हैं ये मिथ्यात्वी हैं । समझना चाहिए कि उन लोगो के पूर्ण रूप से

मिथ्यात्व का उदय है । इस अनुकम्पा मे तो मोह को जीत गया है क्योंकि मोह को जीते विना शरीर पर से ममता नही उतरती । इसलिए मेघरथ राजा की इस अनुकम्पा को मोह-अनुकम्पा कहने वाले मिथ्यात्वी एव अज्ञानी हैं ।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित मे तथा अन्य ग्रन्थो मे यह कथा विस्तारपूर्वक दी हुई है ॥१५॥

□□□

२—अधिकार अरणकजी की अनुकम्पा का

संक्षिप्त कथा

अङ्ग देश में चम्पा नाम की नगरी थी । वहां चन्द्रछय नाम का राजा राज्य करता था । उस नगरी मे अरणक नाम का एक श्रावक रहता था । एक समय अरणक श्रावक ने दूसरे बहुत से व्या-पारियो के साथ व्यापार के निमित्त लवण समुद्र मे यात्रा की । जब जहाज समुद्र के वीच मे पहुचा तो अकाल ही मे मेघ की गर्जना होने लगी और भयङ्कर बिजलिया चमकने लगी ।

अरणक परीक्षा कारणे,
देव वोले इण पर वाय रे जीवा ।
अणुव्रत पांचो निर्मला,
दयाधर्म धारे चित्तचाय रे जीवा ।
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥1॥

व्रत तोड़ हिंसा करसी नहीं,
अनुकम्पा न छोड़सी आज रे जीवा ।
धर्म न छोड़सी थाहरो,
तो हूं करसूं मोटो अकाज रे जीवा ॥मो. 2॥

भावार्थः—इसके पश्चात् अरणक श्रावक की परीक्षा करने के लिए हाथ मे तलवार लिए, भयङ्कर रूप वाला एक पिशाच अरणक श्रावक के सामने उपस्थित हुआ और कहने लगा कि अरणक श्रावक ! तू श्रावक के पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतो का भली प्रकार पालन कर रहा है। तुझे अपने धर्म से विचलित होना इष्ट नही है किन्तु मैं तुझे तेरे धम से विचलित करूगा। यदि तू अपने व्रतो को तोडकर एव अनुकम्पा को छोडकर हिंसा न करेगा एव अपने धर्म को न छोडेगा तो मैं तेरा बडा भारी अनर्थ करूगा। मैं तेरे जहाज को आकाश मे उठाकर फिर समुद्र मे पटक दूगा जिससे आर्त्त रौद्र ध्यान करता हुआ तू मर कर दुर्गति को प्राप्त होगा ॥१-२॥

वचन सुणी डरियो नहीं,
इम चिन्ते चित्त मुझार रे जीवा ।
धर्मबोध इण रे नहीं,
तेथी पाप करण झूंझार रे जीवा ॥मो. 3॥

सुमति तजी कुमती भजी,
तेथी धर्म छुड़ावण चाय रे जीवा ।
मै मर्म जाण्यो छै एहनो,
तेथी धर्म छोड्यो किम जाय रे जीवा ॥मो. 4॥

पाप है घातक जगत में,
दुःख देवे करे अकाज रे जीवा ।
जगवच्छल जिनधर्म है,
सुखदाई सारे काज रे जीवा ॥मो. 5॥

अद्धि-मींजा रम रह्यो,
जारे धर्म तणो अनुराग रे जीवा ।
केम गहे कर कांकरो,
रतन चितामणि त्याग रे जीवा ॥मो. 6॥

दृढ़ रह्यो चलियो नहीं,
देव कीनो उपसर्ग दूर रे जीवा ।
धन–धन मुख से बोलतो,
दयाधर्मी तूं महाशूर रे जीवा ॥मो. 7॥

भावार्थः—पिशाच के उपरोक्त वचनों को सुनकर जहाज में बैठे हुए दूसरे लोग बहुत घबराये और इन्द्र, वैश्रमण, दुर्गा आदि देवों की अनेक प्रकार की मान्यताए करने लगे किन्तु अरणक श्रावक किञ्चिन्मात्र भी घबराया नही और न अपने धर्म से विचलित ही हुआ । प्रत्युत वस्त्र से भूमि का प्रमार्जन करके सागारी संथारा कर धर्मध्यानपूर्वक शान्त चित्त से बैठ गया और विचार करने लगा कि 'इस पिशाच को धर्म का बोध नही है इसीलिए यह पाप करने के लिए उद्यत हुआ है । सुमति को छोड़कर कुमति ने इसके हृदय मे निवास किया है इसीलिए यह मुझे धर्म छुडाना चाहता है किन्तु मैंने तो धर्म का मर्म पहचान लिया है । मैं इसे कैसे छोड़ सकता हू ? संसार में पाप ही आत्मिक सुखों का घातक है । यह जीवो को दु:ख देता है और अकार्य भी करवाता है तथा अन्त में दुर्गति मे ले जाता है । संसार मे एक जिनधर्म (वीतराग प्ररूपित धर्म) ही श्रेष्ठ है । जगत्वत्सल है । इसका सेवन करने से प्राणी सुखी होते हैं और अन्त में मोक्ष को प्राप्त करते हैं । जिन पुरुषो के अस्थि और अस्थिमिंजा मे धर्म का अनुराग हो, हो, क्या वे कभी धम से विचलित हो सकते है ? कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष होगा जो चिंतामणि रत्न को छोडकर ककर को लेना चाहेगा ? अर्थात् कोई नही ।" इस प्रकार विचार करता हुआ अरणक श्रावक शान्त चित्त से निश्चल बैठा रहा ।

अरणक श्रावक को निश्चल शान्त बैठा हुआ देखकर वह पिशाच अनेक प्रकार के भयोत्पादक वचन कहने लगा और उस जहाज को दो अंगुलियों से उठाकर आकाश में बहुत ऊचा ले गया और अरणक श्रावक से फिर इसी प्रकार कहने लगा कि तू अपने धर्म को छोड़ दे, किन्तु वह अपने धर्म से किञ्चन्मात्र भी चलायमान नही हुआ । अरणक श्रावक को इस प्रकार अपने धर्म मे दृढ देखकर वह पिशाच शान्त हो गया । पिशाच का रूप छोडकर उसने अपना असली देवरूप

धारण किया । फिर वह अरणक श्रावक के सामने हाथ जोडकर उपस्थित हुआ और कहने लगा कि "हे देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं। आपका जन्म सफल है । आज देवसभा के अन्दर शक्रेन्द्र ने आपकी धार्मिक दृढता की प्रशसा की थी कि "जीवाजीवादि नवतत्त्व का ज्ञाता अरणक श्रावक अपने धर्म के विषय में इतना दृढ है कि उसको देव दानव भी निर्ग्रंथ प्रवचन से विचलित करने में और समकित से भ्रष्ट करने मे समर्थ नही है ।" मुझे शक्रेन्द्र के वचनो पर विश्वास नही हुआ । अतः मैं आपकी धार्मिक दृढ़ता की परीक्षा करने के लिए यहां आया था ।

हे देवानुप्रिय ! जिस तरह शकेन्द्र ने आपकी प्रशंसा की थी वास्तव मे आप वैसे ही हैं । मैंने जो आपको कष्ट दिया उसके लिए आपसे क्षमा चाहता हू । मेरे अपराध को क्षमा करें " इस प्रकार अपने अपराध की क्षमायाचना करके देव अरणक श्रावक की सेवा मे दिव्य कुण्डलो की दो जोडी रखकर अपने स्थान को चला गया। अपने आपको उपसर्ग रहित समझकर श्रावक ने अपना सागारी सथारा पार लिया ।३-७।।

कुमति कदाग्रही इम कहे,
जहाज में मनुज अनेक रे जीवा ।
मोह करुणा न आणी केहनी, ❀
मरतो नहीं राख्यो एक रे जीवा ।।मो॰ 8।।

❀ जैसा कि वे कहते हैं –

तिण सागारी अणसण कियो, धर्मध्यान रह्यो चित्त ध्याय रे।
सगलां ने जाण्या डूबता, मोह करुणा न आणी काय रे जीवा ।।
मोह अनुकम्पा न आणिये ।।४।।
लोक बिलबिल करता देख ने, अरणक रो न बिगड्यो नूर रे।
मोह करुणा न आणी केहनी, देव उपसर्ग कीधो दूर रे जीवा ।।
मोह अनुकम्पा न आणिये ।।८।।
(अनुकम्पा ढाल ३ गाथा ४ ८)

एहवी अणहूंती बात उठाय ने,
अनुकम्पा में थापे पाप रे जीवा ।
जां रे मोह उदे अति आकरो,
तेहथी खोटी करे छै थाप रे जीवा ।।मो. 9।।

भावार्थः कितनेक विपरीत बुद्धि वाले मिथ्यात्वी इस प्रकार मनगढन्त कल्पना करके कहते हैं कि उस जहाज मे अनेक मनुष्य थे किन्तु अरणक श्रावक ने किसी की भी मोह-अनुकम्पा नहीं की और मरने से किसी को नही बचाया । इस प्रकार असत् बात उठाकर अनुकम्पा मे पाप की स्थापना करते हैं, उन विचारे अज्ञानियों के महामोहनीय कर्म का प्रवल उदय समझना चाहिए, जिससे वे ऐसी खोटी स्थापना करते हैं ।।८-९।।

जहाज राखण धर्म छोडयो नहीं,
तेहथी मोह करुणा री थाप रे जीवा ।
त्यांने बुधवन्त कहे इण परे,
इक हेतु रो देवो जवाब रे जीवा ।।मो. 10।।

रावण सीता ने कहे
तू मुझ ने न करे स्वीकार रे जीवा ।
तेथी मरसे नर अति सामटा,
थारे नहीं दया सूं प्यार रे जीवा ।।मो. 11।।

भावार्थः—यदि कोई मूर्ख ऐसी स्थापना करे कि "अरणक श्रावक ने अपने धर्म को न छोडकर जहाज मे रहे हुए मनुष्यो की रक्षा नहीं की । इसलिए इसे मोह-अनुकम्पा समझना चाहिए । अनुकम्पा करने मे मोह समझकर अरणक श्रावक ने उनकी रक्षा नही की थी" तो बुद्धिमान् पुरुष उससे पूछता है कि मेरे एक प्रश्न का जवाब दोः—

रावण सीता से कहता है कि 'हे सीते ! तू मुझे स्वीकार नहीं करती है तो मेरे और राम के बीच संग्राम होगा और बहुत से मनुष्य मारे जाए जाएगे । इसलिए मैं समझता हूं कि तेरे हृदय में

दया नही है क्योंकि यदि तेरे हृदय में दया होती और अनुष्यो को बचाने में धर्म होता तो तू मुझे स्वीकार कर लेती । इसलिए मैं मानता हूं कि तेरे हृदय मे दया नही है और मनुष्यो की रक्षा करने मे धर्म नही है ।"

क्या रावण का उपरोक्त कथन सत्य है और क्या उसकी युक्ति ठीक है तो कहना पड़ेगा कि, रावण का कथन असत्य एव कुयुक्तिपूर्ण है । इस पर सीता उसे जवाब देती है कि:—

दयाधर्म मुझ मन वस्यो,
हूं तो सगलां रो चाहूं खेम रे जीवा ।
थारे हिरदे खोटी वासना,
म्हारे हिरदे सांचो नेम रे जीवा ।।मो. 12।।

भावार्थ:—"मेरे हृदय में दयाधर्म बसा हुआ है और मैं तो संसार के समस्त प्राणियो का क्षमकुशल चाहती हू किन्तु तेरे हृदय में खोटी वासना है और मैं अपने व्रत-नियम पर अर्थात् शील पर दृढ हूं" ।।१२।।

शील न सीता खण्डियो,
तेथी अनुकम्पा में पाप रे जीवा ।
एहवी मूढ़ करे कोई कल्पना,
के ज्ञानी केरी या थाप रे जीवा ।।मो. 13।।

भावार्थ:—"रावण और सीता के उपरोक्त प्रश्नोत्तर को सुनकर यदि कोई यह कल्पना करे कि सीता ने शील खण्डित नही किया इसलिए अनुकम्पा करने में पाप है ।" ऐसी कल्पना करने वाला मूर्ख कहलायगा या बुद्धिमान् ?।।१३।।

जब जवाब न आवे एहनो,
तब ज्ञानी कहे समझाय रे जीवा ।
शील सती खण्डे नहीं,
तिण रे रक्षा घणी दिल मांय रे जीवा ।।मो. 14।।

भावार्थ.—जब उपरोक्त प्रश्न का जबाब उन्हे कुछ नही आता है तब ज्ञानी पुरुष उन्हे समझाता है कि सती के हृदय मे दया तो बहुत है किन्तु वह अपना शील खण्डित नही करती। उसे अपना शील प्राणो से भी ज्यादा प्रिय है।

इसलिए सती के शील खण्डित न करने से अनुकम्पा में पाप की कल्पना करने वाला मूर्ख है क्योकि यहां अनुकम्पा से कोई सम्बन्ध नही है। यहा तो शीलरक्षा का सवाल है। उसी तरह अरणक श्रावक के विषय मे भी अनुकम्पा मे पाप की कल्पना करने वाला मूर्ख है क्योकि अरणक के सामने अनुकम्पा का सवाल नही है किन्तु अपने व्रत-नियमो की रक्षा का सवाल है ॥१४॥

तिम धर्म न छोड़े शुभमति,
अनुकम्पा घणी घट मांय रे जीवा।
तिण ने कहे कोई मूढ़मति,
वो अनुकम्पा लायो नांय रे जीवा ॥मो. 15॥

धर्म शील न छोड़े तेहने,
नामे करे एवी थाप रे जीवा।
अनुकम्पा में पाप छै,
तेथी मनुष्य बचाया नांय रे जीवा ॥मो 16॥

एवी मूढ़ करे परूपणा,
ज्ञानी री यह नहीं वाय रे जीवा।
धर्म शील सम जाणजो,
जीवरक्षा धर्म रे मांय रे जीवा ॥मो. 17।

भावार्थ :—जिस प्रकार सती के हृदय में दया बहुत है किन्तु वह अपने शील को खण्डित नही करती उसी प्रकार दृढ़धर्मी के हृदय मे दया बहुत है किन्तु वह अपने धर्म से विचलित नही होता। सती अपने शील को खण्डित नही करती और दृढ़धर्मी पुरुष अपने धर्म मे विचलित नही होता, अतः इन दोनों का दृष्टान्त देकर अनुकम्पा में

पाप की स्थापना करने वाला मूर्ख कहलाता है । बुद्धिमान् पुरुष ऐसी कल्पना नही कर सकता । जिस प्रकार सती को अपना शील प्यारा उसी प्रकार दृढधर्मी को अपना धर्म प्यार है । दोनो के हृदय मे अनुकम्पा वहुत है । अनुकम्पा धर्म में है ॥१५–१७॥

कोई देव कहे श्रावक भगी,
तू दे जिनधर्म छोड़ रे जीवा ।
नही तो साधवी गुरुणी थाहरी,
जारा शील ने नांखसूं तोड़ रे जीवा ॥मो. 18॥

धर्म न छोड़े तेहथी,
कोई मूरख उठावे भरम रे जीवा ।
शील बचाया मे पाप है,
तिण रे हेते न छोड्यो धर्म रे जवा ॥मो. 19॥

भावार्थ :—एक दूसरा दृष्टान्त और समझिये कि यदि कोई देव किसी दृढधर्मी श्रावक से कहे कि तू जिनधर्म को छोड दे । यदि तू जिनधर्म को न छोडेगा तो मैं तेरी गुरुणी साध्वी के शील को खण्डित कर दूगा । देव की बात को सुनकर वह दृढधर्मी श्रावक जिनधर्म को न छोडे तब यदि कोई ऐसी कल्पना करे कि शील की रक्षा करना पाप है तो ऐसी कल्पना करने वाला मूर्ख कहलायगा ॥१८-१९॥

देव कहे धर्म न छोड़सा,
झूठ चोरी रो करसूं पाप रे जीवा ।
तब धर्म न छोड़े तेहथी,
कोई मूढ़ करे एहवी थाप रे जवा ॥मो. 20॥

धर्म त्याग चोरी न छुड़ावतां,
चोरी झूठ छुड़ावा में पाप रे जीवा ।
या मूरख री परूपणा,
इम ज्ञानी जाणे साफ रे जीवा ॥मो. 21॥

भावार्थ:—एक दृष्टान्त और समझिये कि यदि कोई देव किसी दृढ़धर्मी श्रावक से कहे कि तू अपने जिनधर्म को छोड दे। यदि तू धर्म न छोडेगा तो मैं झूठ और चोरी का पाप सेवन करूंगा। देव की उपरोक्त बात सुनकर वह श्रावक अपना धर्म न छोडे तब यदि कोई यह कल्पना करे कि झूठ और चोरी को छुडाने में पाप है तो वह मूर्ख कहलायगा ॥२०-२१॥

इम अठारा ही पाप रो,
न्याय शुद्ध हृदय मे धार रे जीवा।
धर्म त्यागे न पाप छुड़ायवा
यो सूत्र तणो निरधार रे जीवा ॥मो. 22॥

भावार्थ.—जिस प्रकार झूठ और चोरी का दृष्टान्त दिया गया है उसो तरह अठारह ही पापो के विषय मे समझ लेना चाहिए। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति किसी दृढ़धर्मी श्रावक से यह कहे कि तू अपने जिनधर्म को छोड़ दे। यदि तू धर्म नही छोड़ेगा तो मैं परिग्रह की मर्यादा न रक्खूंगा और क्रोध, मान, माया. लोभ आदि अठारह ही पापो का सेवन करूंगा। उपरोक्त बात सुनकर वह श्रावक अपना धर्म न छोडे तब यदि कोई यह कल्पना करे कि "परिग्रह की मर्यादा रखना पाप है तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि पापो को छुड़ाने मे पाप है।" तो वह मूर्ख कहलायगा।

शास्त्रो से यह बात स्पष्ट ज्ञात होती है कि पाप छुडाने के लिए अपने धर्म का त्याग नही किया जाता ॥२२॥

(कहे) पाप छोड़ावणो धर्म में,
पिण धर्म तो छोड़े नांय रे जीवा।
धर्म न छोड़े तेहथी,
पाप मेटण पाप न थाय रे जीवा। मो. 23।

भावार्थ:—तब विवश होकर उन लोगो को यह कहना पड़ता है कि झूठ, चोरी आदि पापो को छुडाना तो धर्म का कार्य है किन्तु

इसके लिए अपना धर्म नही छोडा जा सकता । अपना धर्म नही छोडा जाता इससे झूठ, चोरी आदि को छुडाना पाप है ऐसी स्थापना नहीं की जा सकती ।।२३।।

(तो) जीवरक्षा रो द्वेष छोड़ ने,
समभाव लावो मन मांय रे जीवा ।
धर्म छोड़ अनुकम्पा ना करे,
अनुकम्पा सावज नांय रे जीवा ।।मो. 24।।

भावार्थ:—तब सब जीवो के हितैषी ज्ञानी पुरुष उन भोले भाइयो से कहते हैं कि आप लोगों के हृदय मे जीवरक्षा-अनुकम्पा के प्रति जो द्वेष कुगुरुओ ने भर दिया है, उसे निकालकर अपने हृदय मे समभाव स्थापित करो और शान्त चित्त होकर विवेकपूर्वक इस बात को समझो कि धर्म छोड़कर यदि अनुकम्पा नही की जाती तो इससे अनुकम्पा सावद्य या मोहरूप नही हो सकती, अनुकम्पा करना पाप है ऐसी स्थापना नही की जा सकती ।।२४।।

धर्म छोड़ मनुष्य नहीं राखिया,
तेथी मनुष्य बचायां पाप रे जीवा ।
या खोटी सरधा थाहरी,
इण न्याय थी जाणो साफ रे जीवा ।।मो. 25।।

भावार्थ.—इसी तरह अरणक श्रावक ने अपने धर्म को छोड़ कर जहाज मे स्थित मनुष्यो की रक्षा नही की । इससे मनुष्यो की रक्षा करना पाप है, यह तुम्हारी श्रद्धा मिथ्या है ।।२५।।

नाम लेवे अरणक तणो,
अनुकम्पा उठावण काज रे जीवा ।
ते मूढ़ अज्ञानी जीवड़ा,
छोड़ी धर्म ने भेष री लाज रे जीवा ।।
मोह अनुकम्पा न जाणिये ।।26।।

भावार्थः—अनुकम्पा के सावद्य पापकारी स्थापित करने के लिए जो लोग अरणक श्रावक का दृष्टान्त देते है वे मूढ अज्ञानी हैं। साधु का भेष पहनकर वे साधुभेष को लजाते हैं और साथ मे धर्म को भी लजाते हैं। भगवान् उन्हे सद्बुद्धि दे, यही अभ्यर्थना है ॥२६॥

३—अधिकार माता को बचाने से चुलणीपिया के व्रतादि का भङ्ग नहीं हुआ

संक्षिप्त कथाः—

वाराणसी (बनारस) नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। वहां चुलणीपिया नगरी (चुलनीपिता) नाम का एक गाथापति रहता था। वह सब तरह से सम्पन्न और अपरिभूत था। उसकी माता का नाम भद्रा था और पत्नी का नाम श्यामा था। चुलनीपिता के पास बहुत ऋद्धि थी। आठ करोड सोनैय खजाने मे रक्खे हुए थे आठ करोड़ व्यापार मे और आठ करोड़ प्रविस्तार (घर बिखेरा) मे लगे हुए थे। गायो के आठ गोकुल थे अर्थात् अस्सो हजार गायें थी। वह नगर मे प्रतिष्ठित और मान्य था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहा पधारे। वह भगवान् को वन्दना-नमस्कार करने गया। भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर उसने श्रावक के बारह व्रत अङ्गीकार किये। एक समय पौषधोपवास कर वह पौषधशाला में बैठा हुआ धर्मध्यान कर रहा था। अर्द्धरात्रि के समय उसके सामने एक देव प्रकट हुआ और कहने लगा कि यदि तू अपने व्रत-नियमादि को नही भांगेगा तो मैं तेरे बड़े लड़के को यहा लाकर तेरे सामने उसकी घात करूंगा फिर उसके तीन टुकड़े करके उबलते हुए गर्म तेल की कड़ाही मे डालूंगा, उसके शूले बनाऊंगा

और वह खून और शूले तेरे शरीर पर छिडकूंगा जिससे तू आर्तरौद्र ध्यान करता हुआ अकाल मे ही मृत्यु को प्राप्त होगा। देव ने इस प्रकार दो-तीन बार कहा किन्तु चुलनीपिता जरा भी भयभ्रान्त न हुआ और न अपने व्रत-नियमादि से विचलित हुआ तब देव ने उसके बड़े लडके को मार कर तीन टकडे किये, कड़ाही मे उबाल कर उनके शूले किये और चुलनीपिता के शरीर पर खून छिडका तथापि वह व्रत-नियमादि से विचलित नही हुआ। तब देव ने उसके दूसरे और तीसरे पुत्र को भी मार कर ऐसा ही किया किन्तु चुलनीपिता अपने व्रत-नियमादि से विचलित नही हुआ। तब वह देव कहने लगा कि हे अनिष्ट के कामी, चुलनीपिता श्रावक ! यदि तू अपने व्रत-नियमादि को नही तोडता है तो अब मैं देवगुरु तुल्य पूजनीय तेरी माता को घर से लाता हूं और इसी तरह उसकी भी घात करके उसका खून तेरे शरीर पर छिडकूंगा।

देव के इन वचनों को सुनकर चुलनीपिता के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि यह पुरुष अनार्य प्रतीत होता है जो मेरी देवगुरुतुल्य पूजनीय माता को भी मार देना चाहता है। इसे पकड लूं और मारूं। ऐसा विचार कर क्रोध करके वह उसे पकडने के लिए दौडा किन्तु उसी समय देव तो आकाश मे भाग गया चुलनीपिता के हाथ एक खम्भा आ गया। उसे पकड़कर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा और कोलाहल करने लगा उस कोलाहल को सुनकर उसकी माता भद्रा वहां आई और कहने लगी कि हे पुत्र ! तुम ऐसे जोर-जोर से क्यो चिल्लाते हो ? तब चुलनीपिता ने सारा वृत्तान्त अपनी माता से कहा। तब कहने लगी कि हे पुत्र ! कोई भी पुरुष तुम्हारे किसी भी पुत्र को घर से नही लाया है और न तेरे सामने मारा ही है।

"एस ण कइ पुरिसे तव उवसग्गं करेइ। एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे, तं णं तुमं एयाणि भग्गवए भग्गणियमे भग्गपोसहे विहरसि"

टीका:—'भग्गवए' ति भग्नव्रतः स्थूलप्राणातिपातविरतेर्भावतो भग्नत्वात् तद्विनाशार्थं कोपेनोद्धावनात्। सापराधस्यापि व्रताविषयीकृ

त्वात् । भग्ननियम. कोपोदयेन उत्तरगुणस्य कोवाभिग्नहरूपस्य भग्नत्वात् । भग्नपौषध: अव्यापारपौषधरूपस्य भङ्गत्वात् ॥

अर्थात्—यह किसी ने तुम्हे उपसर्ग दिया है । तुमने जो देखा है वह मिथ्या दृश्य था । इस समय तुम्हारे व्रत-नियम और पौषध होहल्ला मचाने से और क्रोध करने से नष्ट हो गये हैं ।

टीका का अर्थः—चुलनीपिता श्रावक स्थूल प्राणातिपात विरमणव्रत भाव से नष्ट हो गया क्योकि वह क्रोध करके हिंसक को मारने के लिए दौड़ा था । पौषधव्रत मे अपराधी प्राणी को भी मारने का त्याग होता है । उत्तरगुण—क्रोध नही करने का जो अभिग्रह था वह क्रोध करने से नष्ट हो गया और अयतनापूर्वक दौडने से अव्यापाररूप पौषध का भङ्ग हुआ है ॥

इसलिए हे पुत्र ! अव तुम दण्ड प्रायश्चित्त लेकर अपनी आत्मा को शुद्ध करो ।

चुलनीपिता श्रावक ने अपनी माता की बात को विनयपूर्वक स्वीकार किया और यथाविधि दण्ड प्रायश्चित्त लिया । वहुत वर्षों तक श्रावकव्रतों का पालन कर अन्त मे समाधिमरण को प्राप्त कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ । वहाँ से चलकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और उसी भव में मोक्ष जायगा ।

❀ ढाल ❀
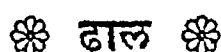
अरणक नी परे जाणज्यो,
        चुलणीपिया नी बात रे जीवा ।
पुत्र मार शूला कर छांटता,
        अनुकम्पा राखी साक्षात रे जीवा ॥
            मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥1॥

भावार्थः—जिस तरह अरणक श्रावक के अधिकार में कहा

गया है उसी तरह चुलनीपिता श्रावक के विषय में भी समझना चाहिए। पुत्रो को मारकर उनके शूले बनाकर अपने शरीर पर खून छिड़कने वाले देव पर भी उसने अनुकम्पा की थी ॥१॥

अपराधी ने नहीं मारणो,
कीधो पोसा मांही नेम रे जीवा ।
तेथी पुत्र रा मारणहार पे,
अनुकम्पा राखी धर प्रेम रे जींवा ॥मो. 2 ।

भावार्थ.—अपराधी को भी न मारने का उसने पौषध मे नियम किया था। इसलिए पुत्रो को मारने वाले पर भी उसने अनुकम्पा रक्खी थी ॥२॥

मूढ़मति उल्टीं कहे,
जां रे दया नहीं दिल मांय रे जींवा ।
करुणा न की अंगजात नीं,
एवीं खोटीं बोले वाय रे जींवा ॥मो. 3 ।

भावार्थ —जिनके हृदय में दया नहीं है ऐसे मूढ़ अज्ञानी कहते हैं कि "चुलनीपिता श्रावक ने अपने पुत्रों की भी अनुकम्पा नहीं की। यदि अनुकम्पा करने में धर्म होता तो वह पुत्रों की अवश्य अनुकम्पा करता। उसने अपने पुत्रो की भी अनुकम्पा नहीं की, इससे यह साफ जाहिर होता है कि अनुकम्पा करना धर्म का कार्य नही है।" इस प्रकार वे मिथ्या भाषण करते हैं ॥३॥

जो देव इण विध बोलतो,
थारा पुत्र बचाया में धर्म रे जीवा ।
तू सरधे तो छोड़ूं जीवता,
नहीं तो घात करूं तज शर्म रे जीवा ॥मो. 4॥

तदा श्रावक धर्म न श्रद्धतो,
देव करतो पुत्र री घात रे जीवा ।

तो करुणा न की अंगज तणों,
या सांचीं होतीं तुम वात रे जीवा ।।मो. 5।।

भावार्थः—इस प्रकार मिथ्या भाषण करने वाले उन लोगो को बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं कि "यदि देव इस प्रकार कहता कि यदि तू अपने पुत्रो को बचाने मे धर्म मानता है तो मैं इन्हे जीवित छोड़ दू अन्यथा मैं इनकी घात करूंगा ।"

इस तरह 'पुत्रों को बचाने मे धर्मश्रद्धा न करने की' शर्त श्रावक के सामने वह देव रखता और तब चुलनीपिता श्रावक उसमे धर्मश्रद्धान न करता तब तो उन लोगो का कथन सत्य होता कि अनुकम्पा करना धर्म का कार्य नही और इसीलिए उसने पुत्रों की अनुकम्पा नही की ।।४-५।।

पिण देव तो बोल्यो इण परे,
थारे जीव दया रो व्रत रे जीवा ।
ते तोड़ हिंसा करसी नहीं,
थारा पुत्र मारूं इण शर्त रे जीवा ।।मो. 6।।

तेथी श्रावक व्रत तोड्या नहीं,
दयाधर्म हिरदा में ध्याय रे जीवा ।
तुम कहो करुणा आणी नही,
यो तो झूठो थारो न्याय रे जीवा ।।मो. 7।।

भावार्थ :—परन्तु देव ने तो उस श्रावक के सामने यह शर्त रखी कि "तेरे जीवदया का व्रत है अर्थात् स्थूलप्राणातिपातविरमण—हलते-चलते निरपराधी त्रस जीवो की हिंसा न करने का व्रत है और आज पौषध में तो सापराधी और निरपराधी दोनो प्रकार के प्राणियों को न मारने का व्रत है । इस अहिंसाव्रत को तोड़कर यदि तू हिंसा न करेगा तो मैं तेरे पुत्रो की घात करूगा ।" देव की इस शर्त को सुनकर श्रावक ने अपने अहिंसाव्रत को तोडा नही प्रत्युत हृदय में दयाधर्म का ध्यान करता हुआ अपने अहिंसाव्रत पर दृढ रहा ।

वे लोग कहते हैं कि 'श्रावक ने वरुणा नही की' यह उनका कथन मिथ्या है ।।६-७।।

देव कहे हिंसा करसी नही,
थारे देव गुरु सम माय रे जीवा ।
तिण ने मार शूला कर छांटसूं,
दयाधर्म न मुझ सुहाय रे जीवा ।।मो. 8।।

भावार्थः श्रावक के सामने उनके तीनो पुत्रो की घात करने पर भी जब वह अपने व्रत-नियम से विचलित नही हुआ तब देव कहने लगा कि मुझे दयाधर्म अच्छा नही लगता इसलिए मै तुझे दयाव्रत—अहिंसाव्रत से विचलित करूंगा । यदि तू अपने अहिंसाव्रत को तोडकर हिंसा न करेगा तो मैं तेरी माता जो कि तेरे लिए देवगुरु के समान पूजनीय है उसकी तेरे सामने घात करूंगा, उसके मांस के शूले बनाऊगा और उसका रुधिर तेरे शरीर पर छिड़कूंगा ।।८।।

इम सुण चुलणीपिया कोपियो,
यो तो पुरुष अनारज थाय रे जीवा ।
पकडूं, मारूं एहने,
इम चिन्ती लारे धाय रे जीवा ।।मो. 9।।

देव गयो आकाश मे,
इण रे थांबो आयो हाथ रे जीवा ।
कोलाहल कीधो घणो,
तव आई भद्रा मात रे जीवा ।।मो. 10।।

वच्छ ! विरूप देख्यो तुम्हे,
नहीं हुई पुत्रो री घात रे जीवा ।
पुरुष मारण तुम उठिया,
व्रत नेम भागा साक्षात रे जीवा ।।मो. 11।।

भावार्थ.—देव के उपरोक्त वचनों को सुनकर चुलनीपिता

कुपित हो गया। उसके मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि यह पुरुष अनार्य प्रतीत होता है इसे पकड लू और मारू। ऐसा विचार कर क्रोध करके वह उसे पकडने के लिए दौडा किन्तु उसी समय देव तो आकाश मे भाग गया। चुलनीपिता के हाथ मे एक खम्भा आ गया। उसे पकडकर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा और कोलाहल करने लगा। उस कोलाहल को सुनकर उसकी माता भद्रा वहा आई और कहने लगी कि पुत्र ! तुम इस प्रकार कोलाहल क्यो कर रहे तब चुलनीपिता ने सारा वृत्तान्त अपनी माता से कहा। तब वह कहने कि हे पुत्र ! तुम्हारे पुत्रों का किसी ने नही मारा है। किसी ने तुम्हे यह उपसर्ग दिया है। तुमने जो देखा है वह मिथ्या दृश्य था। तुम्हारे व्रतनियम और पौषध भग्न हो गये हैं अर्थात् उस पुरुष को मारने के लिए तुम क्रोध करके दौडे थे। इसलिए भाव से स्थूलप्राणातिपातविरमण व्रत का भङ्ग हुआ है। पौषधव्रत मे स्थित श्रावक का सापराधी और निरपराधी दोनो तरह के प्राणियो की हिंसा का त्याग होता है। क्रोध के आने से कषायत्यागरूप उत्तरगुण (नियम) का हुआ है और अयतनापूर्वक दौडने से पौषध का भङ्ग हुआ है। इसलिए हे पुत्र ! अब तुम दण्ड प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करो।

माता के कथनानुसार चुलनीपिता श्रावक ने दण्ड प्रायश्चित्त लेकर अपनी शुद्धि की ॥६-११।

इहां झूठा बोला इम कहे,
जा रे नहीं अनुकम्पा सू प्रेम रे जीवा।
अनुकम्पा करी जननी तणो,
ते सूं भागा व्रत नेम रे जीवा ॥मो. 12॥

धेटा हो इण पर कहे,
मिथ्यात रो चढियो पूर रे जीवा।
ज्ञानी कहे हिवे सांभलो,
होकर सतवादी शूर रे जीवा ॥मो. 13॥

भावार्थ:—जिनको अनुकम्पा से प्रेम नहीं है ऐसे अनुकम्पा-

द्वेषी और मानो जिनके हृदय मे मिथ्यात्व का पूर चढा हुआ है ऐसे मिथ्यात्वी, मिथ्या भाषण करने वाले धृष्ट-निर्लज्ज बनकर इस प्रकार कहते हैं कि "चुलनीपिता श्रावक ने माता की अनुकम्पा की थी इसलिए अनुकम्पा करने से उसके व्रत-नियम और पौषध भग हो गये थे।' इनका यह कथन शास्त्रविरुद्ध है। ज्ञानी पुरुष इसका न्यायपूर्वक कारण बताते है जिसका ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।१२-१३।।

त्याग कियां हिंसा तणा

तेथी श्रावक रे व्रत होय रे जीवा ।

ते व्रत भागे हिंसा किया,

यो न्याय विचारी जोय रे जीवा ।।मो. 14।।

अनुकम्पा हिंसा नहीं,

तेने त्याग्यां व्रत नहीं थाय रे जीवा ।

जो अनुकम्पा त्याग दे,

निरदयी कह्यो जिनराय रे जीवा ।।मो. 15।।

भावार्थ —हिंसा पाप है उसका त्याग करने से श्रावक के व्रत होता है। इस प्रकार अहिंसाव्रत को स्वीकार करके यदि श्रावक हिंसा करे तो उसका अहिंसाव्रत भङ्ग हो जाता है किन्तु अनुकम्पा हिंसा नहीं है और अनुकम्पा का त्याग करने से कोई व्रत नही होता है प्रत्युत अनुकम्पा का त्याग करने वाले को तीर्थंकर भगवान् ने निर्दयी कहा है। १४-१५।।

अनुकम्पा थी व्रत नीपजे,

तेथी व्रत री किम हुवे घात रे जीवा ।

अमृत थी मरणो कहे,

या तो मूढ़मत्यां री बात रे जीवा ।।मो. 16।।

मारे ते विष जाणज्यो,

अमृत थी रक्षा थाय रे जीवा ।

अनुकम्पा थी व्रत भागे नहीं,
हिंसा हुआं व्रत जाय रे जीवा ॥मो. 17॥

अनुकम्पा थी व्रत भागा कहे,
ते डूबा कालीधार रे जीवा ।
वली भोलां ने भरमाय ने,
पकड़ डुबोया लार रे जीवा ॥मो. 18॥

भावार्थ:—अनुकम्पा से तो व्रत निपजता है तो फिर अनुकम्पा से व्रत भङ्ग कैसे हो सकता है ? अनुकम्पा अमृत के समान है और हिंसा विष के समान है । जिस प्रकार से अमृत से प्राणों की रक्षा होती है और विष से प्राणों का विनाश (मरण) होता है उसी प्रकार अनुकम्पा रूपी अमृत से व्रत की रक्षा होती है और हिंसा रूपी विष से व्रत का भङ्ग होता है । जो लोग अनुकम्पा से व्रत का भङ्ग होना कहते हैं उन्हे उन मूर्खों की श्रेणी में समझना चाहिए जो अमृत से मरण होना कहते हों ।

जो लोग अनुकम्पा से व्रत का भङ्ग होना कहते हैं वे अज्ञानी जीव स्वयं कालीधार डूब गये और भोले जीवों को भ्रम में डाल कर उन्होंने उनको भी साथ में डुबाया है । ऐसे अज्ञानी जीवों की नरक-निगोदादि के सिवाय दूसरी गति नही हो सकती ॥१६-१८॥

भग्गवए भग्गनियम रो,
वलि भग्ग पोषध रो अर्थ रे जीवा ।
टीका में कियो इण भांत थी,
थें खेंच करो क्यो व्यर्थ रे जीवा ॥मो. 19॥

कोप करी ने दौड़ियो,
पुरुष मारण रे परिणाम रे जीवा ।
भग व्रत भागो तेहथी,
करुणा न रही तिण ठाम रे जीवा ॥मो. 20॥

अपराधी पिण नहीं मारणो,
        या पोषध री मर्याद रे जीवा ।
भाव हुआ मारण तणा,
        व्रत भागो तजो हठवाद रे जीवा ॥मो, 21॥

क्रोध करण रा त्याग था,
        पुरुष पर आयो कोप रे जीवा ।
नियम उत्तरगुण भागियो,
        जिन आणा दीवि लोप रे जीवा ॥मो. 22॥

न कल्पे पोषधे दौड़णो,
        ते तो दौडचा पुरुष रे संग रे जीवा ।
दौडयां अजतना हुई,
        पोपध रो हुओ भङ्ग रे जीवा । मो. 23॥

भावार्थ—चुलनीपिता श्रावक के अध्ययन मे 'भग्गवए भग्गणियमे भग्गपोसहे' ये तीन शब्द आये हैं । इनका टीका मे अर्थ इस प्रकार किया है —

'भग्गवए' ति भग्नव्रतः स्थूलप्राणातिपात विरतेर्भावतो भग्नत्वात् तद्विनाशार्थं कोपेनोद्धावनात् । सापराधस्यापि व्रताविषयीकृतत्वात् । भग्ननियम, कोपदयेन उत्तरगुणस्य क्रोधाभिग्रहरूपस्या भग्नत्वात् । भग्नपौषध, अव्यापार पौषधरूपस्य भंगत्वात् ।

अर्थात्—चुलनीपिता श्रावक का स्थूलप्राणातिपातविरमण व्रत द्रव्य से नहीं किन्तु भाव से नष्ट हो गया क्योकि वह क्रोध करके उस पुरुष को मारने के लिए दौडा था । पौषधव्रत में अपराधी प्राणी को भी न मारने का नियम होता है । क्रोध नही करने का जो नियय था वह नियम उस पुरुष पर क्रोध करने से नष्ट हो गया । पौषध मे अयतनापूर्वक दौड़ना नही कल्पता है किन्तु चुलनीपिता श्रावक क्रोध करके उस पुरुष के पीछे दौडा था इसलिए पौषध का भग हुआ ॥१९-२३॥

यो सत्य अर्थ सूतर तणो,
टीका थी लीजो जोय रे जीवा ।
खोटा अर्थ कुगुरां तणा,
मत मानजो स्याणा होय रे जीवा ।।मो. 24।।

भावार्थ:—शास्त्र के उपरोक्त पाठ का जो टीकानुसार अर्थ किया गया है वही सत्य है । अतः बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि वे इस सत्य अर्थ को ही स्वीकार करे और कुगुरुओं द्वारा किये गये खोटे अर्थ को छोड़ दें ।।२४।।

उपासकदशाङ्ग सूत्र के तीसरे अध्ययन में चुलनीपिता श्रावक का वर्णन किया गया है । इसके आगे चौथे अध्ययन में सुरादेव श्रावक का वर्णन किया गया है । उसमे यह विषय और भी स्पष्ट हो जाता है इसलिए अब सुरादेव श्रावक का वर्णन किया जाता है ।

'अनुकम्पा आणी जननी तणी,
ते सूं भागा व्रत ने नेम रे जीवा ।'
एवो खोटी थाप कोई करे,
तेने उत्तर दीजे एम रे जीवा ।।मो. 25 ।

भावार्थ—"माता को अनुकम्पा करने से चुलनीपिता श्रावक के व्रत-नियम भङ्ग हो गये थे" इस प्रकार जो खोटी स्थापना करते हैं उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए :—

सुरादेव श्रावक तणो,
चुलणीपिया सम वात रे जीवा ।
देव कष्ट दियो पुत्रां तणो,
तिण में विशेष छै इण भांत रे जीवा ।।मो. 26।।

जो तू दयाधर्म छोड़े नहीं,
तो थारी देह रे मांय रे जीवा ।

सोले रोग में घाल सूं,
तू मरने दुर्गति जाय रे जीवा ।।मो. 27।।

इम सुण कोप थी दौड़ियो,
चुलणीपिया सम जाण रे जीवा ।
व्रत नियम भागा कह्या,
ते समझ ने तज दो ताण रे जीवा ।।मो. 28।।

भावार्थ: चलनीपिता और सुरादेव श्रावक की कथा एक समान है, सिर्फ थोड़ी सी विशेषता है, वह इस प्रकार है:—

सुरादेव श्रावक पौषध में बैठा था किसी देव ने चुलनीपिता श्रावक के समान उसको भी उपसर्ग दिया और उसके तीनों लडकों को उसके सामने मारा । इतने पर भी जब सुरादेव श्रावक अपने व्रत से विचलित नही हुआ तव देव ने उससे कहा कि यदि तू अपने व्रत नियमादि को भङ्ग नही करेगा तो मैं तेरे शरीर मे एक ही साथ श्वास, खासी ज्वर दाह, कुक्षिशूल, भगन्दर, अर्श, अजीर्ण दृष्टिरोग, मस्तकशूल, अरुचि अक्षिवेदना, कर्णवेदना खुजली, उदररोग और कोढ ये सोलह रोग डाल दूंगा, जिससे मरकर तू दुर्गति मे जायगा ।

उपरोक्त वचनों को सुनकर सुरादेव श्रावक क्रोध करके उस पुरुष को मारने के लिए दौड़ा किन्तु देव तो आकाश में भाग गया और उसके हाथ में एक खम्भा आ गया जिसे पकड़कर वह कोलाहल करने लगा । तब उसकी स्त्री धन्या आई और सारा वृत्तान्त सुनकर सुनकर सुरादेव से कहने लगी कि हे स्वामिन् ! आपके तीनों लड़के आनन्द हैं किसी ने उनकी घात नहीं की है । किसी देव ने आपको यह उपसर्ग दिया है । आपके व्रत-नियम और पौषध भङ्ग हो गये हैं । अतः आप दण्ड प्रायश्चित्त लेकर अपनी आत्मा को शुद्ध करो । तब सुरादेव श्रावक ने दण्ड प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि की ।।२६-२८।।

पोषा सामायिक में तुमें,
एवो करो छो थाप रे जीवा ।

*देह रक्षा कियां भागे नहीं,
आगार कहो तुम साफ रे जीवा ।।मो. 29 ।

तुम कथने सुरादेव रे,
देहरक्षा थी भागा न व्रत रे जीवा ।
हीवे अनुकम्पा किण रीं करीं,
तिण थी भागा इणरा व्रत रे जीवा ।।मो. 30।।

---

* जैसा कि वे 'श्रावक-धर्म-विचार' मे श्रावक के सामायिक व्रत की ढाल मे कहते है :—

शरीर कपडादिक तेहना,
जतन करे सामायिक मायजी ।
लाय चोरादिक रा भय थकी,
एकान्त स्थानक जवणा से जायजी ।।२४।।

आपरो तो आगार राखियो,
औरां रो नही छै आगारजी ।
औरा ने त्याग्या सामाई मुझे,
त्याने किणविध ले जावे बाहरजी ।।
सिखाजा व्रत आराधिये ।।२७।।

लाय चोरादिक रा भय थकी,
राख्या ते द्रव्य ले जायजी ।
पाखती कपड़ादिक हुवे घणा,
त्याने तो बाहर न ले जावे तायजी ।।२८।।

राख्या ते द्रव्य ले जावता,
समाई रो भग न थायजी ।
त्याग्या छै त्याने ले जावता,
समाई रो व्रत भाग जायजी ।।२६ ।

ग्यारहवें व्रत की ढाल में भी लिखा है :—

पोषा ने सामायिक व्रत ना, सरखा छै पच्खाणजी ।
सामयिक तो मुहूर्त एक नी, पोषो दिवसरात रो जाणजी । ७।
पोषा ने सामायिक व्रत मे, या दोयां में सरखो छै आगारजी । ८ ।

भावार्थः—अब भीषण मतानुयायियो से पूछना चाहिए कि 'तुम लोग चुलनीपिता के व्रत-नियम और पौषध भग होने का कारण उसकी माता की अनुकम्पा बतलाते हो किन्तु अब यह बतलाओ कि सुरादेव के व्रत-नियम और पौषध भङ्ग क्यो हुए थे ? इसने तो किसी की भी अनुकम्पा नही की थी फिर इसके व्रत-नियमादि भङ्ग होने का क्या कारण है ? यदि तुम कहो कि सुरादेव ने अपनी अनुकम्पा की थी इसलिए उसके व्रतनियमादि भङ्ग हुए तो यह तुम्हारा कथन तुम्हारे मत से विरुद्ध होता है क्योकि तुम्हारे मत के प्रवर्तक भीषणजी ने अपनी अनुकम्पा करने से व्रत-नियमादि का भङ्ग होना नही माना है, उन्होने अपनी ढालों में साफ लिखा है कि सामायिक और पौषध मे अपनी अनुकम्पा (आत्मरक्षा) करने का आगार होता है। फिर सुरादेव श्रावक के व्रत-नियम और पौषध भग होने का क्या कारण है ? यदि कहो कि सुरादेव के व्रत-नियम और पौषध अपनी अनुकम्पा के कारण भग नही हुए थे किन्तु अपराधी को मारने के लिए क्रोधित होकर दौडने मे भग हुए थे तो यही बात चुलनीपिता श्रावक के विषय मे भी तुमको माननी चाहिए।

इण कथने थें जाण लो,
चुलनीपिया नी बात रे जीवा।
जननी अनुकम्पा थकी,
नहीं हुई व्रत री घात रे जीवा ।।मो. 31।।

हिंसा करण ने दौड़ियो,
वली क्रोध आयो तिण वार रे जीवा।
अजतना व्यापार थीं,
व्रत नेम पोषध टूटीं कार रे जीवा ।।मो. 32।।

भावार्थ :—सुरादव के समान ही चुलनीपिता श्रावक भी अपरावी को मारने के लिए क्रोधित होकर दौडा था। इसलिए हिंसा को करने के भाव आने से, क्रोध आने से और अयतनापूर्वक दौडने से क्रमश: उसके व्रत, नियम और पौषध भग हुए थे किन्तु माता की अनुकम्पा आने से नहीं।

यदि माता के ऊपर अनुकम्पा करने से चुलनीपिता का व्रत भग होना मानते हो तो फिर सुरादेव का अपने पर अनुकम्पा करने से व्रतभग मानना पड़ेगा और जैसे चुलनीपिता की मातृअनुकम्पा को सावद्य कहते हो उसी तरह सुरादेव की अपनी अनुकम्पा को भी सावद्य कहना होगा। ऐसी दशा मे भीषणजी ने अपनी ढालो मे सामायिक और पौषध मे अपने पर अनुकम्पा करके अग्नि, सर्पादि के भय से वचने के लिए जयणा के साथ निकल जाने की जो आज्ञा दी है वह बिलकुल मिथ्या ठहरेगी अत· भीषणजी-मतानुयायी अपनी अनुकम्पा को सावद्य नही कह सकते। इसलिए जैसे सुरादेव की अपनी अनुकम्पा सावद्य नही थी और उससे व्रत-नियम और पौषध भग नही हुए थे उसी तरह चुलनीपिता श्रावक की भी मातृ अनुकम्पा सावद्य नही थी और उससे उसके व्रत, नियम और पौषध भग नही हुए थे। इसलिए चुलनीपिता का उदाहरण देकर अनुकम्पा को सावद्य बतलाना अज्ञानियो का कार्य है।

व्रत भागे हिंसा थकी
 यो निश्चय लीजो जाण रे जीवा।
अनुकम्पा थी रक्षा हुवे,
 (तेथी) व्रत भ गो कहे अणजाण रे जीवा ।।
 मोह अनुकम्पा न जाणिये ।।३३।।

भावार्थः—उपरोक्त सारे कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंसा से व्रत भग होता है और अनुकम्पा से व्रत की रक्षा होती है। अतः अनुकम्पा से व्रतभंग कहना अज्ञानियों का कार्य है ।।३३।।

४–अधिकार 'नमिराज ऋषि ने अनुकम्पा नहीं की' ऐसा कहने वालों का उत्तर

—:❀❀:—

संक्षिप्त कथा:—

मिथिला नगरी मे महाराजा नमिराज राज्य करते थे। एक समय उनके शरीर मे दाह-ज्वर की वेदना उत्पन्न हुई। उनके शरीर पर चन्दन का लेप करने के लिए उनकी महारानियाँ चन्दन घिसने लगी। हाथ मे पहनी हुई चूडियों की परस्पर रगड़ से उत्पन्न होने वाला शब्द महाराजा की वेदना मे और वृद्धि करने लगा। वह शब्द उनसे सहन नही हो सका इसलिए प्रधान मन्त्री को बुलाकर उन्होने कहा—यह शब्द मेरे से सहन नही होता, इसे बन्द कराओ। तब चन्दन घिसने वाली रानियो ने सौभाग्यचिन्ह स्वरूप हाथ में सिर्फ एक-एक चूडी रखकर बाकी सब उतार दी। चूडियो को उतार देने से तत्काल शोर बन्द हो गया। थोडी देर बाद नमिराज ने पूछा—क्या कार्य पूरा हो गया ? मन्त्री ने जवाब दिया—नही महाराज ! कार्य अभी हो रहा है। नमिराज ने पूछा—तब शोर बन्द कैसे हो गया ! मत्री ने ऊपर की हकीकत कह सुनाई। इस बात को सुनते ही नमिराज के हृदय में यह भाव उठा कि जहां पर बहुत होते हैं वही शोर होता है, जहा पर एक होता है वहां पर शान्ति रहती है। इस गूढचिन्तन के परिणामस्वरूप नमिराज को जातिस्मृति ज्ञान पैदा हो गया। शान्तिप्राप्ति के लिए समस्त बाह्य बन्धनो का त्याग कर एकाकी विचरने की उन्हे तीव्र इच्छा जागृत हुई। वे राजपाट एव भोगविलासो को छोडकर मुनि बनकर एकाकी विचरने लगे। उस अपूर्व त्यागी के त्याग, निरासक्ति और निर्ममत्व भाव की परीक्षा करने के लिए इन्द्र ब्राह्मण का रूप बनाकर नमिराज के पास आया। उनके सामने ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि मानो मिथिला नगरी जल रही है। फिर ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र ने नमिराज से कहा कि देखो तुम्हारे सामने यह अग्नि तुम्हारी मिथिला को जलाकर अन्त:पुर सहित तुम्हारे

राजमहलो को जला रही है। तुम इधर क्यों नही लक्ष्य देते ? क्या तुम्हे अपनी वस्तु प्रिय नही है ? तव नमिराज ने उत्तर दिया कि हे विप्र ! मिथिला नगरी मे मेरा कुछ नही है कारण कि मैं अकेला हू ज्ञानदर्शन मेरा स्वरूप है इसके अतिरिक्त मेरा कुछ भी नही है। यदि मेरे हृदय मे प्रिय और अप्रियपने का भाव होता तो मैं पुत्र-कलत्रादि का त्याग कदापि नही कर सकता। स्त्री-पुत्रादि का एव समस्त सांसारिक वन्धनो का त्याग कर देने से अन्तःपुर और राजभवन आदि से अव मेरा कोई सम्वन्ध नही रहा है इसलिए इनके जलये रहने पर भी मेरा कुछ नही जलता है। ज्ञानदर्शन ही मेरा अर्थात् आत्मा का स्वरूप है। इसलिए जो मेरा है वह जल नही सकता और जो जलता है वह मेरा नही।

नमिराज के उपरोक्त उत्तर को सुनकर इन्द्र को यह दृढ विश्वास हो गया कि इनके हृदय में सांसारिक पदार्थों के प्रति लेशमात्र भी मोह और ममत्वभाव नहीं है। इसी प्रकार इन्द्र ने और भी कई प्रश्न किये जिनका उत्तर नमिराजर्षि ने वहुत ही मार्मिक और भावपूर्ण दिया है। इनके प्रश्नोत्तरो का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के नवे अध्ययन मे वड़े ही रोचक शब्दों में है–दिया गया है।

जव इन्द्र अनेक उपायों से नमिराजर्षि को अपने धर्म से नही डिगा सका तव देवेन्द्र ने अपना कृत्रिम व्राह्मण का रूप त्याग दिया और अपना असली रूप धारण किया। तत्पश्चात् वह नमिराजर्षि की भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगा। उनके निर्ममत्व भाव की एव अन्य गुणो की प्रशसा करके और भक्तिपूर्वक उनके चरणों मे वन्दना करके वड़े हर्ष के साथ इन्द्र स्वर्गलोक को चला गया।

❀ ढाल ❀

नमिराज ऋषि संयम लीनो,
प्रत्येक वोधी अणगार रे जीवा।
निज हित करण ने उठिया,
पर री नहि करे सारसंभार रे जीवा॥
मोह अनुकम्पा म जाणिये॥1॥

दीक्षा न देवे केहने,
न देवे श्रावक व्रत रे जीवा ।
उपदेश पिण देवे नहीं,
पूछयां उत्तर देवे सत्य रे जीवा ।।मो. 2।।

अनुकम्पा करे आपणी,
पर री कल्पे नस नाय रे जीवा ।
इन्द्र आयो तिण ने परखवा,
त्यां माया विविध बणाय रे जीवा ।।मो. 3।।

भावार्थः—मिथिला नगरी के राजा नमिराज सयम अंगीकार कर मुनि वन गये । वे प्रत्येक बुद्ध साधुओं का आचार स्थविरकल्पी साधुओ से कितने ही अशों मे भिन्न होता है । प्रत्येक बुद्ध मुनि अपना ही हित करते है वे दूसरों का हित नही करते मरते प्राणी की प्राण-रक्षा भी वे नही करते, किसी को दीक्षा भी नही देते शिष्य नही बनाते, श्रावकव्रत ग्रहण नही करवाते, उपदेश नही देते आहार-पानी लाकर किसी साधु की वैयावच्च भी नही करते, वे संघ के अन्दर न रहकर अकेले ही रहते है किन्तु किसी के प्रश्न पूछने पर वे सत्य उत्तर देते हैं । वे अपनी ही अनुकम्पा करते हैं दूसरो की अनुकम्पा नही करते । इस प्रकार प्रत्येक बुद्ध मुनियो का कल्प है । नमिराजर्षि भी प्रत्येकवुद्ध मुनि थे । उनकी निर्मोहता और निर्ममत्वभाव की परीक्षा करने के लिए स्वयं इन्द्र आया । अनेक प्रकार की माया वनाकर वह नमिराज से कहने लगा :—

महल अन्तेवर थाहरा,
अगनि में बले परतख रे जीवा ।
तुम स्वामी छो एहना,
ज्ञानादिक नी परे रख रे जीवा ।।मो. 4।।

भावार्थ —हे नमिराज ! देखो यह अग्नि तुम्हारे महलो को और अन्त.पुर को जला रही है । तुम इनके स्वामी हो । जिस प्रकार

तुम अपने ज्ञानदर्शनचारित्र की रक्षा कर रहे हो उसी प्रकार तुम्हें इनकी भी रक्षा करनी चाहिए ॥४॥

तब नमि ऋषिजी इम कहे,
ज्ञान दिक गुण छै मुझ रे जीवा ॥
एथी बीजी वस्तु नहीं माहरी,
निश्चय नय री बताई सूझ रे जीवा ॥मो. 5॥

मुझनो ते तो बले नहीं,
बले ते न माहरो होय रे जीवा ।
यह मिथिला बलतां थकां,
ज्ञानादिक नाश न होय रे जीवा ॥मो 6॥

भावार्थ—तब नमिराजर्षि ने उत्तर दिया कि निश्चयनय के अनुसार मेरा (आत्मा का) ज्ञानदर्शनचारित्रस्वरूप है । इसके अतिरिक्त मेरा कुछ भी नही है । जो मेरा (आत्मा का) है वह त्रिकाल मे भी जल नही सकता और जो जलता है वह मेरा (आत्मा का) नही हो सकता । इसलिए मेरे (आत्मा के) जो ज्ञानादिक गुण है वे मिथिला के जलने पर जल नही सकते हैं ॥५-६॥

केई अज्ञानी इम कहे,
अनुकम्पा री करवा घात रे जीवा ।
'नमिराज ऋषि प्राणी नहीं,
मोह अनुकम्पा रीं वात रे जीवा ॥मो. 7।

भावार्थ—अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक अज्ञानी जीव अनुकम्पा को उठाने के लिए इस प्रकार कहते हैं कि जलती हुई मिथिला पर नमिराजर्षि ने मोह-अनुकम्पा नहीं की । यदि अनुकम्पा करने में धर्म होता तो नमिराजर्षि मिथिला पर अवश्य अनुकम्पा करते और अन्तःपुर की रक्षा करते । नमिराजर्षि ने मिथिला पर अनुकम्पा नहीं की और अन्तःपुर की रक्षा नहीं की इससे साबित होता है कि अनुकम्पा

अनुकम्पा रा प्रश्न छै नहीं,
नहीं उत्तर में तेनी बात रे जीवा ।
थां झूठा गाल बजाविया,
थांरे मोह उदय मिथ्यात रे जीवा ।।मो. 8।।

अन्तेवेर रक्षा ना करी,
तेहथी अनुकम्पा में पाप रे जीवा ।
एवी करे कोई थापना,
तो उत्तर सुणजो साफ रे जीवा ।।मो. 9।।

भावार्थः—शक्रेन्द्र ने नमिराजर्षि से जो प्रश्न किया है वह अनुकम्पा-विषयक प्रश्न नही है इसलिए उत्तर मे भी अनुकम्पा का कोई जिक्र नही आया है । फिर भी अनुकम्पाद्वेषियों ने झूठमूठ ही यहा अनुकम्पा की वात घुसेड दी है । इस प्रकार मिथ्या भाषण करने वालो के मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का उदय है । नमिराजर्षि ने अन्त:पुर की रक्षा नही की इससे कोई यह स्थापना करे कि अनुकम्पा करने में पाप है तो इसका उत्तर इस प्रकार है:—

हिंसा, झूठ, चोरी तणा,
नमी न करावे त्याग रे जीवा ।
बस्तर पिण राखे नहीं,
संग में न रहे महाभाग रे जीवा ।।मो. 1०।।

निज हित में तत्पर रहे,
पर साधु रो न करे काज रे जीवा ।
प्रत्येकबोधी मुनि तिके,
पर रो न वंछे साज रे जीवा ।।मो. 11।।

यां प्रत्येकबोधी रो नाम ले,
कोई मूर्ख करे एहवो थाप रे जीवा ।
जो कार्य नमिऋषि ना करे,
तिण में मोह तणो छै पाप रे जीवा ।।मो. 12।।

इण लेखे दीक्षा देण में,
वलि विविध करावण नेम रे जीवा ।
ते मोह पाप में ठहरसी,
तेने ज्ञानी तो माने केम रे जी ।।मो. 13।।

दीक्षा त्याग व्यावच तणा,
यों कार्य में दोष न कोय रे जीवा
तिम पर-जीव रक्षा में जाणज्यो,
थीवरकल्पी करे सव कोय रे जीवा ।।मो. 14।।

भावार्थ :—नमिराजर्षि प्रत्येक बुद्ध मुनि थे । प्रत्येक बुद्ध साधु का और स्थविरकल्पी साधु का कल्प भिन्न-भिन्न होता है । प्रत्येक बुद्ध मुनि किसी को हिंसा, झूठ, चोरी का त्याग नही करवाते, वे किसी को दीक्षा नही देते, धर्मोपदेश नही देते, स्वय वस्त्र नही रखते, किसी साधु के संग मे न रहकर अकेले ही विचरते हैं आहार-पानी लाकर दूसरे साधुओ की वैयावच्च नही करते तथा दूसरे साधुओं की सहायता आप स्वय नही चाहते और उनसे अपना कोई काम नही करवाते । यह प्रत्येकवुद्ध मुनि का कल्प है । ऐसे प्रत्येकवुद्ध मुनि का उदाहरण देकर यदि कोई यह स्थापना करे कि जो कार्य प्रत्येकवुद्ध मुनि नही करे उन सव मे पाप है तो इस हिसाब से दीक्षा देना, हिंसा, झूठ, चोरी आदि का त्याग कराना, धर्मोपदेश देना आदि कार्यों मे भी उसे पाप मानना होगा । किन्तु ज्ञानी पुरुष इस बात को कैसे मान सकते है क्योंकि ये सव धर्म कार्य है । जिस प्रकार दीक्षा देना, हिंसा झूठादि का त्याग कराना, साधुओ की वैयावच्च करना ये सब धर्मकार्य हैं इनमे कोई दोष नही है उसी प्रकार जीवरक्षा करना भी धर्म का कार्य है । स्थविरकल्पी साधु इन सव कार्यो को करता है । इनमे किसी प्रकार का दोष नहीं है । इन कार्यो को करने मे स्थविर-कल्पी को धर्म होता है और उनका यह कल्प है किन्तु प्रत्येकबुद्ध का यह कल्प नहीं है । अतः प्रत्येकबुद्ध साधु का उदाहरण देकर स्थविर-कल्पी साधु को जीवरक्षा करने मे पाप कहना अज्ञान का परिणाम है ।.१०-१४।।

जिनकल्पी प्रत्येक बोधि नो,
जिण कामों रो कल्प न होय रे जीवा ।
त्यारे देखादेखी कोई ना करे,
निर्दयी समझो सोय रे जीवा ।।मो. 15।।

ठाणायङ्ग में भाषियो,
करुणा तणो अधिकार रे जीवा ।
छत्ती शक्ति व्यावच ना करे,
बाधे महामोहणी रो भार जीवा ।।मो. 16।।

थीवरकल्पी रा कल्प रो,
जिन एहवो भाख्यो मर्म रे जीवा ।
जिनकल्पी प्रत्येकबोधी ने,
प्रभु नाय बतायो यो धर्म रे जीवा ।।मो. 17।।

भावार्थ:— जिनकल्पी और प्रत्येकवुद्ध मुनि के लिए जिन कार्यों का कल्प नही है और इसलिए वे उन कार्यों को नही करते हैं। उनकी देखादेखी यदि कोई दूसरा मनुष्य उन कार्यों को न करे तो उसे निर्दयी समझना चाहिए क्योकि ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे जो अनुकम्पा की चौभङ्गी बतलाई गई है उसके प्रथम भङ्ग मे बतलाया गया है कि.—

'आयाणुकंपए णाममेगे णो पराणुकंपए'

अर्थात्—जो अपनी ही अनुकम्पा करते है परन्तु दूसरे की नही करते, ऐसे तीन पुरुष होते हैं—प्रत्येकवुद्ध, जिनकल्पी और परोपकारवुद्धि निर्दयी।

जिनकल्पी और प्रत्येकवुद्ध साधु दूसरे की अनुकम्पा नही करते किन्तु अपने ही हित मे प्रवृत्त रहते है इसलिए वे इस प्रथम भङ्ग के स्वामी कहे गये हैं। उनकी तरह जो दूसरे जीव की अनुकम्पा नही करता है वह पुरुष यदि जिनकल्पी और प्रत्येकवुद्ध नही है तो उसको प्रथम भङ्ग तीसरा स्वामी निर्दयी समझना चाहिए।

जिनकल्पी और प्रत्येकबुद्ध मुनि दूसरे साधुओं की किसी प्रकार की वैयावच्च नहीं करते, यह उनका कल्प है किन्तु स्थविरकल्पी साधु-शक्ति होते हुए यदि दूसरे साधुओ की वैयावच्च नहीं करे तो उसके महामोहनीय कर्म का बंध होता है ऐसा श्री तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया ॥१५-१७॥

प्रत्येकबोधि नमि तणो,
झूठो उठायो नाम रे जीवा।
अनुकम्पा उठायवा,
ए नहीं समदृष्टि रा काम रे जीवा॥
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥18॥

भावार्थः—ऊपर यह स्पष्ट बतला दिया गया है कि प्रत्येक-बुद्ध मुनि का कल्प और स्थविरकल्पी मुनि कल्प भिन्न-भिन्न है। अतः प्रत्येकबुद्ध साधु का उदाहरण देकर स्थविरकल्पी साधु को जीवरक्षा करने मे पाप कहना अज्ञानियो का काम है।

दूसरी बात यह है कि इन्द्र ने नमिराजर्षि से यह नहीं पूछा था कि मरते जीव की रक्षा करना धर्म है या पाप है? यदि इन्द्र ऐसा पूछता और उसके उत्तर में नमिराजर्षि जीवरक्षा करना पाप बत-लाते तो अवश्य जीवरक्षा करने मे पाप माना जाता परन्तु वहां तो इन्द्र ने माया करके नमिराजर्षि की सासारिक पदार्थों मे आसक्ति एव ममत्व न होने की परीक्षा की है और नमिराजर्षि ने यह स्पष्ट कह दिया है किः -

"मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किंचणं।"

अर्थात्—मिथिला के जल जाने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता।

ऐसा उत्तर देकर नमिराजर्षि ने सांसारिक पदार्थों मे अपना ममत्व हट जाना बतलाया है किन्तु मरते जीव की रक्षा करने मे पाप नहीं कहा है।

अत. नमिराजर्षि के उदाहरण से जीवरक्षा करने मे पाप कहना अज्ञानियों का कार्य है ॥१८॥

५—अधिकार नेमिनाथजी ने गजसुकुमाल की अनुकम्पा नहीं की, ऐसा कहने वालों को उत्तर

संक्षिप्त कथा

द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। इनके छोटे भाई का नाम गजसुकुमाल (गजसुकुमार) था। एक समय बाईसवे तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) द्वारिका के बाहर उद्यान मे पधारे। श्रीकृष्ण वासुदेव अपने छोटे भाई गजसुकुमाल को साथ लेकर भगवान् को वन्दना करने गये। भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर गजसुकुमाल को वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपनी माता देवकी और पिता वसुदेव की आज्ञा लेकर उन्होंने भगवान् के पास दीक्षा ले ली। उसी दिन बारहवी भिक्खुपडिमा अङ्गीकार कर श्मशान भूमि मे ध्यान धर कर खड़े रहने की भगवान् से आज्ञा मागी। अपने ज्ञान में देखकर भगवान् ने उन्हे आज्ञा दे दी। तब वे श्मशान भूमि मे जाकर ध्यान धर कर खड़े रहे। उसी समय इनका श्वसुर सोमिल ब्राह्मण उधर आ निकला। पूर्ववैर के जागृत हो जाने के कारण उसने गजसुकुमाल के शिर पर गीली मिट्टी की पाल बाधकर खैर की लकड़ी के खीरे (अङ्गारे) रख दिये। इससे मुनि को तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। उन्होने इस तीव्र वेदना को समभावपूर्वक सहन की और परिणामों में किसी प्रकार की चञ्चलता एवं कलुषता न आने दी। परिणामो की विशुद्धता के कारण उनको तत्क्षण केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो गये और वे मोक्ष मे पधार गये।

❀ ढाल ❀

श्री नेमि जिनेश्वर जाणता,
मुनि गजसुकुमाल री घात रे जीवा ।
ए तो खेर खीरा माथे खमी,
मोक्ष जासी इणहिज भांत रे जीवा ।।
मोह अनुकम्पा जाणिये ।।1।।

तेथी जिण दिन दीक्षा आदरी,
पडिमा वहण चित्त चाय रे जीवा ।
आज्ञा मांगी जिनराज री,
श्रीमुख दीवी फुरमाय रे जीवा ।।मो. 2।।

भावार्थ:—गजसुकुमाल ने जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन बारहवी भिक्खुपडिमा अङ्गीकार करके श्मशान में ध्यान धर खड़े रहने की श्री नेमिनाथ भगवान् से आज्ञा मागी । सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ने अपने ज्ञान में यह बात जान ली थी कि गजसुकुमाल मुनि सिर पर खेर के खीरों को सहन कर आज ही मोक्ष जाएंगे । इसलिए उन्होंने गजसुकुमाल मुनि को उपरोक्त कार्य के लिए आज्ञा दे दी ।।१-२।।

श्मशाणे काउसग्ग कियो,
सोमल आयो तिहां चाल रे जीवा ।
माथे पाल बांधी माटी तणी,
मांहे घाल्या खीरा लाल रे जीवा ।।मो. 3।।

कष्ट सह्यो वेदना खमी;
मुनि मोक्ष गया तिण वार रे जीवा ।
केई मन्दमती तो इम कहे,
* नेम करुणा न की लिगार रे जीवा ।।मो. 4।।

---

* जैसा कि वे कहते हैं.—
कष्ट सह्यो वेदना अति घणी,

पहले करुणा आणी नहीं
और साधु न मेल्या साथ रे जीवा ।
तेथी अनुकम्पा में पाप है,
इम बोले झूठ मिथ्यात रे जीवा ॥मो. 5॥

भावार्थ:—भगवान् की आज्ञा लेकर गजसुकुमाल मुनि श्मशान भूमि में गये और वहां ध्यान धर कर खड़े हो गये। उसी समय उनका श्वसुर सोमिल ब्राह्मण उधर आ निकला। गजसुकुमाल मुनि को देखकर उनका पूर्ववैर जागृत हो गया। गीली मिट्टी लेकर उसने मुनि के शिर पर पाल बाधी और पास में जलती हुई चित्ता में से खीरे लेकर मुनि के शिर पर रख दिये। मुनि को अत्यन्त तीव्र वेदना हुई किन्तु उन्होने उस तीव्र वेदना को समभावपूर्वक सहन की केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर मुनि तत्काल मोक्ष पधार गये।

इस विषय मे कितनेक मन्दबुद्धि जीव ऐसा कहते हैं कि 'नेमिनाथ भगवान् ने गजसुकुमाल मुनि की अनुकम्पा नही की और अनुकम्पा करके उनके साथ साधु भी नही भेजे। इसलिए 'अनुकम्पा करने में पाप है' ऐसी खोटी स्थापना करते हैं ॥३–५॥

(उत्तर) चरम शरीरी जीव नो,
आयु टूटे नहीं लिगार रे जीवा ।
जिम बांध्यो तिम भोगवे,
निरुपक्रमी तणो निरधार रे जीवा ॥मो. 6॥

नेमि करुणा न आणी लिगार रे ॥१८॥
श्री नेमि जिनेश्वर जाणता,
होसी गजसुकुमाल री घात रे।
पहिले अनुकम्पा आणी नही,
और साधु न मेल्या साथ रे ॥१९॥
(अनु० ढाल ३)

आगमबलिया केवली,

कल्पातीत त्रिकाल ना जाण रे जीवा ।

निश्चय जाणे तिम करे

जांरो नाम लेई करे ताण रे जीवा ।।मो. 7।

गजसुकुमाल रीं ना करी,

अनुकम्पा श्री नेम रे जीवा ।

ए वचन अनुकम्पा-द्वेष रा,

ज्ञानी तो समझे एम रे जीवा ।।मो. 8।।

भावार्थ:—चरमशरीरी (उसी भव में मोक्ष जाने वाला) जीव का आयुष्य निरुपक्रमी होता है अर्थात् उनका आयुष्य बीच मे नही टूटता । जितना आयुष्य बांधा है और जिस प्रकार बाँधा है वे अपना उतना पूरा आयुष्य उसी प्रकार भोगकर फिर मोक्ष जाते हैं ।

गजसुकुमाल मुनि चरमशरीरी जीव थे । वे अपना पूर्ण आयुष्य भागकर फिर मोक्ष गये थे । उनका आयुष्य बीच में टूटा नही था । दूसरी बात यह है कि तीर्थंकर भगवान् आगम विहारी, कल्पातीत भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनो काल के जानने वाले सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हैं वे जिस तरह से अपने ज्ञान मे देखते हैं उसी तरह से करते हैं । इसलिए यह कहना मिथ्या है कि तीर्थंकर भगवान् श्री नेमिनाथ ने गजसुकुमाल मुनि की अनुकम्पा नही की ।' गजसुकुमाल मुनि इसी प्रकार मोक्ष में जावेंगे यह बात श्री नेमिनाथ भगवान् अपने ज्ञान में जानते थे इसीलिए उन्होने गजसुकुमाल मुनि को ऐसी आज्ञा देने मे भी किसी प्रकार का सकोच नही किया । अत. तीर्थंकर भगवान् श्री नेमिनाथ का नाम लेकर अनुकम्पा को सावद्य बतलाना अनुकम्पाद्वेषियो का कार्य है ।।६–८।।

सूत्र व्यवहारीं मुणि तणो,

सूतर में चाल्यो धर्म रे जीवा ।

तिण ने सूत्रव्यवहारीं नां करे,

जां रे माठां बन्धे कर्म रे जीवा ।।मो. 9।

भावार्थ:—सर्वज्ञ सर्वदर्शी, कल्पातीत आगमविहारी तीर्थङ्कर भगवान् के लिए सूत्र मे किसी प्रकार की मर्यादा नही बतलाई गई है वे तो जिस तरह अपने ज्ञान में देखते हैं उसी प्रकार करते हैं किन्तु सूत्रव्यवहारी (आगमव्यवहारी-आगमानुसारी) मुनि के लिए शास्त्रो मे मर्यादा बतलाई गई है। अतः सूत्रव्यवहारी मुनि को सूत्रों मे बतलाई हुई मर्यादा के अनुसार ही वर्ताव करना चाहिए उससे विपरीत आचरण करने पर सूत्रव्यवहारी मुनि के अशुभ कर्मों का बन्ध होता है ॥६॥

ठाणायङ्ग ठाणे तीसरे,
चौथे उद्देशे अधिकार रे जीवा ।
तपसी, रोगी, नवदीक्ष नो,
कोई न करे सार संभार रे जीवा ॥मो. 1०॥

ते बैरी अनुकम्पा तणा,
जिन श्रीमुख भाख्या आप रे जीवा ।
तेथी तीनों रीं करणी चाकरी,
नहीं करियां थीं लागे पाप रे जीवा ॥मो. 11॥

भावार्थ:—ठाणाङ्ग सूत्र के तीसरे ठाणे के चौथे उद्देशे में श्री तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया है कि तपस्वी, रोगी और नवदीक्षित इन तीन मुनियो की जो साधु सारसंभाल एव वैयावच्च नही करता वह अनुकम्पा का द्वेषी है। इसलिए इन तीनो की वैयावच्च अवश्य करनी चाहिये। इनकी वैयावच्च नही करने से पाप लगता है ॥१०-११॥

गजसुकुमाल रो नाम ले,
अनुकम्पा में थापे पाप रे जीव ।
ते घातक मुनि ना जाणज्यो,
ज्यां दीना सूत्र उथाप रे जीवा ।
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥12॥

भावार्थ.—गजसुकुमाल मुनि का उदाहरण देकर जो लोग अनुकम्पा मे पाप की स्थापना करते हैं वे अनुकम्पा के घातक हैं। वे सूत्रो के उत्थापक है। ऐसे लोग अनन्तकाल तक ससार में परिभ्रमण करते रहते हैं और भोले लोगों को भ्रम मे डालकर उन्हे भी अनन्तससार मे परिभ्रमण करवाते हैं ॥१२॥

□□□

६—अधिकार वीर भगवान् के उपसर्ग दूर करने मे पाप कहते हैं, उसका उत्तर

—:❀❀:—

श्री वीर जिनेन्द्र चौबीसमां,
कल्पातीत मोटा अणगार रे जीवा।
ज्यां ने देव मनुज तिर्यञ्च ना,
उपसर्ग उपज्या अपार रे जीव ॥मो. 1॥

भावार्थ. चौबीसवे तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी कल्पातीत महामुनीश्वर थे। छद्मस्थ अवस्था में उन्हे देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी अनेक उपसर्ग उत्पन्न हुए थे, उन सबको वीर भगवान् ने समभावपूर्वक सहन किये थे ॥१॥

(कहे) "संगम देव भगवान् ने,
दु.ख दीधा अनेक प्रकार रे जीवा।
म्लेच्छ लोकां श्री वीर रे,
श्वनादिक दीना लार रे जीवा ॥मो. 2॥

दुःख देतां देखी वीर ने,
अलगा नहीं किया आय रे जीवा।

समदृष्टि देव हूंता घणा,
पिण किण हीं न कीधी साय रे जीवा ।।मो. 3।

अनुकम्पा आण बीच में पड्या
यो तो जिन भाख्यो नही धर्म रे जीवा ।
तेथी उपसर्ग मेटणो पाप में"
मन्दमतीं पाड़े इम मर्म रे जीव ।।मो. 4।।

भावार्थ.—अनुकम्पाद्वेषी कितनेक लोगो का कथन है कि "सगमदेव ने वीर भगवान् को बहुत उपसर्ग दिये और जब भगवान् अनार्य देश में पधारे तब वहां के म्लेच्छ लोगो ने भी अनेक प्रकार के उपसर्ग दिये और भगवान् के पीछे कुत्ते लगाये । उस समय अनेक समदृष्टि देव थे किन्तु किसी ने भी भगवान् की सहायता नही की, और उनके उपसर्ग दूर नही किये । इसलिए अनुकम्पा लाकर किसी के उपसर्ग को मिटाना धर्म नही किन्तु पाप है ।" इस प्रकार कितनेक मन्दबुद्धि अनुकम्पाद्वेषी लोग अनुकम्पा मे एव अनुकम्पा लाकर किसी के दु:ख को दूर करने में पाप कहते हैं ।।२–४।।

हिवे उत्तर एनो सांभलो,
देव मेटया छै उपसर्ग आय रे जीवा ।
अनुकम्पा रा द्वेष थी
मन्दमतो वे दिया छिपाय रे जीवा ।।मो. 5।।

भावार्थः—अब ध्यानपूर्वक इसका उत्तर सुनो । जो लोग यह कहते हैं कि "देवो ने वीर भगवान् के उपसर्ग नही मिटाये थे" वे मिथ्या भाषण करते हैं । देवो ने कई अवसरों पर वीर भगवान् के उपसर्गों को दूर किया था । उन लोगों को अनुकम्पा के साथ द्वेष है इसलिए उन्होने उन वातो को छिपा दी हैं ।।५।।

जिण दिन दीक्षा आदरी,
कायोत्सर्ग रह्या वन मांय रे जीवा ।

पशुपाल बैल रे कारणे,
वीर ने मारण हाथ उठाय रे जीवा ।।मो. 6।।

तब इन्द्र आय ने रोकियो
भक्तिवन्त तो भक्ति चाय रे जीवा ।
सिद्धारथ देव श्री वीर रा,
बहु उपसर्ग दीना मिटाय रे जीवा ।।मो. 7।।

कानां थी कीला काढ़िया,
भक्तिवन्त वैद्य हुलसाय रे जीवा ।
ते महाफल पायो धर्म नो,
मरणान्तिक कष्ट मिटाय रे जीवा ।।मो. 8।।

इम बहु उपसर्ग मेटिया,
कल्पसूत्र कथा रे मांय रे जीवा ।
तो पिण अनुकम्पा-द्वेषी इम कहे,
कोई उपसर्ग टाल्यो नाय रे जीवा ।।मो. 9।।

भावार्थ जिस दिन भगवान् महावीर स्वामी ने दीक्षा ली उसी दिन जङ्गल मे जाकर वे कायोत्सर्ग करके खड़े रहे। वहां एक ग्वाला अपने बैलो को चरा रहा था। वहा वीर भगवान् को खड़े देखकर उनसे अपने बैलो की निगाह रखने के लिए कह कर वह अपने किसी कार्य के लिए चला गया। बैल चरते-चरते कही दूसरी जगह चले गये। वापिस आकर जब उस ग्वाले ने बैलो को वहाँ न देखा तो उसने अपने बैलो के विषय मे भगवान् से पूछा। भगवान् तो ध्यानस्थ खड़े थे। उनसे कोई उत्तर न पाकर वह अपने बैलो को इधर-उधर जङ्गल मे ढूढने लगा। इधर सयोगवश बैल चरते-चरते वापिस वही आ गये और उन्हे ढूढता हुआ ग्वाला भी वापिस वही आ निकला। उसने अपने बैलो को वहां देखकर मन मे विचार किया कि "ये बाबाजी चोर मालूम होते हैं मेरे बैलो को चुरा ले जाना चाहते थे इसलिए पहले इन्होने मेरे बैलो को कही छिपा दिया था।" ऐसा समझकर वह ग्वाला भगवान् को मारने लगा किन्तु उसी समय

इन्द्र ने आकर उसे रोक दिया। इस प्रकार ग्वाले से होने वाले उपसर्ग को इन्द्र ने मिटा दिया।

इसी प्रकार सिद्धार्थ देव ने भी वीर भगवान् के बहुत से उपसर्ग मिटाये थे।

जब भगवान् के कानो में कीले ठोक दिये थे तब उन्हे अत्यन्त वेदना हुई। किसी भक्तिवान् वैद्य ने भगवान् के कानो से उन कीलों को निकालकर उनका मरणान्तिक कष्ट मिटा दिया, जिससे उस वैद्य को महान् धर्म-लाभ हुआ।

इस प्रकार अनेक अवसरो पर भगवान् के उपसर्ग दूर किये गये थे जिनका वर्णन कल्पसूत्र की कथाओ मे है। ऐसा होते हुए भी कितनेक अनुकम्पाद्वेषी कहते है 'वीर भगवान् का उपसर्ग किसी ने नही मिटाया।' यह उनका कथन एकान्त मिथ्या है ॥६-६॥

(कहे) कथा री बात मानां नहीं,
तो संगम री मानो केम रे जीवा।
या कथा पिण कल्पसूत्र नी,
तुम साख देवो छो केम ❀ रे जीवा ॥मो. 10॥

भावार्थः—यदि वे ऐसा कहे कि वीर भगवान् के उपसर्ग मिटाने की ये बातें कल्पसूत्र की कथाओ में है। हम कथाओं की बातो को प्रामाणिक नही मानते' तो उनसे कहना चाहिये कि 'सगमदेव ने

❀ जैसा कि वे कहते है:—

सगमदेवता भगवान् ने, दुःख दीधा अनेक प्रकार रे।
अनार्य लोका श्री वीर रे, श्वानादिक दीधा लार रे॥

(अनु. ढाल २ गाथा २१)

वीर भगवान् को उपसर्ग दिया था, यह बात भी तो कल्पसूत्र की कथा में आई है फिर तुम लोग इसका प्रमाण कैसे देते हो ? उपसर्ग देने को तो प्रामाणिक मानना और उपसर्ग मिटाने की बात को प्रामाणिक न मानना यह केवल तुम्हारा हठाग्रह' ।।१०।।

श्री वीर ना उपसर्ग मेटिया,
ठामठाम कथा रे मांय रे जीवा ।
तुम कहो किण ही न मेटिया❀
झूठा बोलता शरमो नाय रे जीवा ।।मो. 11।।

भावार्थः—श्री वीर भगवान् के उपसर्ग यथावसर मिटाये गये थे इस बात का वर्णन कल्पसूत्र की कथाओ मे एव अन्य कथाओं में जगह-जगह मिलता है । फिर भी जो लोग यह कहते हैं कि— किसी ने वीर भगवान् का उपसर्ग नही मिटाया' इस प्रकार सरासर मिथ्या भाषण करते हुए उन लोगों को जरा भी शर्म नहीं आती ।।११।।

जब ज्वाब न आवे एहनो,
आडा अवला गाल बजाय रे जीवा ।
म्लेच्छ शस्त्र खूटयां थकां,
डूंगर थी टोल गुड़ाय रे जीवा ।।मो. 12।।

भावार्थः—जब उन लोगों से यह पूछा ज़ाता है कि 'वीर भगवान् के उपसर्ग मिटाने का वर्णन कथाओं मे जगह जगह मिलता है फिर तुम इस प्रकार मिथ्या भाषण क्यों करते हो कि किसी ने वीर भगवान् का उपसर्ग नही मिटाया थे ? जब इसका उन्हे सीधा जवाब कुछ भी नही आता तब जिस प्रकार अपने पास के शस्त्र समाप्त हो

❀ जैसा कि वे कहते हैं:—

दु:ख देता देखी भगवान् ने, अलगा न कीधा आय रे ।
समदृष्टि देव हूंता घणा, पिण किण ही न कीधी सहाय रे ।।

(अनु० ढाल २ गाथा २३)

जाने पर म्लेच्छ लोग पर्वत पर से पत्थर लुढकाते हैं उसी प्रकार वे अडग-बडग ऊटपटाग जवाब देने लगते हैं ॥

पार्श्व प्रभु दीक्षा ग्रही,
काउसग्ग कियो वन मांय रे जीवा ।
जब कमठे मेह बरसावियो,
उपसर्ग दीनो आय रे जीवा ॥मो. 13॥

तब धरणेन्द्र पद्मावती,
उपसर्ग दीनो मिटाय रे जीवा ।
तुम पिण मानो या वारता, ❀
हिवे बोली ने बदलो काय रे जीवा ॥मो. 14॥

भावार्थः—तेईसवे तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने दीक्षा ग्रहण करके जङ्गल मे जाकर कायोत्सर्ग किया । उस समय कमठ देव ने भगवान् को उपसर्ग देने के लिए मूषलाधार पानी बरसाना शुरू किया । तब धरणेन्द्र और पद्मावती ने भगवान् का वह उपसर्ग दूर किया अर्थात् धरणेन्द्र ने भगवान् के शिर पर छत्र कर दिया और उसकी पद्मावती देवी ने भगवान् के नीचे सिंहासन कर दिया । इस प्रकार उन्होने भगवान् का यह उपसर्ग दूर किया । इस बात को वे लोग भी मानते हैं और इसीलिए उन्होने अपनी ढालो में जोड रक्खा है । इस प्रकार उनके वचन परस्पर विरोधी हैं अर्थात् एक तरफ तो वे कहते हैं कि "किसी ने भगवान् का उपसर्ग नही मिटाया और दूसरी

❀ जैसा कि वे कहते हैं :—

पार्श्वनाथजी घर छोड़ काउसग्ग कीधो,
जब कमठ उपसर्ग कर बरसायो पाणी ।
जब पद्मावती हेठे सिंहासन कीधो,
धरणेन्द्र छत्र कियो सिर आणी ॥

(अनु० ढाल ३ गाथा २७)

तरफ कहते है कि धरणेन्द्र और पद्मावती देवी ने पार्श्वनाथ भगवान् का उपसर्ग मिटाया था तथा एक तरफ तो वे कहते हैं कि हम कथा की बात को नही मानते और दूसरी तरफ कथा मे आई हुई धरणेन्द्र पद्मावती द्वारा उपसर्ग मिटाने की बात को स्वीकार करते हैं।" इस प्रकार परस्पर विरोधी वचनो के कारण वे अपने ही वचनो से झूठे साबित होते है ।।१३–१४।

वलि कथा रे नामे तुमे,
ढालां जोड़ी विविध प्रकार रे जीवा ।
नवकार मन्त्र प्रभाव * थीं,
उपसर्ग मेटण अधिकार रे जीवा ।।मो. 15 ।

श्रीमती अमरकुमर वली,
भील सेठ आदिक नी बात रे जीवा ।
देव साय करी (तुमे) मानी खरी
बीच पड्या ये साक्षात् रे जीवा ।।मो 16 ।

---

* जैसा कि आराधना की दसवी ढाल मे वे कहते हैं —
पन्नग पुष्प नी माल थई- नवकार प्रभावे कीरति लई ।
सुख श्रीमती उभय भवे सार, इम जाण जपो श्रीनवकारं ।।७।।
अग्नि ठंडी कीधी देवा,
किंयो कनक सिंहासन तत्खेवा ।
ऊपर अमर कुमार प्रति पैसारं,
इम जाण जपो श्री नवकार ।८।।
बछडा जरावतो जीह वार,
नदी पूर आयो गुण्यो नवकार ।
थई ततखीण सरिता दोय डारं,
इम जाण जपो श्री नवकार ।।९।।
सेठ समुद्र में डूबतो,
नवकार गुण्यो धर चित्त शान्तो ।
सुर जहाज उठाय मेली पारं,
इम जाण जपो श्री नवकार ।।१०।।

भावार्थः—कथा मे आई हुई बातों के आधार पर नवकार मन्त्र के प्रभाव से उपसर्ग मिटने सम्बन्धी अनेक प्रकार की बातें उन्होने ढालो में जोड रक्खी हैं। जैसे कि—नवकार मन्त्र के प्रभाव से श्रीमती के लिए सर्प के स्थान फूलमाला बन गई, अमरकुमार के लिए अग्नि शीतल होकर उसके स्थान पर सोने का सिंहासन हो गया, बछड़े चराने वाले भील के लड़के के लिए नदी का पूर शान्त होकर नदी ने थाह दे दिया और जब सेठ समुद्र मे डूबने लगा तब नवकार मन्त्र के प्रभाव से देवों ने उसकी जहाज को तीर पहुंचा दिया। इस प्रकार कथा के आधार पर अनेक बातें उन्होंने अपनी ढालों मे जोड रक्खी हैं और इस बात को स्वीकार किया है कि देवों ने उपसर्ग मिटाये थे ॥१५-१६॥

ये था समदृष्टि देवता,
जिनधर्म दिपावणहार रे जीवा ।
नवकार महिमा कारणे,
संकट मेट कियो उपकार रे जीवा ॥मो. 18॥

तुम कहता समदृष्टि देवता,
बीच में नहीं पड़िया आय रे जीवा ।
या बात थारी झूठी हुई,
बीच पड्या थां मान्या जोड मांय रे जीवा ॥18॥

भावार्थः—ये सब जिनधर्म दीपाने वाले समदृष्टि देव थे जिन्होने नवकार मन्त्र की महिमा के कारण उन पुरुषो का उपसर्ग मिटाकर उपकार किया था।

अब उन लोगो से पूछना चाहिए कि 'तुम कहते थे कि समदृष्टि देवों ने उपसर्ग नही मिटाये थे किन्तु इन ढालो में तुमने स्वयं इस बात को मान लिया है कि समदृष्टि देवी ने उपसर्ग मिटाये थे। इसलिए तुम्हारा पूर्वकथन तुम्हारी स्वय की ढालो से झूठा साबित हो गया ॥१७–१८॥

जहाज बचाई देवता,

यो तो धर्म तणो उपकार रे जीवा ।

जो खोटा जाणे समदृष्टि,

देवता किम करता सार रे जीवा ।।मो. 17।।

थें अनुकम्पा रा द्वेष थी, (कह्यो)

धर्म हो तो न करता ढील रे जीवा ।

※ उपसर्ग तुरत मिटावता,

समदृष्टि देवां रो शील रे जीवा ।।मो. 20।।

भावार्थ:—उन लोगो से कहना चाहिए कि 'समुद्र में डूबती हुई उस सेठ की जहाज को देव ने बचा दिया, इससे अनेक मनुष्यो के प्राण बच गये वह कितना बड़ा उपकार हुआ । यदि समदृष्टि देव इसे पाप कार्य समझता तो वह यह कार्य क्यो करता ? देव ने इसको धर्म का कार्य समझकर किया था । इसलिए तुम लोग जो यह कहते हो 'यदि उपसर्ग मिटाने में धर्म होता तो समदृष्टि देव अवश्य उपसर्ग मिटाते' यह तुम्हारा कथन मिथ्या हुआ ।।१६–२०।।

नवकारक प्रभाव थी देवता,

उपसर्ग मेटचा साक्षात् रे जीवा ।

तुम कथने पिण हुवो धर्म यो,

मान लेवो छोड़ मिथ्यात रे जीवा ।।मो. 21।।

भावार्थ:—उन लोगो से कहना चाहिए कि तुम लोगों ने भी

※ जैसे कि वे कहते हैं :—

धर्म हूंतो आघो न काढता,

वली वीर ने दुखिया जाण रे जीवा ।

परीषह देवण आया तेहने,

देव अलगा करता ताण रे जीवा ।।

(अनु० ढाल २ गाथा २५)

इस वात को स्वीकार किया है कि नवकार मन्त्र के प्रभाव से देवों ने उपसर्ग मिटाये हैं और उपसर्ग मिटाने से धर्म हुआ है। फिर तुम लोग जो यह कहते हो कि 'उपसर्ग मिटाना पाप है' यह तुम्हारा कथन मिथ्या सावित होता है ॥२१॥

तो सब उपसर्ग वीर ना,
देव केम न मेट्या आय रे जीवा।
एवी शका कोई करे,
जां र सुधबुध हिरदे नाय रे जीवा ॥मो, 22॥

निश्चयवादी अवधिधरा,
मिटता देख्या निज ज्ञान रे जीवा।
तो विघ्न मेट्यां देवां हर्ष सूं,
धर्म सेवा रो दे शुभ ध्यान रे जीवा। मो. 23॥

जो होनहार टले नहीं,
ते देव न सके टार रे जीवा।
त्यां रो नाम लेई कहे मूढमती,
उपसर्ग मेट्यां पाप अपार रे जीवा ॥मो. 24॥

भावार्थः यदि कोई ऐसी शङ्का करे कि 'यदि उपसर्ग मिटाने मे धम तो फिर देवों ने महावीर स्वामी के सारे उपसर्ग क्यो नही मिटा दिये ?' ऐसी शङ्का करना अयुक्त है क्योकि निश्चयवादी अवधिज्ञान देवो ने अवधिज्ञान द्वारा जिन उपसर्गो को प्रयत्न से मिटने योग्य देखा उनको धर्मसेवा का कार्य समझकर हर्षपूर्वक मिटाये हैं परन्तु भवितव्यता (होनहार) तो देवो मे भी टाली नही जा सकती। होनहार का नाम लेकर यदि कोई ऐसी स्थापना करे कि 'उपसर्ग मिटाने मे पाप है' तो उसे मूर्ख समझना चाहिए ॥२२-२४।

सौ कोसां उपसर्ग ना होवे,
जिन महिमा सूतर साख रे जीवा।

होनहार गोशाले वीर पे,

तेजू लेश्या दीनी नाख रे जीवा ।।मो. 25।।

भावार्थ:—शास्त्रो मे ऐसा फरमाया गया है कि 'जहा तीर्थंकर भगवान् विचरते हो वहा से सौ कोस तक किसी प्रकार उपसर्ग एव उपद्रव नही होता' परन्तु गोशालक ने साक्षात् तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी पर ही तेजोलेश्या फेंक दी । तो कहना पड़ेगा कि यह 'होनहार' थी ।।२५।।

उपसर्ग मिटे प्रभु तेजथी,

यह तो प्रत्यक्ष आछो काम रे जीवा ।

भावी टले नहीं जो कदा,

मन्द आणे मुज नाम रे जीवा ।।मो. 26।।

वीर उपसर्ग देवां मेटिया,

परतख धर्म रो काम रे जीवा ।

जो होनहार मिटे नहीं

ज्ञानी नहीं लेवे तिण रो नाम रे जीवा ।।

मोह अनुकम्पा न जाणिये ।।27।।

भावार्थ.—जिस प्रकार तीर्थङ्कर भगवान् के अतिशय से उपसर्ग मिट जाते हैं, यह धर्म का कार्य है परन्तु यदि कोई भावी (होनहार) उपसर्ग न टले तो उपसर्ग टलने मे पाप की स्थापना नही की जा सकती उसी प्रकार देवो ने महावीर स्वामी के कई उपसर्ग मिटाये थे यह प्रत्यक्ष धर्म का कार्य है परन्तु जो भवितव्यता रूप उपसर्ग नही मिटाया जा सका उसका उदाहरण देकर उपसर्ग मिटाने में पाप की स्थापना नही की जा सकती । भवितव्यता (होनहार) का उदाहरण देकर यदि कोई उपसर्ग मिटाने मे पाप की स्थापना करे' तो उसे हठवादी मूर्ख समझना चाहिए ।।२७।।

———

७–अधिकार–द्वीप समुद्रों की हिंसा देवता क्यों नहीं मिटाते ? इसका उत्तर

—:꧁꧂:—

कोई मन्दमती इण पर कहे,
अनुकम्पा उठावण काज रे जीवा ।
इन्द्र मेटी न हिंसा समुद्र (द्वीप) री,
अचित वस्तु रो देई साज रे जीवा ।।मो. 1।।

ज्यां ने द्वेष घणो करुणा तणो,
उदय आयो मिथ्यात रो पाप रे जीवा ।
तेथी अनुकम्पा पाप छै,
एवी मन्द करे छे थाप रे जीवा ।।मो. 2।।

भावार्थ:—अनुकम्पा को उठा देने के लिए कितनेक मन्दबुद्धि ऐसा कुतर्क करते हैं कि—'यदि अनुकम्पा करने में धर्म है तो इन्द्र अचित्त वस्तु देकर द्वीप समुद्रो मे होने वाली हिंसा को क्यो नही मिटाता ? इसलिए अनुकम्पा में पाप है ।' इस प्रकार इन्द्र का नाम लेकर जो अनुकम्पा मे पाप की स्थापना करते हैं, समझना चाहिए कि उन लोगो को अनुकम्पा से बड़ा भारी द्वेष है और उनके मिथ्यात्वरूपी पाप उदय में आया है ।।१–२।।

त्यां ने ज्ञानी कहे समझायवा,
इन्द्र जे-जे न करे काम रे जीवा ।
तिण मे पाप कहो तो विचार लो,
केइ काम रा लेऊं नाम रे जीवा ।।मो. 3।।

भावार्थः – उन उपरोक्त अज्ञानी जीवों को समझाने के लिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि 'जो-जो काम इन्द्र नही करता उन सब मे

पाप है' ऐसी स्थापना नही की जा सकती । यदि कोई ऐसी स्थापना करे कि 'जो काम इन्द्र नही करता उसमे पाप है तो कितनेक ऐसे कार्यों का नाम गिनाया जाता है जिनको इन्द्र ने नही किया । क्या उन सब में पाप माना जायगा ?'

श्रीकृष्ण नरेश्वर महामती,
जांए पडहो दीनो फिराय रे जीवा ।
जो दीक्षा लेवो श्री नेम पे,
मैं पिछलां रीं करूं सहाय रे जीवा ।।मो. 4।।

सहस्र पुरुष सजम लियो,
यो परतख महा उपकार रे जीवा ।
पिण इन्द्र पडहो फेरचो नहीं,
तिण रो बुधवन्त करो विचार रे जीवा ।।मो. 5।।

जो इन्द्र काम कियो नहीं,
तिणसूं कृष्ण ने कहे पाप रे जीवा ।
ते जिनधर्म रा अजाण छै,
खोटा हेतु री करे थाप रे जीवा ।।मो. 6।।

भावार्थ :—ज्ञाता सूत्र के पाँचवें अध्ययन में थावर्चा पुत्र के अधिकार मे यह वर्णन आता है कि महा बुद्धिमान् श्रीकृष्ण वासुदेव ने द्वारिका नगरी मे यह उद्घोषणा करवाई कि जो भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा लेना चाहें, वे बडी खुशी के साथ दीक्षा ले, उनके पीछे रहने वाले कुटुम्बी-जनो की मैं सार-सभाल करूंगा और सर्व प्रकार से सहायता दूंगा । श्री कृष्ण वासुदेव की इस उद्घोषणा को सुनकर एक हजार पुरुषों ने भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा ली । यह प्रत्यक्ष महान् धर्म का कार्य हुआ था । इन्द्र ने इस प्रकार की कोई उद्घोषणा नही करवाई थी । 'इन्द्र जो कार्य नही करता उसमें पाप है' इस प्रकार की स्थापना करने वालों के मत से तो श्रीकृष्ण का उपरोक्त कार्य भी पाप मे ठहरता है । परन्तु ऐसे महान् उपकार और धर्म के कार्य को जो पाप का कार्य कहे तो वैसा महामूर्ख तो ससार

में दूसरा कोई नही हो सकता । इसलिए 'इन्द्र जो कार्य नही करता उस कार्य में पाप है' ऐसी स्थापना करना महामूर्खों का काम है ।।४–६।।

श्रेणिक पडहो फेरावियो,
साधु ने देवो स्थान रे जीवा ।
वलि जीवहिंसा करो मती,
सप्तम अङ्ग में धरो ध्यान रे जीवा ।।मो. 7।।

यो काम इन्द्र कीधो नहीं,
श्रेणिक कीधो धर ध्यान रे जीवा ।
ते तो सांचो समदृष्टि हुंतो,
तुम धारो हिरदे ज्ञान रे जीवा ।।मो. 8।।

श्रेणिक इम न विचारियो,
यो इन्द्र करयो नहीं काम रे जीवा ।
मुझ ने धर्म होसी के नहीं,
एवी शङ्का न आणी ताम रे जीवा ।।मो. 9।।

तो पिण इन्द्र रो नाम ले,
अनुकम्पा मे नांखे भ्रम रे जीवा ।
पिण इन्द्र ज्ञान मे देखे तिम करे,
अनुकम्पा तो आछो धर्म रे जीवा ।।मो. 10।।

भावार्थः—उपासकदशांग सूत्र के आठवे अध्ययन में यह वर्णन आता है कि श्रेणिक राजा ने अपने राज्य मे यह उद्घोषणा करवाई थी कि 'साधु महात्माओ को ठहरने के लिए यथायोग्य स्थान दो और किसी भी जीव की हिंसा मत करो ।' अब उन लोगो से पूछना चाहिए कि यह काम इन्द्र ने तो नही किया था किन्तु शुद्ध श्रद्धावान् समदृष्टि श्रेणिक राजा ने किया था । इसमे श्रेणिक को धर्म हुआ या पाप ? यह तो प्रत्यक्ष धर्म का कार्य है ।—अमारी' (किसी जीव को

मत मारो) की उद्घोषणा करवा कर श्रेणिक राजा ने महान् धर्म का लाभ प्राप्त किया था और तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा था। इस कार्य को करते समय श्रेणिक राजा ने ऐसी शङ्का नही की कि 'यह कार्य इन्द्र ने तो नही किया किन्तु मैं करता हूं। मुझ धर्म होगा या नहीं?' श्रेणिक राजा समदृष्टि थे। वे समझते थे कि यह तो महान् धर्म का कार्य है इससे अनेक प्राणियों के प्राण बचेगे।

ऐसे धार्मिक-कार्यों के अनेक उदाहरण शास्त्रों मे विद्यमान् हैं जिनको इन्द्र ने नही किया था किन्तु समदृष्टि जीवों ने उन कार्यों को किया है। इसलिए यह नियम नही बनाया जा सकता कि जिन कार्यों को इन्द्र न करे उनमे पाप होता है। इन्द्र तो अपने अवधिज्ञान मे जिस तरह देखता है वैसा ही करता है। इन्द्र के न करने से अनु-कम्पा के कार्य मे पाप की स्थापना नही की जा सकती। 'इन्द्र जो कार्य न करे उसमे पाप है' ऐसी स्थापना करने वाले को मूर्ख-शिरोमणि समझना चाहिए ॥७–१०॥

सावद्य ने निरवद्य वली,
अनुकम्पा रा भेद दोय रे जीवा।
इन्द्र कया नहीं तुम भणीं
थे भाखो क्यो निर्वुद्ध होय रे जीवा ॥मो. 11॥

भावार्थ:—'इन्द्र जो कार्य न करे उसमें पाप है' ऐसी स्थापना करने वाले लोगो से पूछना चाहिए कि 'इन्द्र ने तो अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य ये दो भेद नही किये हैं और न इन्द्र ने आकर तुमसे ऐसा कहा। फिर तुम लोग अनुकम्पा के सावद्य, निरवद्य ऐसे दो भेद क्यो कहते हो?'

तब तो झटके बोल दे,
म्हारे इन्द्रसूं कांई काम रे जीवा।
म्हें सूत्र सूं करां परूपणा,
म्हारा गुरां रो राखां नाम रे जीवा ॥मो. 12॥

रानी के आदेशानुसार दासी ने उस बालक को अशोकवाटिका में ले जाकर उकरडी पर डाल दिया। जब यह बात राजा को मालूम हुई तब वह स्वय वहां गया और बालक को उठाकर चेलना रानी के पास आया। रानी को उलाहना देते हुए राजा ने कहा—तुमने इस बालक को उकरड़ी पर क्यो डलवा दिया तुमने यह ठीक नही किया। लो, अब इसका अच्छी तरह पालन-पोषण करो।

श्रेणिक राजा के उपरोक्त कथन को सुनकर रानी बहुत लज्जित हुई। उसने राजा के कथन को स्वीकार किया और उस बालक का पालन-पोषण करने लगी।

तीसरे दिन बालक को सूर्य दर्शन कराये और बारहवे दिन उसका गुणनिष्पन्न* कोणिक नाम रक्खा। सुखपूर्वक बढता हुआ बालक क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुआ। आठ सुन्दर राजकन्याओ के साथ उसका विवाह किया गया।

एक समय कोणिक ने काली-सुकाली अपनी सौतेली माताओ से जन्मे हुए काल-सुकाल आदि दस भाइयो को बुलाया और कहा—राजा श्रेणिक अब बूढा हो गया है फिर भी राज्य करने की उसकी इच्छा ज्यो की त्यो बनी हुई है। वह अब भी राज्यलक्ष्मी हमे नही सौंपता। अतः हमारे लिए यही उचित है कि राजा श्रेणिक को पकड़कर बन्धन मे डाल दें और हम लोग राज्य के ग्यारह विभाग कर आनन्दपूर्वक राज्य करे। कोणिक की इस बात को सब भाइयो ने स्वीकार कर ली।

एक समय मौका देखकर कोणिक ने राजा श्रेणिक को पकड़ कर बन्धन मे डलवा दिया और उसने स्वय अपना राज्याभिषेक

---

*नोट जिस समय वह उकरडी पर रहा था उस समय एक मूर्ग (कुकड़े) ने उसकी एक अगुली काट खाई थी। उसकी अगुली के काट खाये जाने के कारण उसका नाम कोणिक रक्खा गया था।

करवाया। राजा बनकर वह माता को प्रणाम करने के लिए गया। माता को उदास और चिन्ताग्रस्त देखकर उसने कहा—मातेश्वरि ! आज तुम्हारा पुत्र राजा बना है। तुम राजमाता बनी हो। आज तुम्हे विशेष प्रसन्न होना चाहिए किन्तु तुम तो उदास प्रतीत हो रही हो इसका क्या कारण है ? माता ने कहा—पुत्र ! तुमने अपने पूज्य पिता को बन्धन में डाल रखा है। यह तुमने बड़ा अनुचित कार्य किया है। वे तुमसे कितना प्रेम करते है ? बचपन मे उन्होने तुम्हारी किस प्रकार रक्षा की थी ? इन सब बातो को तुम भूल गये हो। ऐसा कहकर माता ने उसे जन्म के समय की सारी घटना कह सुनाई।

माता के कथन को सुनकर कोणिक कहने लगा—माता ! मैंने वास्तव मे बड़ा दुष्ट कार्य किया है। पिता श्रेणिक मेरे लिए देवगुरु के समान पूजनीय हैं। अत. अभी जाकर मैं उनके बन्धन को काट देता हूं। ऐसा कहकर हाथ में फरसा लेकर अपनी तरफ आते हुए कोणिक को देखकर राजा श्रेणिक ने विचार किया कि न जाने अब यह मुझे किस कुमृत्यु से मारेगा। इसके हाथ से मर जाने की अपेक्षा तो यही अच्छा है कि मैं स्वय मर जाऊ। ऐसा सोचकर उसने विषमिश्रित मुद्रिका अपने मुख मे रखली जिससे उसकी तत्क्षण मृत्यु हो गई।

नजदीक आने पर कोणिक को मालूम पडा कि विष खाने से राजा श्रेणिक की मृत्यु हो गई है वह तत्क्षण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पडा। कुछ समय पश्चात् उसे चेत हुआ। वह बार-बार पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा—मैं अधन्य हू मैं अकृतपुण्य हू, मैं महादुष्ट कर्म करने वाला हू। मेरे कारण राजा श्रेणिक की मृत्यु हुई है। इसके पश्चात् उसन राजा श्रेणिक का दाहसस्कार किया।

कुछ समय बाद कोणिक चिन्ता-शोकरहित हुआ। वह राजगृह को छोड़कर चम्पा नगरी मे चला गया और उसी को अपनी राजधानी बनाकर वही रहने लगा। उसने काल-सुकाल आदि दसों भाइयों को उनके हिस्से का राज्य बाट कर दे दिया।

श्रेणिक राजा के छोटे पुत्र का नाम विहल्लकुमार था। अपने जीवनकाल मे ही श्रेणिक राजा ने उन्हे एक सेचानक गन्धहस्ती और दिव्य अठारहलड़ा वंकचूड हार दे दिया था। विहल्लकुमार उस हाथी पर सवार होकर गगा नदी के किनारे जाते और वहा अनेक प्रकार क्रीडाएं करते। उनकी रानियो को हाथी अपनी सूंड में उठाता पीठ पर बिठाता तथा और भी अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं द्वारा उनका मनोरञ्जन करता हुआ उन्हे गङ्गा मे स्नान कराता। इस प्रकार उसकी क्रीड़ाओ को देखकर लोग कहने लगे कि वास्तव मे राज्यश्री के उपभोग का आनन्द तो बस विहल्लकुमार लेता है। जब यह बात कोणिक की रानी पद्मावती ने सुनी तो उसके हृदय मे ईर्षा उत्पन्न हुई वह सोचने लगी—यदि हमारे पास सेचानक गन्धहस्ती और हार नही है तो यह राज्य हमारे क्या काम का ? इसलिए विहल्लकुमार से सेचानक गन्धहस्ती और हार अपने यहा मगा लेने के लिए मैं राजा कोणिक से प्रार्थना करूंगी। सोचकर उसने अपनी इच्छा राजा कोणिक के सामने प्रकट की। रानी की बात सुनकर पहले तो राजा ने उसकी बात को टाल दिया किन्तु उसके बार-बार कहने पर राजा के हृदय मे भी यह बात जंच गई। उसने विहल्लकुमार से हार और हाथी मांगे तब विहल्लकुमार ने कहा कि यदि आप हार और हाथी लेना चाहते हैं तो मेरे हिस्से का राज्य मुझे दे दीजिए। विहल्लकुमार की इस न्यायोचित बात पर कोणिक ने कोई ध्यान नही दिया। उसने हार और हाथी जबर्दस्ती छीन लेने का विचार किया। इस बात का पता जब विहल्लकुमार को लगा तो हार और हाथी लेकर अपने अन्त:पुर सहित वह विशाल नगरी मे अपने नाना चेड़ा राजा की शरण में चला गया। तत्पश्चात् कोणिक ने अपने नाना चेड़ा राजा के पास यह सन्देश देकर एक दूत को भेजा कि 'विहल्लकुमार मुझे बिना पूछे हार और हाथी लेकर आपके पास चला आया है। इसलिए उसे मेरे पास शीघ्र वापिस भेज दीजिये।

उपरोक्त सन्देश लेकर दूत विशाल नगरी में चेड़ा राजा की सेवा मे उपस्थित हुआ। उसने राजा कोणिक का सन्देश कह सुनाया। चेडा राजा ने दूत से कहा—'तुम कोणिक से कहना जिस प्रकार तुम श्रेणिक-पुत्र, चेलना के अङ्गजात और मेरे दोहिते हो उसी प्रकार

विहल्लकुमार भी श्रेणिक का पुत्र, चेलना का अङ्गजात और मेरा दोहिता है। श्रेणिक राजा जब जीवित थे तभी यह हार और हाथी विहल्लकुमार को दे दिये थे। यदि अब तुम इन्हे लेना चाहते हो तो विहल्लकुमार को उसके हिस्से का राज्य दे दो।'

दूत ने जाकर यह बात कोणिक राजा को कही। इसे सुनते ही कोणिक राजा अतिकुपित हुआ। उसने कहा—राज्य में उत्पन्न हुई सब वस्तुओं का स्वामी राजा होता है। हार और हाथी भी मेरे राज्य में उत्पन्न हुए हैं। इसलिए उन पर मेरा अधिकार है। वे मेरे ही भोग मे आने चाहिए। ऐसा सोचकर उसने चेडा राजा के पास दूसरा दूत भेजकर कहलवाया—'या तो हार हाथी सहित विहल्लकुमार को मेरे पास भेज दीजिये अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाइये।'

चेडा राजा के पास पहुंच कर दूत ने कोणिक राजा का सन्देश कह सुनाया। चेडा राजा ने कहा—यदि कोणिक अनीतिपूर्वक युद्ध करने को तैयार हो गया है तो न्याय और नीति की रक्षा के निमित्त मैं भी युद्ध करने को तैयार हूं।

दूत ने जाकर कोणिक राजा को उपरोक्त बात कह सुनाई। तत्पश्चात् काल-सुकाल आदि दसों भाइयो को बुलाकर कोणिक ने उनसे कहा कि तुम लोग अपने राज्य में जाकर अपनी-अपनी सेना लेकर शीघ्र आओ। कोणिक राजा की आज्ञा को सुनकर दसों भाई अपने राज्य में गये और सेनाए लेकर कोणिक की सेवा मे उपस्थित हुए। कोणिक भी अपनी सेना को सज्जित कर तैयार हुआ। फिर वे सभी विशाला नगरी पर चढाई करने के लिए रवाना हुए। उनकी सेना में तेतीस हजार हाथी, तेतीस हजार घोडे, तेतीस हजार रथ और तेतीस कोटि पदाति (पैदल सैनिक) थे।

इधर चेडा राजा ने अपने धर्ममित्र काशी देश के नवमल्लि वंश के राजाओं को और कौशल देश के नव लच्छिवंश के राजाओ को एक जगह बुलाया और विहल्लकुमार विषयक सारी हकीकत कही। चेड़ा राजा ने कहा—भूपतियो! कोणिक राजा मेरी न्यायसगत बात

की अवहेलना करके अपनी चतुरगिणी सेना को लेकर युद्ध करने के लिए यहा आ रहा है। अब आप लोगो की क्या सम्मति है ? क्या विहल्लकुमार को वापिस भेज दिया जाय या युद्ध किया जाय ?

सब राजाओं ने एक मत होकर जवाब दिया—मित्र ! हम क्षत्रिय हैं। शरणागत की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। विहल्लकुमार का पक्ष न्यायसंगत है और वह हमारी शरण में आ चुका है। इसलिए हम उसे कोणिक के पास नहीं भेज सकते। न्याय और नीति की रक्षा करने के लिए हम युद्ध करने को तैयार हैं। उनका कथन सुनकर चेडा राजा ने कहा—जब आप लोगो का यही निश्चय है तो आप लोग अपनी-अपनी सेना लेकर वापिस शीघ्र आइये। तत्पश्चात् वे अपने-अपने राज्य में गये और सेनाए लेकर वापिस चेडा राजा के पास आये। चेडा राजा भी अपनी सेना को सज्जित कर तैयार हो गया। उन उन्नीसों राजाओं की सेना मे सत्तावन हजार हाथी, सत्तावन हजार घोडे, सत्तावन हजार रथ और सत्तावन कोटि पदाति (पैदल सैनिक) थे।

दोनो ओर की सेनाएं युद्ध में आ डटी। घोर सग्राम होने लगा। काल, सुकाल आदि दसों भाई दस दिनो मे मारे गये। तब कोणिक ने तेले का तप करके अपने पूर्वभव के मित्र देवो का स्मरण किया। जिससे शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र उसकी सहायता करने के लिए आये। पहले महाशिला सग्राम हुआ, जिसमे चौरासी लाख आदमी मारे गये। दूसरा रथमूसल सग्राम हुआ, उसमें छयानवें लाख मनुष्य मारे गये। उनमें से वरुणनाग नत्तुआ (एक श्रावक जो बारह व्रत-धारी श्रावक था और वेले-वेले पारणा करता था) और उसका मित्र क्रमशः देव और मनुष्य गति मे गये। शेष सभी नरकतिर्यञ्च गति में गये।

देवशक्ति के आगे चेडा राजा की महान् शक्ति भी काम न आई। वे परास्त होकर विशाला नगरी मे घुस गये और नगरी के दरवाजे बन्द करवा दिये। कोणिक राजा ने नगरी के कोट को गिरानें की बहुत कोशिश की किन्तु वह उसे न गिरा सका। फिर कूलबालक

नामक एक गुरुद्रोही पतित साधु की सहायता से विशाला नगरी के कोट को गिरा कर नगरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। हार और हाथी देवप्रदत्त थे इसलिए कोणिक उन्हे न ले सका।

❀ ढाल ❀

केइक कुमती इम कहे,
संग्राम छुड़ायां पाप रे जीवा।
पहली पिण नहीं वर्जणा,
युद्ध होता जाणी साफ रे जीवा ॥मो. 1॥

❀ चेड़ा कोणिक रा साख दे,
भोलां ने सिखावे वाद रे जीवा।

❀ जैसा कि वे कहते हैं:

चेडा ने कोणिक री वारता, निरयावलिका भगवती साख रे।
मानव मुआ दोय संग्राम मे, एक क्रोड ने अस्सी लाख रे जीवा ॥३६

भगवन्त अनुकम्पा आणी नहीं,
पोते न गया न मेल्या साध रे।
या ने पहला पिण वर्ज्या नही,
ते तो जीवां री जाणी विराध रे जीवा ॥४०॥

एमा अनुकम्पा जाणता,
तो वीर विचाले जाय रे।
सगला ने साता उपजावता,
यह तो थोड़े मे देता मिटाय रे जीवा ॥४१॥

कोणिक भक्त भगवान् रो,
चेडो वारह व्रत धार रे।
इन्द्र मीड़ आयो ते समकिती,
ते किण विध लोपता कार रे जीवा ॥४२॥

(अनु० ढाल २ गाथा ३६–४२)

वीर अनुकम्पा आणी नहीं,
पोते न गया न मेल्या साध रे जीवा ॥मो. 2॥

याने पहला पिण वर्ज्या नहीं,
जाणता था संग्राम में घात रे जीवा ।
युद्ध मिटायां पाप छै,
तेथी कह्यो न मेटण बात रे जीवा ॥मो. 3॥

भावार्थ:—कितनेक अज्ञानी लोगों का कथन है कि दो व्यक्ति लड़ रहे हों या दो राजाओं मे युद्ध हो रहा हो तो उपदेश देकर उनका युद्ध शान्त न करना चाहिए और युद्ध होने से पहले भी समझा-कर न रोकना चाहिए क्योंकि युद्ध मिटाने मे पाप होता है इसलिए भगवान् महावीर स्वामी ने चेडा और कोणिक राजा के युद्ध को नही मिटाया था । 'संग्राम मे अनेक मनुष्यों की घात होगी' यह बात भगवान् जानते थे फिर भी भगवान् ने उन्हे समझाकर युद्ध करने से रोका नही तथा जिस समय उन दोनों में युद्ध हो रहा था उस समय भी उन्हे रोकने के लिए न स्वयं भगवान् गये और न दूसरे साधुओं को भेजा था । 'युद्ध मिटाने में पाप है' इसीलिए भगवान् ने उनका युद्ध नही मिटाया था ॥१-३॥

(उत्तर)-भोला भरमावण तणो,
यो तो परतख मांड्यो फन्द रे जीवा ।
ज्ञानी पूछे तेहने,
तब मुखड़ो हो जावे बन्द रे जीवा ॥मो. 4॥

जो युद्ध मेटण वीर ना गया,
तेथी रण मेटण में पाप रे जीवा ।
तो हिंसा मेटण वीर ना गया,
तेथी हिंसा मेटण में पाप रे जीवा ॥मो. 5॥

भावार्थ:—भोले लोगो को भ्रम में डालने के लिए उन लोगों

ने यह प्रपञ्च रचा है किन्तु जब ज्ञानी पुरुष उन लोगों से पूछते हैं तब उन्हें कुछ भी जवाब नही आता। उनका मुंह बन्द हो जाता है। उन लोगों से पूछना चाहिए कि 'चेड़ा राजा और कोणिक राजा के युद्ध को मिटाने के लिए वीर भगवान् नही गये थे' इसलिए आप लोग युद्ध मिटाने मे पाप की स्थापना हो तो हम आपसे पूछते हैं कि युद्ध में होने वाली हिंसा को मिटाने के लिए वीर भगवान् नही गये तो क्या हिंसा मिटाने मे भी पाप है ?

तब तो बोले उतावला,
हिंसा मेट्यां तो होवे धर्म रे जीवा।
तो वीर मेटण किम ना गया,
महा हिंसा रा घोर कर्म रे जीवा ।।मो. 6।।

चवदे पूर्व चार ज्ञान ना,
गोतमादिक लब्धिधार रे जीवा।
यां ने हिंसा मेटण मेल्या नहीं,
कोई कारण कहो निरधार रे जीवा ।।मो. 7।

कोणिक भक्तो वीर नो,
चेड़ो बारा व्रत नो धार रे जीवा।
उपदेश देता वीर जाय ने,
दोनों हिंसा देता टार रे जीवा ।।मो. 8।।

भावार्थ: तब तो वे उत्तर देते हैं कि 'हिंसा मिटाने मे धर्म होता है, पाप नही।' तब उन लोगों से पूछना चाहिए कि 'चेड़ा और कोणिक के सग्राम में होने वाली महाहिंसा को मिटाने के लिए वीर भगवान् स्वय क्यों नही गये और चार ज्ञान एवं चौदह पूर्व के धारक तथा अनेक लब्धियों के धारक गौतमस्वामी आदि साधुओं को क्यों नही भेजा ? कोणिक राजा भगवान् का परम भक्त था और चेड़ा राजा भी बारह व्रतधारी श्रावक था। यदि इन्हे उपदेश दिया जाता तो ये युद्ध में होने वाली महा हिंसा को अवश्य टाल देते। फिर उन्हें

समझाने के लिए वीर भगवान् स्वयं नही गये और साधुओ को भी नही भेजा इसमें क्या कारण था ? ।।६–८।।

तब तो बोले प धरा,

'होणहार न मेटी जाय रे जीवा ।

ज्ञान में देख्यां थीं ना गया,

बलि साधु न मेल्या नाय' रे जीवा ।।मो. 9।।

भावार्थ:—तब तो वे लोग इसका सीधा उत्तर देते हैं कि 'भगवान् ने अपने ज्ञान से इस वात को जान लिया था कि यह अवश्य होनहार (भवितव्यता) है ।' 'होनहार' टाली नही जा सकती । इसीलिए वीर भगवान् स्वय नही गये और साधुओं को भी नही भेजा ।।६।।

तो इमहिज समझो भाव थी,

संग्राम मेटण में धर्म रे जीवा ।

न्याय रीत समझावियां,

शान्ति हुए न बन्धे कर्म रे जीवा ।।मो. 10।।

भावार्थ: तव ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जिस प्रकार हिंसा मिटाने में धर्म है उसी प्रकार सग्राम (युद्ध) मिटाने मे भी धर्म है । युद्ध करने वाले व्यक्तियो को न्याय वात समझा देने पर दोनो तरफ शान्ति हो जाती है और किसी के कर्मबन्ध नही होता ।।१०।।

सब जीव खेमङ्कर वीरजी,

सुयगडाङ्ग मांय देख रे जीवा ।

भय मेटे सब जीव रा,

अभयंकर विरुद विशेख रे जीवा ।।मो. 11।।

भगवन्त विचरे देश में,

सौ-सौ कोसां रे मांय रे जीवा ।

मनुष्यां रे उपद्रव ना रहे,
पिण होणी तो मिटे नांय रे जीवा ॥मो. 12॥

तिम चेड़ा कोणिक संग्राम मे,
न्याय मिटायां मोटो धर्म रे जीवा ।
मिटतो न देख्यो ज्ञान में,
प्रभु ना गया समझो मर्म रे जीवा ॥मो. 13॥

भावार्थः—सूयगडांग सूत्र मे वीर भगवान् को 'क्षेमकर और अभयङ्कर' कहा है । सब जीवो के क्षेम यानि शान्ति के करने वाले होने से वीर भगवान् 'क्षेमङ्कर' कहे जाते हैं और सब जीवों के भय को मिटाने वाले होने के कारण अभयङ्कर' कहे जाते हैं । जिस देश मे भगवान् विचरते है वहा सौ-सौ कोस तक किसी तरह का उपद्रव नही होता परन्तु होनहार (भवितव्यता) तो वहा भी नही टलती । 'होनहार' तो होकर ही रहती है ।

न्याय बात समझा कर चेड़ा और कोणिक के संग्राम को मिटा देना महान् धर्म का कार्य था किन्तु भगवान् ने अपने ज्ञान से जान लिया था कि यह अवश्यम्भावी (होनहार) है इसीलिए आप स्वयं भी उन्हे समझाने के लिए नही गये और साधुओं को भी नही भेजा ॥११–१३॥

अनुकम्पा उठायवा,
मिथ्या मांड्यो थां परपञ्च रे जीवा ।
चतुर विचारे न्याय ने,
त्याग देवे मिथ्या खंच रे जीवा ।
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥14॥

भावार्थः–अनुकम्पाद्वेषियों ने अनुकम्पा को उठा देने के लिए यह सब मिथ्या प्रपञ्च रचा है और इसीलिए वे संग्राम मिटाने में पाप की स्थापना करते हैं किन्तु चतुर पुरुष को चाहिए कि न्याय-बात

को समझकर मिथ्यापक्ष को छोड दे । मिथ्यापक्ष को छोड देने से ही आत्मा का कल्याण होता है ।।१४।

९–अधिकार-'समुद्र ने चोर पर अनुकम्पा नहीं की' ऐसा कहने वालों को उत्तर

संक्षिप्त कथा

—: ❀ ❀ :—

चम्पा नाम की नगरी मे पालित नाम का एक व्यापारी रहता था । वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का श्रावक था । जीवाजीवादि नौ तत्त्वो का ज्ञाता और निर्ग्रन्थ-प्रवचनो मे कोविद (पण्डित) था । एक बार व्यापार करने के लिए वह जहाज द्वारा पिहुण्ड नगर मे आया और वहा उसने अपना व्यापार शुरू किया । न्याय-नीति, सच्चाई और ईमानदारी के साथ व्यापार करने से उसका व्यापार बहुत चमक उठा । सारे शहर मे उसका यश और कीर्ति फैल गई । पिहुण्ड नगर मे रहते हुए उसे कई वर्ष बीत गये । उसके गुणो से आकृष्ट होकर पिहुण्ड नगरनिवासी एक महाजन ने रूप-लावण्यसम्पन्न अपनी कन्या का विवाह पालित के साथ कर दिया । अब वे दोनों दम्पति आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे । कुछ समय पश्चात् वह कन्या गर्भवती हुई । अपनी गर्भवती पत्नी को साथ लेकर पालित श्रावक जहाज द्वारा अपने घर चम्पा नगरी आने के लिए रवाना हुआ । आसन्नप्रसवा होने से पालित की पत्नी ने समुद्र मे ही पुत्र को जन्म दिया । समुद्र मे पैदा होने के कारण उस बालक का नाम समुद्रपाल रक्खा गया । सबको प्रिय लगने वाला सौम्य और कान्तिधारी बालक सुखपूर्वक बढने लगा । योग्य वय होने पर उसे शिक्षागुरु के पास भेजा गया । विलक्षण बुद्धि होने के कारण शीघ्र ही वह बहत्तर कलाओ तथा नीतिशास्त्र मे पारगत हो गया । जब वह यौवन-वय को प्राप्त हुआ तब उसके पिता ने अप्सरा जैसी सुन्दर एक महारूपवती कन्या

के साथ उसका विवाह कर दिया। विवाह हो जाने के पश्चात् समुद्रपाल उस कन्या के साथ रमणीय महल में रहने लगा और दोगुन्दक देव के समान कामभोग भोगता हुआ सुखपूर्वक समय बिताने लगा।

एक दिन वह अपने महल की खिडकी मे बैठा हुआ नगर-चर्या देख रहा था। इतने ही में फासी पर चढाने के लिए वध्य-भूमि की तरफ मृत्युदण्ड के चिन्ह सहित ले जाये जाते हुए एक चोर पर उसकी दृष्टि पड़ी। उस चोर को देखकर उसके हृदय मे कई तरह के विचार उठने लगे। वह सोचने लगा कि अशुभ कर्मों के कैसे कड़वे फल भोगने पड़ते हैं। इस चोर के अशुभ कर्मों का उदय है इसी से इसको यह कडुआ फल भोगना पड़ रहा है। यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हू। 'जो जैसा करता है वह वैसा भोगता है' यह अटल सिद्धान्त समुद्रपाल के प्रत्येक अङ्ग में व्याप्त हो गया। कर्मों के इस अटल नियम ने उसके हृदय को कपा दिया। वह विचारने लगा कि मेरे लिए इन भोगजन्य सुखो के कैसे दुखदायी परिणाम होगे? मैं क्या कर रहा हूं? यहां आने का मेरा क्या कारण है? इत्यादि अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क उसके मन में पैदा होने लगे। इस प्रकार गहरे चिन्तन के परिणाम-स्वरूप उसको जातिस्मरण ज्ञान पैदा हो गया जिससे वह अपने पूर्वभव को देखने लगा। परिणामस्वरूप उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। अनेक वर्षों तक संयम का पालन कर वे मोक्ष को प्राप्त हो गये।

❀ ढाल ❀
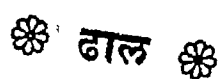
पालित श्रावक गुणमणि,
प्रवचने पण्डित जाण रे जीवा।
समुद्रपाल सुत तेहनो,
महल मांहे बैठो सुखमाण रे जीवा।
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥1॥

फांसी योग एक पुरुष ने,
फांसी रो पेरायो वेष रे जीवा ।
तिण ने मारण ले जावतां,
समुद्रपाल देख्यो विशेष रे जीवा ।।मो. 2।।

करुणा उपजी अति घणी,
अहो-अहो कर्मविपाक रे जीवा ।
वैरागे संजम लियो,
मोक्ष गया करम कर खाक रे जीवा ।।मो. 3।।

भावार्थः—चम्पा नगरी में पालित नाम का एक गुणवान् श्रावक था । वह प्रवचन मे पण्डित था । उसके पुत्र का नाम समुद्रपाल था । एक समय महल में बैठा हुआ वह समुद्रपाल नगरचर्या देख रहा इतने में उनकी दृष्टि एक चोर पर पडी जो वध्य था और फांसी के योग्य वेष पहनाकर राजपुरुषो द्वारा वध्यभूमि की ओर ले जाया जा रहा था । उसे देखकर समुद्रपाल के हृदय में अत्यन्त करुणा उत्पन्न और वे कर्मों के कटु विपाक का विचार करने लगे । तत्वस्वरूप उन्हे वैराग्य उत्पन्न हो गया । दीक्षा अङ्गीकार कर वे मोक्ष मे गये ।।१–३।।

(कहे) "अनुकम्पा न आणी चोर री"
एवी कुमति काढे वाय रे जीवा ।
अनुकम्पा रो धर्म उथापवा,
भोलां ने दिया भरमाय रे जीवा ।।मो, 4।।

भावार्थ:—अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक अज्ञानी लोक कहते हैं कि 'चोर को देखकर समुद्रपाल ने उस पर अनुकम्पा नही की' इस प्रकार कहकर वे अनुकम्पा-धर्म को उठाना चाहते हैं और भोले लोगों को भ्रम में डालते हैं ।।४।।

दुःखी देख कोई जीव ने,
करुणा उपजे मन मांय रे जीवा ।

कोमल भाव करुणा कही,
दु:ख मेटण भाव कहाय रे जीवा ।।मो. 5।।

शक्ति अवसर पाय ने,
पर जीवां रा मेटे दु:ख रे जीवा ।
सफल करे निज भाव ने,
करुणा रे हो सन्मुख रे जीवा ।।मो. 6।।

जो शक्ति अवसर ना हुवे,
अनुकम्पा रहे मन माय रे जीवा ।
ते भावे करुणा जिन कही
व्यवहारे न्याय दिखाय रे जीवा ।।मो. 7।।

भावार्थ.—किसी दु:खी जीव को देखकर उसके दु:ख मिटाने के लिए हृदय मे जो करुणा के भाव उत्पन्न होते हैं वह भाव करुणा कहलाती है । शक्ति और अनुकूल अवसर होने पर जब दु:खी प्राणी का दु ख दूर किया जाता है तब वह व्यवहार में करुणा कही जाती है किन्तु यदि शक्ति और अनुकूल अवसर न हो तब अनुकम्पा एवं करुणा हृदय मे ही रहती है वह भावकरुणा है और व्यवहार में दृष्टिगोचर नही होती ।।५-७।।

जिम जीरण भाई भावना,
वीर रो नहीं मिलियो जोग रे जीवा ।
तिरियो निर्मल भाव थी,
व्यवहारे रयो वियोग रे जीवा ।।मो. 8।।

तिम मारता पुरुष देखे ने,
करुणा उपजी मन मांय रे जीवा ।
सरूप जाण संसार नो,
समुद्रपाल नी धजी काय रे जीवा ।।मो. 9।।

चोर अपराधी राय नो,

ते राख्यो कहो किम जाय रे जीवा ।

व्यवहार नहीं यह जगत् नो,

राखण री शक्ति नाय रे जीवा ॥मो.10॥

तेहथी छोड़ाई ना शक्या,

पिण छोड्यो संसार रे जीवा ।

भावां करुणा आदरी,

तेथी पाया भव नो पार रे जीवा ॥मो. 11 ।

भावार्थः—जिस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पारणे के दिन जीरण सेठ ने भावना भाई थी । यद्यपि वीर भगवान् का योग नही मिला था और भगवान् का पारणा जीरण सेठ के घर नही हुआ था तथापि भावना की प्रबलता के कारण जीरण सेठ तिर गया अर्थात् वह संसार–समुद्र के किनारे तक पहुंच गया । इसी प्रकार फासी पर ले जाये जाते हुए चोर पुरुष को देखकर समुद्रपाल के मन मे अत्यन्त करुणा उत्पन्न हुई । अशुभ कर्मों के कठोर एवं कडवे फल को तथा संसार के स्वरूप को जानकर समुद्रपाल का शरीर कपित हो गया किन्तु वह चोर तो राजा का अपराधी था उसे कैसे बचाया जा सकता था । लौकिक व्यवहार न होने से तथा उसको बचाने की शक्ति न होने से समुद्रपाल उस चोर को न बचा सके । उसे दखकर कर्मों के कठोर एवं कडवे परिणाम को जानकर समुद्रपाल के हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया । ससार का त्याग कर उन्होंने दीक्षा अङ्गीकार कर ली और वे मोक्ष को प्राप्त हो गये ॥८–११॥

समुद्रपाल रो नाम ले,

करुणा उठावण काज रे जीवा ।

ते वैरी अनुकम्पा तणा,

झूठ बोलण री नहीं लाज रे जीवा ॥मो. 12॥

भावार्थ —'समुद्रपाल ने चोर पर अनुकम्पा नही की' ऐसा

कहने वाले अनुकम्पा के द्वेषी हैं, उन्हे मिथ्या भाषण करते हुए जरा भी शर्म नही आती ॥१२॥

भवजींवां ! हिरदा में धारजो,
निश्चय करुणा रा भाव रे जीवा ।
शक्ति सारू सफलो करे,
जब मिले व्यवहार रो दाव रे जीवा ॥मो. 13॥

भावार्थ:—ज्ञानी पुरुष कहते है कि हे भव्य जीवो ! करुणा के भावो को सदा हृदय मे धारण करो और शक्ति और समयानुसार व्यवहार में अनुकम्पा करके दु.खी जीवो के दु:खो को दूर कर उनके आर्त्त रौद्र ध्यान को मिटाओ जिससे आत्मा का कल्याण हो ॥१३॥

साधु श्रावक दोनों तणा,
करुणा रा भाव सुहाय रे जीवा ।
परवरती जुई जुई,
तुमे जुवो सूत्र रो न्याय रे जीवा ॥मो. 14॥

भावार्थ:—साधु और श्रावक दोनो में करुणा के भाव (भाव अनुकम्पा) एक सरीखे होते हैं किन्तु शास्त्र मे दोनो की व्यवहारिक प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न बतलाई गई है ॥१४॥

जिनकल्पी थीवरकल्पी नी,
प्रवृत्ति एक न होय रे जीवा ।
एक करयां प्राछित हुवे,
दूजे नहीं करवा थी जोय रे जीवा ॥मो. 15॥

तिम श्रावक साधु तणी,
भिन्न-भिन्न छे मर्याद रे जीवा ।
गेहीं न करे पापी हुवे,
ते ही करवो न कल्पे साध रे जीवा ॥मो. 16॥

भूखा राखे भोजन ना दिये,
श्रावक होवे दयाहीण रे जीवा ।
साधु आहार न देवे गृहस्थ ने,
ते तो कल्प राखण परवीण रे जीवा ।।मो. 17।।

भावार्थः—जिस प्रकार जिनकल्पी और स्थविरकल्पी साधुओं की प्रवृत्ति एक नही है किन्तु उन दोनों की प्रवृत्ति एवं कल्प भिन्न-भिन्न है । कई एक कार्य ऐसे हैं जिन्हे करने से जिनकल्पी साधु को प्रायश्चित्त आता है और उन्ही कार्यों को न करने से स्थविरकल्पी साधु को प्रायश्चित्त आता है । जैसे कि किसी को दोक्षा न देना, शिष्य न बनाना, आहार-पानी आदि लाकर दूसरे साधु की वैयावच्च न करना इत्यादि जिनकल्पी साधु के कल्प हैं । यदि वह इन उपरोक्त कार्यों को करे तो उसे प्रायश्चित्त आता है किन्तु इन सब कार्यों को करना स्थविरकल्पी साधु का कल्प है । वह योग्य दीक्षार्थी को दीक्षा भी देता है, आहार-पानी आदि लाकर अपने संभोगी साधुओ की वैयावच्च भी करता है । यदि शक्ति अनुसार वह इन वैयावच्च कार्यों को न करे तो उसे प्रायश्चित्त आता है । कहने का अभिप्राय यह है कि जिनकल्पी और स्थविरकल्पी का कल्प भिन्न-भिन्न है उसी प्रकार साधु और श्रावक दोनो के कर्त्तव्य भी भिन्न हैं । कई एक कार्य ऐसे हैं जिन्हे न करने से गृहस्थ को पाप लगता है किन्तु उन कार्यों को करना साधु का कल्प नही है । जैसे कि अपने आश्रित मनुष्य और पशु आदि को श्रावक यदि समय पर आहार-पानी न दे और उन्हें रक्खे तो उसे पहले अहिंसाव्रत का 'भत्तपाण वोच्छेए नामक अतिचार लगता है किन्तु गृहस्थ को आहार-पानी देना साधु का कल्प नहीं है इसलिए अपने कल्प की रक्षा के लिए साधु गृहस्थ को आहार-पानी नही देते हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि साधु और श्रावक दोनों की भावअनुकम्पा एक सरीखी है किन्तु दोनो की व्यवहारिक प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न है ।।१५-१७।।

'साधु श्रावक दोनों तणी,
अनुकम्पा प्रवृत्ति एक' रे जीवा ।

एवो करे प्ररूपणा,
प्रश्न पूछ्यां पलटता देख रे जीवा ।।मो. 18।।

साधु उपधि में उलझिया,
उंदरादिक जीव जाण रे जीवा ।
साधु अनुकम्पा थी छोड़ दे,
नहीं छोड्यां थीं होवे हाण रे जीव ।।मो. 19।।

गेही रे रस्सी में उलझिया,
गायादिक प्राणी जाण रे जीवा ।
गेही दया से छोड़ दे,
नहीं छोड्यां थी होवे हाण रे जीवा ।।मो. 20।।

धर्म बतावे साध ने,
गेही ने बतावे पाप रे जीवा ।
फर्क पड्यो किण कारणे,
खोटी श्रद्धा दीखे साफ रे जीवा ।।मो. 21।।

भावार्थ.—'साधु और श्रावक दोनो की अनुकम्पाविषयक प्रवृत्ति एक सरीखी है' यदि कोई ऐसी प्ररूपणा करता है तो यह अयुक्त है। उसकी प्ररूपणा उसके कथन से ही खण्डित हो जाती है क्योकि प्रश्न पूछने पर वह स्वय अपनी प्ररूपणा पर स्थिर नही रहता किन्तु पलट जाता है। जैसे कि साधु की उपधि में अर्थात् साधु के वस्त्र-पात्र आदि में कोई चूहा आदि प्राणी उलझ जाय तो उस पर अनुकम्पा लाकर साधु उसे छोड़ देता है क्योकि नही छोड़ने से अनर्थ होने की सम्भावना है। इसी तरह किसी गृहस्थ की रस्सी में कोई गाय, भैस आदि प्राणी उलझ जाय तो उस पर लाकर गृहस्थ उसे छोड़ देता है, क्योकि नही छोड़ने से अनर्थ होने की सम्भावना है।

यहां पर साधु और श्रावक दोनो ने एक सरीखी प्रवृत्ति की है, एक सरीखी व्यवहारिक अनुकम्पा की है अर्थात् दोनो ने अपनी

उपाधि में उलझ कर दुःख पाते हुए एव मरते हुए प्राणी की प्राण-रक्षा की है । दोनो को समान फल होना चाहिए किन्तु वे लोग इस उपरोक्त कार्य से साधु को तो धर्म होना कहते है और श्रावक को पाप होना कहते हैं । अब उनसे पूछना चाहिए कि "तुम लोग साधु और श्रावक दोनो की व्यवहारिक अनुकम्पा विषयक प्रवृत्ति एक सरीखी कह रहे थे अब इतना फर्क कैसे कहते हो कि दोनो की एक समान प्रवृत्ति होने पर भी साधु को तो धर्म और श्रावक को पाप बता रहे हो ।" इस प्रकार तुम लोग अपनी मान्यता का अपने मुख से ही खण्डन करते हो । अत. तुम्हारी मान्यता प्रत्यक्ष मिथ्या है ॥१८-२१॥

"साधु श्रावक री एक रीत छै"
मूंढा थी बोलो एम रे जीवा ।
दोनों सरीखा काम मे,
तुमे फर्क बताओ केम रे जीवा ॥मो. 22॥

जीव मरे साधु योग थी,
गृहस्थ बतायां धर्म रे जीवा ।
गेहो–गेही ने जीव बताय दे
तिण में तो बताओ अधर्म रे जीवा ॥मो. 23॥

जीव बच्या दोनो जगा,
दोनो रा टलिया पाप रे जीवा ।
इण दोनों सरीखा काम मे,
उलट-पलट करे खोटी थाप रे जीवा ॥24॥

धर्म बतावे एक में,
दूजा में केवे पाप रे जीवा ।
यो कुटिल पन्थ कुगुरां तणो,
खोटी श्रद्धा दीसे साफ रे जीवा ॥मो. 25॥

भावार्थः—उन लोगो से पूछना चाहिए कि 'तुम लोग कहते

हो कि साधु और श्रावक दोनो की रीति एक सरीखी है फिर दोनों के एक सरीखे कार्य में तुम फर्क क्यो वताते हो ? जैसे कि किसी साधु के पैर नीचे आकर जीव मर रहा है, यदि श्रावक उसे वता दे तो इस कार्य में धर्म होता है ऐसा तुम भी मानते हो किन्तु यदि किसी श्रावक के पैर नीचे आकर कोई जीव मर रहा है उसे यदि कोई श्रावक वता दे तो इसमे पाप होता है ऐसा तुम कहते हो। यह तुम्हारा कैसा बेढङ्गा न्याय है ? दोनों जगह जीव की रक्षा हुई है अर्थात् साधु के पैर के नीचे आकर मरता हुआ जीव भी वचाया गया है और गृहस्थ के पैर के नीचे आकर मरता हुआ जीव भी वचाया गया है। इन दोनों जगहो पर प्राणी की रक्षा हुई है और ये दोनों कार्य एक समान हैं फिर तुम लोग एक में धर्म और दूसरे में पाप कहते हो इसका क्या कारण है ? यह तुम्हारा कुटिल पन्थ एक भ्रमजाल है। जिसमे फसकर तुम अपनी आत्मा का अध:पतन कर रहे हो और भोले प्राणियो को भी इसमे फसा कर उन्हे भी विवेक-भ्रष्ट करते हो और अपने साथ ही अनन्त ससार मे भटकाते हो ॥२२-२५॥

कुगुरु कपट ओलखायवा,
जोड़ करी शुद्ध न्याय रे जीवा।
ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी,
उगणीसे छियासी मांय रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥26॥

भावार्थ—ग्रन्थकर्त्ता कहते है कि इन कुगुरुओ के कपट को ओलखाने के लिए एवं इनके भ्रमजाल को तोडने के लिए शुद्ध न्याय-पूर्वक यह जोड़ सवत् १९८६ के ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को की गई है ॥२६॥

॥ इति तीसरी ढाल समाप्त ॥

❀ दोहा ❀

दुखिया देखी तावड़े, जो कोई मेले छाय ।
पाप बतावे तेहने, या मन्दमति नी वाय ।।1।।

भावार्थ:—यदि कोई प्राणी धूप मे पडा हुआ दुःख पा रहा हो उसे कोई दयावान् पुरुष उठाकर छाया मे रख दे इस अनुकम्पा के कार्य मे जो पाप बतावे उसे मन्दबुद्धि अज्ञानी समझना चाहिए ।।१

हणे हणावे भल जाणवे, तीनों करणा पाप ।
तिम रक्षा मांहीं कहे, खोटी श्रद्धा साफ ।।2।।

भावार्थ:—जिस प्रकार जीव को मारना, मरवाना और मारने वाले की अनुमोदना करना पाप का कार्य है उसी प्रकार जो लोग जीव की रक्षा करना, रक्षा कराना और रक्षा करने वाले की अनुमोदना करने मे पाप कहते हैं वे मिथ्यावादी अज्ञानी हैं उनकी यह श्रद्धा मिथ्या है ।।२।।

कर्म उदे थी जीवड़ा, तीव्र वेदना पाय ।
आरत-रुद्र ध्यान थी, माठां कर्म बंधाय ।।3।।

कर्मबन्ध टालन तणो, ज्ञानी करे उपाय ।
उपदेशे अरु साज थीं, देवे कष्ट छुड़ाय ।4।।

साधु कल्प थी साधजी, गृहस्थ कल्प थी गृहस्थ ।
तीव्र आरत मिटाय ने, संतोषी करे स्वस्थ ।।5।।

भावार्थ·—पूर्वकृत अशुभ कर्मों के उदय से जीव इस ससार में तीव्र वेदना भोगते है और उस समय आर्त्त रौद्र ध्यान करते हुए जीव फिर अशुभ कर्मों का बन्ध करते हैं । ऐसे समय मे ज्ञानी पुरुष साधु मुनिराज अपने कल्प के अनुसार उपदेशादि द्वारा उन दुःखी

जीवों के आर्त्त रौद्र ध्यान मिटाने का प्रयत्न करते हैं और गृहस्थ अपनी शक्ति और अवसर के अनुसार उन्हे साज (सहायता) देकर उनके आर्त्त रौद्र ध्यान मिटाने का प्रयत्न करते है ॥३-५॥

दु:ख मेटण में मन्दमति, पापबन्ध बतलाय ।
असंजती रो नाम ले, खोटा चोज लगाय ॥6॥

मारण वालो असंजती असंजती, मारयो जाय ।
एक देवे महावेदना, एक दुखे घबराय ॥7॥

आरत रुद्दर ध्यान थीं, दोनों बांधे पाप ।
पाप टलावे बेहु ना, ते ज्ञानी मन साफ ॥8॥

भावार्थः—कितनेक अज्ञानी लोग कुहेतु लगाकर कहते हैं कि दुःखी जीव के दुःख को दूर करने मे पापबन्ध होता है क्योकि वह असयति है किन्तु उनका यह कथन अज्ञानतापूर्ण है । जो प्राणियों को दुःखी करता है एवं उन्हे मारता है वह स्वय भी असयति है और जो मारा जाता है वह भी असयति है उनमे से एक महावेदना देता है और दूसरा दुःख मे घबराता है । इस प्रकार आर्त्त रौद्र ध्यान से दोनों पापकर्म का बंध करते हैं किन्तु ज्ञानी पुरुष उन दोनो के पापबन्ध को टाल देते हैं अर्थात् मारने वाले हिंसक को हिंसा के पाप से बचा देते है और मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा कर उसे आर्त्त रौद्र ध्यान से होने वाले कर्मबन्ध से बचा देते है । इस प्रकार ज्ञानी पुरुष का मन तो साफ है अर्थात् उसके हृदय मे किसी के प्रति राग द्वेष नही है । वह तो दोनो हित चाहता है और दोनों का आर्त्त रौद्र ध्यान मिटा कर दोनो को पापबन्ध से बचाता है । ६—८॥

(कहे) 'हिंसक पाप छुड़ाय दां, मरे तो भुगतो कर्म ।
दुःख मेटे कोई तेहनो, म्हें नहीं मानां धर्म ॥9॥

भावार्थः—कितनेक अज्ञानी लोग कहते हैं कि 'हम तो हिंसक के पापकर्म छुड़ा देते हैं किन्तु जो मारा जाता है उसकी प्राणरक्षा हम नही करते । वह तो अपने कर्म भुगतता है । यदि कोई हिंसक के हाथ

से मारे जाने वाले प्राणी के दुःख को दूर कर उसकी प्राणरक्षा करता है तो हम इसे धर्म नही समझते ।' ऐसा कहने वाले अनुकम्पा के द्वेषी अज्ञानी हैं ।।९।।

या श्रद्धा कुगुरु तणी, मिथ्या जाणो साफ ।
सत युक्ति माने नहीं, उदय मोह रो पाप ।।10।।

भावार्थः—यह उपरोक्त श्रद्धा कुगुरुओं की है । इसे मिथ्या समझना चाहिए । उन कुगुरुओ के मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय है इसीलिए वे सत्युक्ति को भी नही मानते हैं ।।१०।।

जीव बचावा ऊपरे, खोटा देवे न्याय ।
युक्ति थी खण्डन किया, मिथ्यातम मिट जाय ।।11।।

भावार्थ.—जो लोग जीवो की रक्षा करने मे पाप बतावे हैं और इसके लिए कुयुक्तिया देते हैं । उन कुयुक्तियो का इस ग्रन्थ में सत्य एव न्यायपूर्ण युक्तियो द्वारा खण्डन किया गया है ताकि मिथ्यात्व-रूप अन्धकार का नाश होकर सत्यधर्म का प्रकाश हो और मिथ्यामत में फसे हुए लोगों का भी उद्धार हो ।।११।।

-: चौथी ढाल :-

—:※:—

(कहे) 'नाडो भरियो हो डेंडक माछला,
        तिण पर भैंस्यो आयो चलाय हो भविकजन ।
तिण ने हंकाल्यां दुःख थी मरे,
        नही हंकाल्यां मरे तसकाय हो भविकजन ॥
                करो परीक्षा सतधर्म री ।1॥

धर्मी छोड़ावे केहने,
        कर्म करी दुःख पाय हो भविकजन ।
लाय लागी संसार मे,
        बीच पड़ियां पाप बंधाय हो भविकजन ॥2॥

भावार्थः—अनुकम्पा के द्वेषी वे लोग अनुकम्पा को उठाने के लिए एक दृष्टान्त देते हैं:—

एक नाडा (तलैया—छोटा तालाव) है जिसमे वहुत से मेंढक और मछलियां हैं । उस तलैया मे पानी पीने के लिए एक भैंस आई। वहां पर खडा हुआ एक धर्मी पुरुष देख रहा था । अब वह क्या करे ? अगर वह भैंस को वहा से हकाल देता है तो वह प्यास से मरती है और यदि नही हंकालता है तो तलैया का पानी पी जाने पर उसमे रहे हुए मेढक और मछलिया तड़फ कर मरती हैं । अब वह धर्मी पुरुष क्या करे ? किसकी रक्षा करे ? ऐसी अवस्था मे उसे मध्यस्थ रहना चाहिए, कुछ भी न करना चाहिए । ससार मे कर्मो की लाय लगी हुई है । सब प्राणी अपने कर्मानुसार दु ख पा रहे हैं । इसीलिए उनके वीच मे न पड़ना चाहिए । वीच में पड़ने से पापकर्म का वन्ध होता है ॥१-२॥

इस भोलां ने भरमायवा,
        खोटा लगाय न्याय हो भविकजन ।

ज्ञानी कहे हिवे सांभलो,

इण भरम ने देवां मिटाय हो भविकजन ।।क. 3।।

भावार्थ.—इस प्रकार कुगुरु अपने मिथ्यापक्ष की स्थापना करके अनुकम्पा की घात करते हैं और कुयुक्तियो द्वारा भोले प्राणियों को भ्रम मे डालते है । उन्होने मछली और मेढक वाली तलैया में जाती हुई भैंस का दृष्टान्त देकर जो भ्रम पैदा किया है अब उसका निराकरण किया जाता है ।३।।

भैंस्या ने जातां देख ने,

दयावन्त दया लाय हो भविकजन ।

छाछ पाय संतोषियो,

तिरखा दीवी मिटाय हो भविकजन ।।क. 4।।

हिंसा न लागी भैंस्या तणी,

जीवों रीं टल गई घात हो भविकजन ।

दया शान्ति दोयां तणी,

धर्म तणी या वात हो भविकजन ।।क. 5।।

भावार्थ:—मछली मेढक वाली तलैया पर जाती हुई भैंस को देखकर पास मे खड़े हुए दयावान् पुरुष ने भैंस को छाछ पिलादी । छाछ पी लेने से भैंस की तृष्णा शान्त हो गई । मछली और मेढकों के मरने से जो हिंसा भैंस को लगती थी, अब भैंस उस हिंसा से बच गई और उन जीवो की प्राणरक्षा हो गई । इस प्रकार दोनों तरफ शान्ति हो गई । यह धर्म का कार्य हुआ । इसमे किसी को भी किसी तरह का पाप नही लगा ।।४–५।।

जो पाप बताओ थे एह में,

तो खोटो थारो पक्षपात हो भविकजन ।

नाडा भैंसा रो नाम ले,

थे करुणा री कर रया घात हो भविकजन ।।क. 6।।

भावार्थ —अब उन लोगो से पूछना चाहिए कि इस उपरोक्त कार्य मे धर्म हुआ या पाप ? यदि वे इसमे पाप बतावे तो समझना चाहिए कि यह उनका पक्ष मिथ्या है । उन्हे तो अनुकम्पा से ही द्वेष है । तलैया और भैंस का दृष्टान्त देकर वे अनुकम्पा की घात करते हैं । न्याययुक्त सत्य बात को समझने की उनकी इच्छा नही है ।।६।।

(कहे) 'साधु छाछ पावे नहीं,
तिण थी बतावां पाप हो भविकजन ।
जो इणमे साधु धर्म मानता,
तो झटपट करता आप हो' भविकजन ।।क. 7।।

भावार्थ:—उन लोगो का कथन है कि साधु इस कार्य को नही करते अर्थात् साधु उस भैंस को छाछ नही पिलाते इसलिए हम इस कार्य मे पाप बतलाते है क्योकि यदि यह कार्य धर्म का होता तो साधु स्वय इस कार्य करते परन्तु साधु इस कार्य को नहीं करते इसलिए हम इसे पाप का कार्य बतलाते हैं ।।७।।

(उत्तर) साधु गेही रा कल्प रो,
ज्यांरा घट मे घोर अंधार हो भविकजन ।
तेथी साधु रो नाम ले,
दया छुड़ावे धिक्कार हो भविकजन ।।क. 8।।

भावार्थ:—'जो कार्य साधु नही करता वह कार्य गृहस्थ को भी न करना चाहिए तथा जो कार्य साधु नही करता वह कार्य करने से गृहस्थ को पाप लगा है' ऐसी प्ररूपणा करने वालो को साधु और गृहस्थ के कल्प का ज्ञान नही है इसीलिए वे साधु का नाम लेकर गृहस्थ की दया छुडाते है । साधुका कल्प भिन्न है और गृहस्थ का कल्प भिन्न है । कई एक धर्म के ऐसे कार्य है जिनको अपने कल्प की रक्षा करने के लिए साधु नही कर सकता किन्तु गृहस्थ उन कार्यों को करके धर्मोपार्जन कर सकता है ।।८।।

जिनकल्पी आदरता त्यागियो,
थीवरकल्पी ने देणो आहार हो भविकजन ।

ते परिचय टालण कारणे,
यो कल्पतणो व्यवहार हो भविकजन ।।क. 9।।

थीवरकल्पी दीक्षा समय,
गृहस्थ ने देणो आहार भविकजन ।
त्याग्यो परिचय टालवा,
यो मुनि रो आचार हो भविकजन ।।क. 10।।

तेथी साधु न दे गेही ने,
ते कल्प रो मोटो काम हो भविकजन ।
गेही देवे पाप छुड़ायवा,
ते कल्पे शुद्ध परिणाम हो भविकजन ।।क. 11।।

भावार्थः—अपने-अपने कल्प की मर्यादा भिन्न-भिन्न होती है जैसे कि जिनकल्प को स्वीकार करते समय जिनकल्पी मुनि परिचय-निवारण के लिए स्थबिरकल्पी मुनि को आहार देने का त्याग कर देते है और इसीलिए जिनकल्पी मुनि आहार लाकर स्थविरकल्पी मुनि को नही देते, यह जिनकल्पी मुनि का कल्प है परन्तु इससे यह सिद्धान्त स्थापित नही किया जा सकता कि स्थविरकल्पी मुनि को आहार देना पाप कार्य है । इसी तरह दीक्षा लेते समय स्थविरकल्पी मुनि परिचय-निवारण के लिए गृहस्थ को आहार देने का त्याग कर देते हैं । इसलिए स्थविरकल्पी मुनि गृहस्थ को आहारादि नही देते । यह स्थ-विरकल्पी मुनि का कल्प है । इससे यह सिद्धान्त स्थापित नही किया जा सकता कि गृहस्थ को आहार देना पाप का कार्य है । मुनि अपने कल्प की मर्यादा मे वधा हुआ है, उस कल्प की रक्षा करना उनका प्रथम कर्त्तव्य है किन्तु जीवरक्षा के शुद्ध परिणामो से प्रेरित होकर गृहस्थ आहारादि दे सकता है इससे हिंसक हिंसा के पाप से बच जाता है और मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा हो जाती है । इस प्रकार दोनो जीवो को शान्तिलाभ प्राप्त होता है । इसका कार्य मे पाप वताना अज्ञान का ही परिणाम है ।।९–११।।

इम सुलिया धान रो नाम ले,

लटां इल्यां रो न्याय हो भविकजन ।
काचा पाणी ने कन्द रो,
तिम उकरड़ी मुख लाय हो भविकजन ॥क. 12॥

भावार्थः—जिस प्रकार वे लोग मछली और मेंढकों वाली तलैया का दृष्टान्त देते है उसी तरह लट और इल्यों से युक्त सूले हुए (घुन लगे हुए) धान का, सचित्त पानी का, कन्दमूल और उकरड़ी आदि का दृष्टान्त देते हैं उनका सबका समाधान जिस तरह तलैया में जाती हुई भैंस के दृष्टान्त का समाधान किया गया है उसी प्रकार कर देना चाहिए । यथा:—

इल्यां लटां सुल्या धान पे,
एक वकरी खावण जाय हो भविकजन ।
दयावन्त भुंगड़ा खवाय ने,
लिया दोनों ने वचाय हो भविकजन ॥क. 13॥

हिंसा टली इल्यां तणी,
वकरी रो मिटचो सन्ताप हो भविकजन ।
थांरा श्रद्धा थी कहो तेने,
धर्म हुवो के पाप हो भविकजन ॥क. 14॥

भावार्थः—जैसे कि एक वकरी इल्यों और लटों से युक्त सूले हुए धान को खाने के लिए जा रही है । वहा पास ही में एक दयावान् पुरुष खड़ा था उसने उस वकरी को भूंगडे (भुने हुए चने) खिला दिये । इस प्रकार उस दयावान् ने उन दोनों को वचा लिए अर्थात् भूंगड़े खाने से वकरी की भूख शान्त हो गई तव वह इल्यों और लटों की हिंसा से वच गई और उधर इल्यों और लटों की प्राणरक्षा हो गई । इस प्रकार दोनो का सन्ताप मिट गया । अव उन लोगो से पूछना चाहिए कि इसमें धर्म हुआ या पाप ? यदि इस कार्य में भी वे पाप वतावे तो इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि उनको अनुकम्पा से ही द्वेष है । इसलिए किसी जीव पर किसी भी निर्वद्य तरीके से

की गई अनुकम्पा को भी पाप कार्य बताते है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि ऐसे कुगुरुओ के कुपन्थ को दूर से ही तिलांजलि दे दें ॥१३-१४॥

खाडा में पाणी थोड़को,
जीव घणा तिण मांय हो भविकजन ।
भरिया डेंडक माछला,
पाणी पीवण आई गाय हो भविकजन ॥क. 15॥

करुणावन्ते धोवण धान को
गाय ने दियो पाय हो भविकजन ।
तिणे पाप टाल्या दोनां तणा,
इण में धरम हुयो के नाय हो भविकजन ॥16॥

भावार्थ:—जिस प्रकार मेढक मछली वाली तलैया पर पानी पीने के लिए जाती हुई भैंस का दृष्टान्त देते हैं उसी प्रकार गाय का भी दृष्टान्त देते है। जैसे कि एक खड्डे में थोडा सा पानी है। एक गाय उस पानी को पीने के लिए आई। वहा एक दयावान् पुरुष खडा है, वह किसी की अनुकम्पा करे ? यदि वह गाय की अनुकम्पा करता है और उसे पानी पीने से नही रोकता है तो पानी पी जाने पर उस खड्डे मे रहे हुए मछली, मेढक आदि बहुत से जीव मर जाते हैं। यदि वह दयावान् पुरुप उन मछली, मेढक आदि जीवों की अनुकम्पा कर उस गाय को वहा पानी पीने से रोकता है तो वह गाय प्यास मे मरती है। ऐसी अवस्था मे दयावान् पुरुप किसकी रक्षा करे ?

इसका समाधान इस प्रकार है कि ऐसे समय में उस दयावान् पुरुष ने धोवण (अचित्त जल) उस गाय को पिला दिया जिससे गाय की प्यास भी बुझ गई और खड्डे मे रहे हुए मछली, मैंढक आदि बहुत से जीव भी बच गये। इस प्रकार दोनो तरफ के जीवो की प्राणरक्षा हो गई।

अब उन लोगों से पूछना चाहिए कि 'तुम अपनी श्रद्धा के

अनुसार बतलाओ कि इस कार्य में धर्म हुआ या पाप ? यदि इस कार्य मे भी तुम पाप मानते हो तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तुम्हारी श्रद्धा मिथ्या है। तुम्हे अनुकम्पा से पूर्ण द्वेष है। इसीलिए किसी भी निर्वद्य ढङ्ग से की गई अनुकम्पा को भी तुम लोग पाप ही बतलाते हो। यह तुम्हारी मान्यता मिथ्या है ॥१५-१६॥

चूहा ने बिल्ली तणा,
माखी माखा चित्राम हो भविकजन ।
दया काढण कुगुरु किया,
खोटा जारा परिणाम हो भविकजन ॥क. 17॥

भावार्थ· जिनके हृदय मे परिणाम कलुषित हैं ऐसे कुगुरुओं ने अनुकम्पा को उठाने के लिए चूहा और बिल्ली तथा मक्खिया आदि के कई चित्र (फोटो) बना रक्खे हैं जिन्हे दिखा कर भोले जीवो को भ्रम मे डालते हैं और उनके हृदय से अनुकम्पा निकालने की चेष्टा करते हैं ॥१७॥

चूहा मारण बिल्ली चली,
दयावन्त दया लाय हो भविकजन ।
रक्षा करी चूहा तणी,
पय मिनकी ने दीनो पाय हो भविकजन ॥क. 18॥

प्राण बच्या चूहा तणा,
मिन्नी रो मिटायो पाप हो भविकजन ।
थारी श्रद्धा से कहो,
धरम हुवो के पाप हो भविकजन ॥क 19॥

भावार्थ.—वे लोग दृष्टान्त देते हैं कि एक बिल्ली किसी चूहे को मारने के लिए दौडी। वहा एक दयावान् पुरुष खडा है। ऐसे समय मे वह क्या करे ? चूहे की रक्षा करने के लिए यदि वह बिल्ली को रोकता है तो बिल्ली को अन्तराय लगती है और वह भूख से

मरती है । ऐसे समय में दयावान् किसकी रक्ष करे ?

इसका समाधान यह है कि दयावान् पुरुष ने बिल्ली को दूध पिला दिया या रोटी खिला दी जिससे बिल्ली की भूख शान्त हो गई और उधर चूहे के प्राण बच गये । इस प्रकार विल्ली और चहे दोनों की रक्षा हो गई ।

अब उन लोगों से पूछना चाहिए तुम अपनी श्रद्धा के अनुसार बतलाओ कि इस कार्य में धर्म हुआ या पाप ?' यदि इस कार्य में भी पाप बतलाते हो तो इससे साफ जाहिर हो जाता है कि तुम्हारी श्रद्धा मिथ्या है । तुम्हे तो अनुकम्पा से ही द्वेष है । इसीलिए अनुकम्पा के प्रत्येक कार्य मे पाप ही पाप मानते हो । प्रतीत होता है तुम्हारे हृदय में पाप ही पाप समाया हुआ है । जिस प्रकार पीलिया रोग वाले पुरुष को सब चीजे पीली ही पीली दिखाई देती हैं उसी प्रकार जिनके हृदय मे पाप ही पाप समाया हुआ हो ऐसे पापी जीवों को अनुकम्पा जैसे पवित्र और लोकोपकारी प्रत्येक कार्य में पाप ही पाप दिखाई देता है । ऐसे पामर प्राणी सचमुच दयनीय हैं । जिनेश्वरदेव उन्हे सद्‌बुद्धि दे ताकि वे सत्य सिद्धान्त को समझकर सत्पथ ग्रहण कर सकें ।।१८-१९।।

ज्ञानी पुरुष हुआ घणा,
सूत्र रच्या ततसार हो भविकजन ।
जीवरक्षा रे कारणे,
देखो संवरद्वार हो भविकजन ।।क. 20।।

भावार्थ:—अनन्त तीर्थंकर हो गये हैं उन सबने जीवरक्षा के लिए ही जैनागामो की रचना की है । प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवरद्वार में लिखा है कि —

'सव्व जगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं"

अर्थात्—जगत् के सम्पूर्ण जीवो की रक्षारूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है ।

प्रश्नव्याकरण सूत्र के इस मूलपाठ मे जीवरक्षा रूप धर्म के लिए जैनागम की रचना होना बतलाया गया है। अतः जीवरक्षा रूप धर्म जैनधर्म का प्रधान अङ्ग है उस जीवरक्षा को जो धर्म मानता है और विधिवत् उसका पालन करता है वही तीर्थंकर की आज्ञा का आराधक पुरुष है। इसके विपरीत जो जीवरक्षा को धर्म नही मानता किन्तु इसको पाप अथवा अधर्म बतलाता है वह धर्म का द्रोही और वीतराग की आज्ञा का तिरस्कार करने वाला है।।२०।।

जिण न्याय हेतु दृष्टान्त थी,
कोमल हुवे चित्त हो भविकजन।
दया अनुकम्पा ऊपजे,
ते सत शास्त्र रीत हो भविकजन ।।क. 21।।

जिण न्याय हेतु दृष्टान्त थीं,
दया भाव उठ जाय हो भविकजन।
ते कुहेतु जाणज्यो,
सांचो समझो न्याय हो भविकजन ।।क. 22।।

भावार्थः जिस हेतु और दृष्टान्तो से चित्त कोमल बने और चित्त में दया अनुकम्पा उत्पन्न हो उन्हे सद्हेतु और सद्दृष्टान्त समझना चाहिए और ऐसे सद्हेतु और सद्दृष्टान्तों का कथन जिसमे किया गया हो उसे सद्ग्रन्थ एव सत्शास्त्र समझना चाहिए। जैसा कि कहा गया है :—

जं सुच्चा पडिवज्जति, तवं खंतिमहिंसयं ।।
(उत्तरा० अध्य० ३)

अर्थात्—जिसके श्रवण से तप, क्षमा और अहिंसा इन गुणो की प्राप्ति हो वह सत्शास्त्र (सच्चा शास्त्र) है।

जिन हेतु और दृष्टान्तों से हृदय कठोर बन जाय और हृदय मे से दया-अनुकम्पा उठ जाय उन्हे कुहेतु और कुदृष्टान्त समझना

चाहिए और ऐसे कुहेतु और कुदृष्टान्तों का कथन जिसमें किया गया हो उसे कुग्रन्थ (खोटा ग्रन्थ) और कुशास्त्र (खोटा शास्त्र) समझना चाहिए ।।२१–२२।।

अल्प पाप बहु पाप रा,
ज्ञानी बताया काम हो भविकजन ।
बुधवन्त समझे ज्ञान सूं,
ओलखे सुध परिणाम हो भविकजन ।।क. 23।।

भावार्थ:—ज्ञानी पुरुषों ने अल्प पाप (अल्पारम्भ) और बहु पाप (महारम्भ) के कार्य बताये हैं । बुद्धिमान् पुरुष उन्हे अपने शुद्ध परिणामो के द्वारा समझ सकता है । वह स्वय महारम्भ का कार्य नही करता और दूसरो से भी महारम्भ का कार्य छुड़ाने का प्रयत्न करता है ।।२३।।

जे कारज करना थकां,
भारी टल जावे पाप हो भविकजन ।
आपनो परनो बेहू नो,
कर्मों ने नांखे काप हो भविकजन ।।क. 24।।

ज्ञान दर्शन होवे निर्मला,
पाप टालण परिणाम हो भविकजन ।
संवर निरजरा दीपती,
सद्गुण रो होवे धाम हो भविकजन ।।क. 25।।

भावार्थ: बुद्धिमान् पुरुष ऐसा कार्य करता है जिससे भारी पापकर्म (महारम्भ) टल जाता है । अपना स्वय का, दूसरे का और उभय का अर्थात् स्वपर दोनो का कर्मबन्ध शिथिल हो जाता है, ज्ञान-दर्शन निर्मल हो जाते हैं, संवर और निर्जरा की वृद्धि होती है और जो कार्य सद्गुणो का स्थान होता है तथा जिस कार्य को करने मे उसके परिणाम पाप घटाने के होते हैं किन्तु पापवृद्धि के परिणाम नही

होते ॥२४–२५॥

पेला रो पाप छुड़ावियो,
ते पिण पावे ज्ञान हो भविकजन ।
तो पथिक होवे ते मोक्ष रो,
गुणां रो ध्यावे ध्यान हो भविकजन ॥क. 26॥

जो ज्ञान पावण शक्ति नही,
तो पिण टलियो पाप हो भविकजन ।
तीव्र आरत रुकवा थकी,
मिटे महा सताप हो भविकजन ॥क. 27॥

भावार्थः—जिस प्राणी की प्राणरक्षा की जाती है उसका पाप टल जाता है, वह ज्ञान को प्राप्त होता है और मोक्षमार्ग का पथिक बनता है, सद्‌गुणो का ध्यान करता है और उन्हे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है । यदि कदाचित् उस प्राणी मे गुणों को एवं ज्ञान को प्राप्त करने की शक्ति न हो तो भी इतना लाभ तो अवश्य है कि उसका पाप टल जाता है और उसके आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान रुकने से उसका महासताप मिट जाता है और उसके चित्त को शान्ति मिलती है ॥२६–२७॥

कुगुरु कथन खोटा किया,
पाप मेटण मे पाप हो भविकजन ।
भोलां ने भरमायवा,
खोटी कर रया थाप हो भविकजन । क. 28॥

भावार्थ. 'किसी प्राणी के पाप को मिटाने में पाप होता है' ऐसी प्ररूपणा कुगुरु करते हैं । वे मिथ्या सिद्धान्त की प्ररूपणा करके भोले प्राणियो को भ्रम मे डालते है ॥२८॥

महापाप टलावे पारका,
तन धन ममत उतार हो भविकजन ।

साय करे सतोष दे,
विविध करे उपकार हो भविकजन ॥क. 29॥

ज्ञान दया शुद्ध भाव सूं,
टाले पर रो पाप हो भविकजन ।
तींव्र वेदना छुड़ाय दे,
अरु मेटे सन्ताप हो भविकजन ॥क. 30॥

भावार्थ: - परोपकारी पुरुष अपने तन और धन से ममत्वभाव उतार कर दूसरो के महापाप को टला देता है, उन्हे सुख, शान्ति और सन्तोष देता है । इसी प्रकार के अनेक परोपकार के कार्य करता है । वह दयाभाव से प्रेरित होकर विवेकपूर्वक दूसरों को पापकार्य से बचाता है और मारे जाने वाले तथा दु:ख में पड़े हुए प्राणी की रक्षा कर उसकी तीव्र वेदना और महासंताप को मिटा देता है ॥२९–३०॥

उलटी मति रा मानवी,
दु:ख मेटण में पाप हो भविकजन ।
धर्मअंश श्रद्धे नहीं,
खोटो ज्यांरो जाप हो भविकजन ॥क. 31॥

भावार्थ:—जिनकी बुद्धि विपरीत है ऐसे कितनेक अज्ञानी जीव उपरोक्त परोपकार के कार्यों मे धर्म नही मानते । प्रत्युत दु:ख पडे हुए प्राणी के दु:ख को मिटाने मे पाप कहते हैं । ऐसा कथन करने वाले मिथ्यात्वी हैं । उनका साधुवेष लेकर फिरना केवल ढोंग है । साधुता का वेष पहनकर वे निर्दयता का कार्य करते हैं । इसलिए वे साधुवेष को लजाने वाले हैं ।।३१॥

दुःख दिया हिंसा हुवे,
सुख अनुकम्पा जाण हो भविकजन ।
घूघू ने सूझे नहीं,
परगट उगो भान हो भविकजन ॥क. ३2॥

भावार्थ:—किसी भी प्राणी को दु.ख देने से हिंसा होती है और दुःखी प्राणी के दु.ख को दूर कर उसे सुख और साता उपजाना अनुकम्पा है। यह सत्य, सरल और सीधा सिद्धान्त सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट है। ऐसा स्पष्ट सत्य सिद्धान्त भी यदि किसी समझ में न आवे तो इसमे सिद्धान्त का कुछ भी दोष नहीं किन्तु उसी का दोष है जैसे कि सूर्य के उदय होने पर घूग्घू (उल्लू) को दिखाई न दे तो इसमे सूर्य का कुछ भी दोष नही किन्तु यह घूग्घू का ही दोष है ॥३२॥

पापी ने धर्मी करे,
देई दान सन्मान हो भविकजन ।
कीधो मिथ्याती रो समकिती,
करि वहुलो सन्मान हो भविकजन ॥क. 33॥

इत्यादि पर उपकार में,
एकान्त थाये पाप हो भविकजन ।
सूत्र वचन उत्थापने,
या खोटी श्रद्धा साफ हो भविकजन ॥क. 34॥

भावार्थ —कोई परोपकारी समयग्दृष्टि पुरुष यथायोग्य दान सन्मान देकर पापी पुरुष को धर्मी, मिथ्यात्वी को समकिती वना देता है। इस प्रकार के परोपकार के कार्यो मे जो पाप की स्थापना करते हैं वे उत्सूत्र की परूपणा करने वाले हैं। उनकी मान्यता मिथ्या है ॥३३–३४॥

पिछलां री साल संभाल सूं,
पुरुषां एक हजार हो भविकजन ।
कृष्ण दलाली थी हुवा,
निर्मल संजमधार हो भविकजन ॥क. 35॥

भावार्थ:—श्रीकृष्ण महाराज ने द्वारिका नगरी में यह उद्-

घोषणा करवाई थी कि "जो भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा लेना चाहे वे खुशी से दीक्षा ले। उनके पीछे रहने वाले कुटुम्बीजनो की सारसम्भाल मैं करूंगा।" इस उद्घोषणा से एक हजार पुरुषों ने दीक्षा अङ्गीकार की। जिस प्रकार कृष्ण महाराज की यह धर्मदलाली है उसी प्रकार जो पुरुष यथायोग्य दान-सन्मान देकर पापी को धर्मी और मिथ्यात्वी को समकिती बनाता है वह भी धर्मदलाली करता है। इस कार्य में जो पाप बताता है इसे मिथ्यात्वी समझना चाहिए ॥३५॥

खेत्र अखेत्रवासी समा,
दाता कह्या जिणराज हो भविकजन।
पात्र अपात्रे दान दे,
जिनधर्म दिपावण काज हो भविकजन ॥क. 26॥

शङ्का होवे तो देख लो,
ठाणायङ्ग रे माय हो भविकजन।
चौथे ठाणे जिन कह्यो,
समझ सरधा पाय हो भविकजन ॥क. 37॥

भावार्थ—ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे कहा गया है -

"चत्तारि मेहा पण्णता तंजहा खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी एवामेव चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी"

(ठाणांग ४ उद्देशा ४ सूत्र ३४६)

अर्थात्—मेघ चार प्रकार के होते हैं, एक तो वह जो क्षेत्र में ही बरसता है अक्षेत्र में नहीं। दूसरा वह है जो अक्षेत्र मे बरसता है क्षेत्र में नही बरसता। तीसरा—क्षेत्र और अक्षेत्र दोनो मे बरसता है। चौथा—क्षेत्र और अक्षेत्र किसी मे नही बरसता। इसी तरह मनुष्य भी चार प्रकार के होते हैं—एक तो वह जो पात्र को दान देता है अपात्र को नहीं देता। दूसरा—अपात्र को दान देता है पात्र

को नही देता । तीसरा—पात्र और अपात्र दोनों ही को दान देता है । चौथा—पात्र और अपात्र किसी को भी दान नही देता ।

जो विशाल उदारता के कारण या प्रवचन की प्रभावना के लिए सबको दान देता है वह तीसरे भङ्ग का स्वामी उभयवर्षी है । जो विशाल उदारता के कारण सबको दान देता है वह पुरुष उदारता रूप गुण के प्रभाव से प्रशंसनीय है और जो प्रवचन की प्रभावना के लिए सबको दान देता है वह पुरुष प्रवचन-प्रभावनारूप महान् पुण्य का उपार्जन करता है और प्रवचन-प्रभावना से तीर्थङ्कर नाम गोत्र का बंध करता है इसलिए परोपकार के कार्यों मे एकान्त पाप कहना अज्ञानता है ।।३६–३७।।

कहि कहि ने कितनो कहूं,
शुद्ध आवे पर उपकार हो भविकजन ।
धर्म पुण्य शुद्ध उपजे
पावे सुख श्रीकार हो भविकजन ।।क. 38।।

बीदासर मांहे भली,
जोड़ की धर ध्यान हो भविकजन ।
पूनमचन्दजी री हाट में,
छियांसी साल दरम्यान हो भविकजन ।।
करो परीक्षा सतधर्म री ।।39।।

भावार्थ :—ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि कितना कहा जाय ? परोपकार के कार्यो के विषय में जितना कहा जाय उतना थोड़ा है । परोपकार से जीव को शुद्ध धर्म और पुण्य की प्राप्ति होती है । पुण्य की प्राप्ति से जीव को इस लोक मे सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और धर्म की प्राप्ति से जीव अविचल (शाश्वत) सुख को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है ।

ग्रन्थकर्त्ता ने भव्य जीवों के लाभार्थ बीकानेर राज्यान्तर्गत वीदासर शहर मे पूनमचन्दजी की हाट में (दूकान) में ठहरकर सवत् १९८६ की साल में यह चौथी ढाल पूर्ण की है ॥३८-३९॥

॥ इति चौथी ढाल सम्पूर्ण ॥

❀ दोहा ❀

अनुकम्पा उत्थापवा, देवे तीन दृष्टान्त ।
यथायोग खण्डन करूं, ते सुणजो मन शान्त ॥1॥

भावार्थः—अनुकम्पा को उठाने के लिए भीषण मतानुयायी तीन दृष्टान्त देते हैं । उन दृष्टान्तो का युक्तिपूर्वक यथायोग्य खण्डन किया जाता है । अतः शान्तचित्त होकर ध्यानपूर्वक श्रवण करो ॥१॥

—: पांचवी ढाल :—

—:❀❀:—

[तर्ज—सहेल्यां ए आंबो मोरियो]

केई कुहेतु इम कथे,
देखाड़े हो कांकरा चित्राम ।
"एक चोर चोरे धन पारको,
एक मारे हो पंचेन्द्री ने ठाम ॥"
शुद्ध श्रद्धा ने ओलखो ॥1॥

(भवि) शुद्ध श्रद्धा ने ओलखो,
किण विध री हो रची मायाजाल ।
करुणा ने उत्थापवा,
भोलां ने हो नाख्या भ्रमजाल ॥शु. 2॥

एक लम्पट परनार नो,
यां तीनो रे हो कर्म नो बन्ध होय ।

यां तीनों ने साधु मिल्या,
प्रतिबोध्या हो कर्मबन्ध न होय ।शु. 3।।
यां तीनों ने समझावियां,
तीनों रा हो टाल्या महापाप ।
चोर चोरी, छोडया थकां,
धन रह्यो हो टल्यो धनि संताप ।।शु. 4।।

हिंसक हिंसा छोड़ दी,
जीव बचिया हो धर्म प्रेमानुराग ।
परनारी त्यागी तिण पुरुष री,
पड़ी कूवे हो जारणी उण रे राग ।।शु. 5।।

धन जीव रया नारी मुई,
जां रे काजे हो नहीं दां उपदेश❀ ।

❀ जैसा कि कहते हैं -

चोर तीनो ही समज्या थका,
धन रह्यो हो धनी री कुशलक्षेम ।
हिंसक तीनो ही प्रतिबोधिया,
जीव बचिया हो किया मारणा रा नेम ।।
भव्य जीवां तुमे जिन धर्म ओलखो ।।७।।

जे शील आदरियो तेहनी,
स्त्री हो पडी कूवा माही जाय ।
या रो पाप धर्म नही साधु ने,
रह्या मूवा हो तीनो अव्रत माम ।।८।।

धन रो धणी राजी हुवो, (धन रह्या),
जीव बचिया ते पिण हर्षित थाय ।
साधु तरण तारणा नही तेहना,
नारी ने हो पिण नही डुबोई आय ।।भ. ९।।
(अनु. ढाल ९ गाथा ७ से ९)

चोर हिंसक लम्पट तणा,
पाप छोड़ावां हो मारी श्रद्धा री रेश' ।।सु. 6।।

भावार्थ :- भीषण मतानुयायी साधु अपने पास कई तरह के चित्र (फोटो) रखते हैं । उन पर ककरियां रखकर अनुकम्पा उठाने के लिए ककरियो का खेल दिखाते है और भोले जीवो को भ्रम मे डालते हैं । तीन चित्रो को और ककरियो को दिखा कर वे तीन दृष्टान्त देते हैं । जैसे कि एक चोर चोरी करके धन चुराता है, एक हिंसक पचेन्द्रिय जीव को मारता है । चोर, हिंसक और लम्पट इन तीनो के कर्मबन्ध होता है । सयोगवश उन तीनो को साधु मिल गये । साधुओ ने उन तीनो को उपदेश द्वारा समझा दिया जिससे उन तीनो का महापाप टल गया यानि वे तीनो महापाप से बच गये ।

चोर के चोरी का त्याग कर देने से धनी पुरुष का धन बच गया, हिंसक के हिंसा छोड देने से जीव बच गये यानि जीवो की प्राणरक्षा हो गई और लम्पट पुरुष के परस्त्रीगमन का त्याग कर देने से जारणी (व्यभिचारिणी) स्त्री ने उसके रागवश कुए में गिर कर हत्या करली । इस प्रकार चोर, हिंसक और लम्पट पुरुष के चोरी, हिंसा और जारी (परस्त्रीगमन) का त्याग कर देने से धनरक्षा, जीव-रक्षा और व्यभिचारिणी स्त्री की आत्महत्यारूप परिणाम निकला । इस परिणाम के लिए अर्थात् धनरक्षा, जीवरक्षा और जारिणी की आत्महत्यारूप परिणाम के लिए हम (तेरहपन्थी साधु) उपदेश नही देते है किन्तु चोर, हिंसक और लम्पट के पाप को छुड़ाने के लिए उपदेश देते हैं ।

उपरोक्त तीन दृष्टान्त देकर वे लोग जीवरक्षा को जारणी स्त्री की आत्महत्या के समान बुरा और पाप का कार्य बताने की धृष्टता करते हैं । उनके सारे कथन का अभिप्राय यह है कि यदि जीवरक्षा को पुण्य का कार्य माना जाय और जीवरक्षा के लिए उपदेश देने वाले उपदेश को पुण्यबन्ध होना माना जाय तो लम्पट पुरुष को परस्त्रीगमन का त्याग कराने से जारणी स्त्री की आत्महत्या के पाप का भागी भी उस उपदेशक को मानना पड़ेगा । इसलिए हम लोग

(भीषण मतानुयायी साधु) जिस तरह केवल लम्पट पुरुष को पाप से बचाने के लिए उपदेश देते हैं उसी तरह हिसक को हिसा के पाप से बचाने के लिए उपदेश देते है किन्तु हिसक के हाथ से मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा के लिए हम उपदेश नही देते ॥१-६॥

इसड़ा कुहेतु केलवे,
जीवरक्षा में हो बतावे पाप ।
उत्तर इण रो सांभलो,
तेथी मिटे हो मिथ्या सन्ताप ।।शु. 7॥

भावार्थ:—उपरोक्त प्रकार से कुहेतु और कुदृष्टान्त देकर वे लोग जीवरक्षा मे पाप बताने धृष्टता की करते हैं । अब उपरोक्त तीनों दृष्टान्तों का उत्तर दिया जाता है । शान्तचित्त होकर श्रवण करो जिससे मिथ्या भ्रम दूर हो जाय ॥७॥

चोर अदत्त ले पारको,
ते धन ने हो दुःख-सुख नवी कोय ।
धन रा धणी ने दुःख ऊपजे,
इष्ट वियोगे हो आरत बहु होय ।।शु. 8॥

तेथी आदत्त पाप प्रभु भाखियो,
धनहर ने हो मुनि दे उपदेश ।
परधन पर ना प्राण छै,
ते हरतां हो दुःख पावे विशेष ।।शु. 9॥

चोर ने मुनि प्रतिबोध दे,
तिण नर ना हो माठा टालन पाप ।
धन धणी ने आरत तणो,
पाप दुःख नो हो मेटण सन्ताप ।।शु. 10॥

इम पाप छुड़ावे बेहू ना,
बेहू नर ना हो वलि टलिया दुःख ।

कर्मबन्ध टल्या मोटका,

दोनों रे हो हुवो शान्ति नो सुख ।।शु. 11।।

भावार्थः—अहिंसा जैनधर्म का मूल सिद्धान्त है । अहिंसा ही सब व्रतों का आधार है । इसके विपरीत हिंसा सब पापों का आधार एवं कसौटी है । जिस कार्य मे हिंसा हो, दूसरे जीव को दुःख हो वह पापकार्य है ।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि चोर चोरी करके धन चुराता है । उस धन को तो कोई दुःख नही होता फिर अादत्त यानि चोरी करना पाप क्यों कहा गया है ?

इसका उत्तर यह है कि धन तो अजीव है । अजीव को सुख-दुःख नही होता । सुख-दुःख तो जीव को होता है । धन चुराने से उसके स्वामी को दुःख होता है । धन उसके स्वामी का वाह्य प्राणरूप है । जिस प्रकार प्राणहरण से जीव को दुःख होता है उसी प्रकार धनहरण से उसके स्वामी को दुःख होता है और वह अत्यन्त आर्त्तध्यान करता है । इसलिए श्री तीर्थंकर भगवान् ने अादत्त (चोरी) को पाप कहा है । इसलिए मुनि चोर को उपदेश देकर उसे चोरी के पाप से बचाते हैं और धन के स्वामी को दुःख सन्ताप और आर्त्तध्यान से बचाते हैं । इस प्रकार मुनि दोनों को पाप-कर्मबन्ध से बचाते हैं जिससे दोनों के चित्त में शान्ति बनी रहती है ।।७—११।।

केई साहूकार रा पूत रो,

देवे हेतु हो दया काढण काज ।

"एक ऋण लेवे कोई पारको,

ऋण मेटे हो दूजो धारि लाज" ।।शु. 12।।

ऋण लेता ने बरज दे,

ऋण मेटण हो नहीं रोके बाप ।

तिम हिंसक बकरा नित हणे,

करज करता हो बांधे वह पाप ।।शु. 13।।

बकरा रे कर्ज चुके घणो,
ऋण मेटक हो पुत्तर सम जाण ।
साधु पिता सम तेहने,
किम वरजे हो कहो चतुर सुजान ।।शु. 14।।

हिंसक ने वरजे सही,
करम ऋण रो हो क्यों बांधे तूं भार ।
इम भोलां ने भरमायवा
रच दीनी हों कूड़ी कूड़ी ढार * ।।शु. 15।।

---

* जैसा कि वे कहते हैं :

जे बकरा रो जीवणु, वांछे नही लिगार ।
तिण ऊपर दृष्टान्त ने, सांभलजी सुखकार ।।६।।
साहुकार रे दोय सुत, एक कपूत अवधार ।
ऋण करडी जागा तणुं, माथे करे अपार ।।७।।
दूजो सुत जग दीपतो, यश ससार मझार ।
करडी जागा रो करज उतारे तिण वार ।।८।।
कहो केहने वरजे पिता, दोय पुत्र मे देख ।
वर्जे कर्ज करे तसु के ऋण मेटक्त पेख ।।६।।
(ढाल ३२ गाथा ६ से ६)

[समता रस विरला ए देशी]

कर्ज माथे सुत अधिक करतो,
वारबार पिता वरजतो रे समझ नर विरला ।
करडी जागा रा माथे काय कीजे,
प्रत्यक्ष दुःख पामीजे रे । समझू. १।।
अधिक माथा रो कर्ज उतारे,
जनक तास नही वारे रे ।
पिता समान साधु पिछाणो,

भावार्थः वे लोग कहते हैं कि जो जीव मर रहा है या या दुःख पा रहा है वह अपने पूर्वसचित कर्मों का भुगतान कर रहा है। ऐसे जीव को मरने से बचाना या उसको किसी प्रकार की सहायता देकर उसको दुःखों से छुडाना, उस जीव को अपने ऊपर चढ़ा कर्मऋण चुकाने से वञ्चित रखना है। मारे जाते हुए जीव की रक्षा क्यों नही करनी चाहिए ? इस पर वे लोग एक दृष्टान्त देते हैं:

एक सेठ के दो लडके है जिनमें से एक कपूत है, जो अपने सिर पर वहुत कठिन और अपार ऋण कर रहा है किन्तु दूसरा लडका ससार में सुप्रसिद्ध एव यशस्वी है जो कठिन ऋण चुका रहा है। अब पिता दोनो पुत्रो को देखकर किसको वर्जेगा एवं रोकेगा ? जो कर्ज ले रहा है उसको रोकेगा या जो कर्ज चुका रहा है उसे रोकेगा ? जो लडका कर्ज ले रहा है उसी को पिता रोकेगा और कहेगा कि इतना कठिन ऋण क्यो ले रहा है ? कर्ज करने का दुष्परिणाम तुझे भोगना होगा। जो लडका अपने सिर का कर्ज उतार रहा है, पिता उसे नही रोकेगा वल्कि उसकी तो प्रशंसा करेगा।

कर्मरूप ऋण माथे कुण करतो,
आगला कर्म कुण अपहरतो रे।
कर्मऋण रजपूत माथे करे छे
बकरा सचित कर्म भोगवे छे रे ।।समझू. ३।।

साधु रजपूत ने वर्जे सुहाय,
कर्म करज कांय रे।
कर्म वंध्या घणा गोता खासी,
परभव में दुःख पासी रे।।समझू. ४।।

सरवर पण तिण ने समझायो,
तिण रो तिरणो वंछ्यो मुनिरायो रे।
बकरा जीवण नहीं दे उपदेश,
रूडी ओलख बुद्धिवन्त रेम रे।।समझू ५।।

(भिक्षु जस रसायण)

यह तो दृष्टान्त हुआ । अब इसका द्राष्टान्तिक घटाया जाता है :—

इस दृष्टान्त के अनुसार साधु पिता के समान है और राजपूत (बकरे को मारने वाला) और बकरा (मारा जाने वाला) दोनों साधु रूपी पिता के दो पुत्र हैं । इन दोनों पुत्रों मे से कौन तो अपने सिर कर्मरूपी ऋण चढा रहा और कौन अपने पूर्वसंचित कर्मरूपी ऋण को चका रहा है और बकरा राजपूत के हाथ से मर कर अपने पूर्वसंचित कर्म भोगने रूप अपने सिर पर का ऋण चुका रहा है । इसीलिए साधुरूपी पिता राजपूत (बकरा मारने वाले) रूप पुत्र को ही वर्जेगा कि अपने सिर पर कर्मरूपी ऋण क्यों करता है ? कर्मरूपी ऋण करने से तुझे ससार मे बहुत चक्कर खाने पड़ेंगे और परभव में दुःख पाना होगा । इस तरह राजपूत रूपी पुत्र को मुनिराज ने भली प्रकार समझाया और उसका तिरना चाहा परन्तु बकरे को जीवित रखने के लिए मुनिराज उपदेश नही देते क्योंकि वह तो मर कर अपने सिर का कर्मऋण चुका रहा है । उसको कर्मरूपी ऋण चुकाने से मुनिराज रूपी पिता क्यो रोके ? यदि वह रोके तो पिता होकर भी उसका अहित करते हैं । इसलिए किसी मरते जीव को बचाना या दुःख पाते हुए जीव को दुःख से मुक्त करना पाप है । यह तेरहपन्थियों के मत का गूढ रहस्य है ॥१२–१५॥

कहे ज्ञानी तुमे कुहेतु थी,
मिथ्यापख नी हो कीनी या थाप ।
बकरो दुःख थी तड़फड़े,
दुःख पावे हो तेने अति सन्ताप ॥शु. 16

शान्तिभाव उण रे नहीं,
तीव्र आरत हो ध्यावे रुद्दर ध्यान ।
तेथी हलका कर्म भारी हुवे,
मन्द रस ना हो तीव्ररस पहिचान ॥शु. 17॥

अल्पस्थिति महास्थिति करे,
पाप भोगतां हो बांधे माठा कर्म ।

एवी करकश वेदना वेदतां,
        अरड़ावे हो ज्ञानी जाणे मर्म ।।शु. 18।।

एवा कर्मबन्ध ना काम में,
        कर्म छूटण हो लेवे मिथ्या नाम ।
न्याय अन्याय तोले नहीं,
        परतख दीखे हो माठा परिणाम ।।शु. 19।।

भावार्थः—कुहेतु और कुयुक्तियां लगाकर उन्होंने खोटी-खोटी ढालो की रचना की है और उन ढालो से अपने मिथ्यापक्ष की स्थापना करके भोले लोगो को भ्रमजाल में डाल दिये हैं। ज्ञानी पुरुष उनकी कुयुक्तियों का खण्डन करते हुए कहते हैं कि 'हिंसक के हाथ से मारा जाने वाला बकरा अपने कर्मरूपी ऋण को चुकाता है' यह तुम्हारा कथन एकान्त मिथ्या है क्योंकि कर्मो का ऋण तो गजसुकुमालजी सरीखे महापुरुष जिन्होंने कष्ट एवं तीव्र वेदना, जिसे टाल देने की शक्ति उनमे विद्यमान थी और यदि वे चाहते तो उस कष्ट को टाल सकते थे फिर भी उन्होने उसे समभाव पूर्वक सहन किया वे ही चुकाते है, सब जीव नही। वे तो अधिक कर्जा कर लेते हैं। किसी हिंसक या कसाई द्वारा मारे जाते हुए बकरे आदि जीव को देखो कि वह कैसा दुःख पाता हुआ और किस प्रकार तड़फड़ाता एवं चिल्लाता हुआ मरता है।

जैन-शास्त्रो मे कहा गया है कि जो जीव आर्त्तध्यान रौद्र-करता हुआ मरता है वह हल्के कर्म को भारी करता है, मन्दरस वाले कर्म को तीव्ररस वाला करता है और अल्पस्थिति के कर्मो को दीर्घ-स्थिति के बनाता है।

इस प्रकार हिंसक के हाथ से मारा जाने वाला जीव मारणान्तिक कष्ट एवं कठोर वेदना के समय अरड़ाट (मूक प्राणी का चिल्लाना) एवं हाय-वाय करता है। तब वह नवीन कर्मो का कर्जा अपने सिर पर और कर लेता है। यह प्रत्यक्ष कर्मबन्ध का स्थान है। ऐसे स्थान

में यह कहना है कि 'बकरा अपने कर्मऋण को चुकाता है' मिथ्या है। कठोर हृदय और निर्दयी पुरुष ही ऐसा कह सकता है।

भीषण मतानुयायियो से पूछना चाहिए कि जो जीव धर्म को नही जानते, जब वे किसी के द्वारा मारे जाने लगेगें तब उनमें आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान होगा या धमध्यान और शुक्लध्यान होगा ? यदि धर्म न जानने पर भी बकरे को धर्मध्यान और शुक्लध्यान हो सकता है तब तो धर्म की जरुरत ही क्या रही ? क्योकि धर्म का उद्देश्य आत्मा मे धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान लाना है। ये दोनो ध्यान यदि धर्म न जानने वाले पशु को भी हो सकते हैं तो फिर धर्म की जरुरत ही क्या रही ? और यदि धर्म न जानने वाले बकरे को हिंसक द्वारा मारा जाने के समय धर्मध्यान और शुक्लध्यान नही होता किन्तु आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान होता है तो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से महान् कर्म का बन्ध होता है या नही ? और यदि महान् कर्म का बन्ध होता है तो आपका यह कथन कि "बकरा अपने सिर पर का कर्मऋण चुकाता है" झूठ और शास्त्रविरुद्ध रहा या नही ? ।१६-१९॥

सौ बकरा कसाई हणता थका,
मुनिवरजी हो तिहां दे उपदेश ।
ते घात-टालण बकरा तणी,
कसाई रा हो मेटण पाप क्लेश ॥शु 20॥

करकश वेदना ऊपज्यां,
बकरा ध्यावे हो महा आरतध्यान ।
वलि रुद्रध्यान पिण उपजे,
ठाणायङ्ग हो जोवो धर ध्यान ॥शु. 21॥

पूर्वकर्म दोनो भोगवे,
नवा बांधे हो दोनों वैराण बन्ध ।
मुनि उपकारी वेहूना,
उपदेशे हो टाले वेहूना द्वन्द्व ॥शु. 22॥

भावार्थ.—कोई कसाई सौ बकरों को मार रहा है यह देख कर

उस कसाई के पाप को मिटाने के लिए तथा उसके हाथ से मारे जाने वाले बकरो की प्राणरक्षा के लिए मुनिराज उसे उपदेश देते हैं जिससे दोनों के पाप टल जाते है । क्योंकि कठोर वेदना के समय बकरे को आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान पैदा होते हैं । ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे बतलाया गया है कि कठोर वेदना के समय आर्त्तध्यान और रौद्र-ध्यान पैदा होते हैं ।

इस प्रकार बकरा और कसाई दोनो के आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान पैदा होते हैं इसलिए वे अपने पूर्व कर्म को भोगते हुए वैरानुबन्धी नवीन कर्मों का बन्ध करते हैं । इसीलिए मुनिराज बकरा और कसाई दोनो पर अनुकम्पा करके दोनो के हित तथा दोनो को तारने की दृष्टि से उपदेश देकर दोनो के संताप को मिटा देते हैं ॥२०–२२ ।

(कहे) 'हिंसक पाप छुडायवा,
म्हे तो देवां हो धर्म रो उपदेश ।
बकरा धन एक सारखा,
तिण रे कारण हो नही दां उपदेश" ॥शु. 23॥

भावार्थ:—वे लोग कहते हैं कि 'हम (तेरहपन्थी साधु) हिंसक को हिंसा के पाप से बचाने लिए उपदेश देते हैं किन्तु उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा के लिए उपदेश नही देते क्योंकि हमारे लिए धन और बकरा दोनो एक समान हैं जिस प्रकार हम धनी के धन की रक्षा के लिए उपदेश नही देते उसी प्रकार हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे की प्राणरक्षा के लिए भी उपदेश नही देते ॥२३॥

(उत्तर) एवी करे कोई थापना,
विकल हुआ हो अनुकम्पा रे द्वेष ।
पाणाणुकम्पा प्रभु कही,
नहीं पैसा नी हो जरा समझो रेस ॥शु. 24॥

धनिक री अनुकम्पा होवे,
प्राणधणी हो बकरा री पिछाण ।
पैसा ने दुःख सुख नहीं,
किम होवे हो दया चतुर सुजाण ।।शु. 25।।

आरतरुद्र बकरा तणो,
मुनि मेटण हो देवे उपदेश ।
पैसा रे ध्यान लेश्या नहीं,
सुख दुःख रो हो नही तिण रे क्लेश ।।शु. 26।।

प्राणी अनुकम्पा मुनि करे,
जड़ धन में हो नहीं करुणा रो लेश ।
जो जीव जड़ एक–सा गिणे,
निर्दयता हो ज्यांरा घट में विशेष ।।शु. 27।।

भावार्थः—हिसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे के साथ चोर द्वारा चुराने जाने वाले धन का दृष्टान्त देना महा मूर्खता है क्योकि बकरा चेतन प्राणी है । वह दु.ख-सुख को समझता है किन्तु धन अचेतन जड पदार्थ है । वह धनी के पास रहे अथवा चोर के पास रहे उसे सुख-दु:ख कुछ नही होता । जिसे सुख-दु:ख कुछ भी न हो उसकी दया एव अनुकम्पा क्या हो सकती है ? किन्तु चेतन प्राणी है उसको सुख-दु:ख होता है । इसीलिए उसकी दया–अनुकम्पा होती है। हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे को आर्त्तध्यान रौद्रध्यान पैदा होता है इसलिए उस सन्ताप को मिटाने के लिए मुनि उपदेश देते हैं किन्तु धन के कोई ध्यान या लेश्या नही होती और न उसे सुख-दु:ख एव क्लेश होता है इसलिए उसकी क्या करुणा हो सकती है ? जो लोग चेतन प्राणी के साथ अचेतन धन का दृष्टान्त देकर तथा जीवरक्षा और धनरक्षा को एक समान बताकर भोले जीवो को भ्रम में डालते हैं और उनके हृदय से अनुकम्पा उठाते हैं वे महानिर्दयी हैं ।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे जीवरक्षारूप दया के लिए जैनागम

की रचना का कथन कर जीवरक्षा धर्म को जैनागम का प्रधान उद्देश्य कहा है इसलिए साधु जीवरक्षा के लिए धर्मोपदेश देते हैं परन्तु धनी के धन की रक्षा के लिए नही क्योंकि उक्त सूत्र मे परद्रव्य के हरणरूप पाप से निवृत्तिरूप दया के लिए जैनागम का कथन होना बतलाया है, धनी के धन की रक्षारूप दया के लिए नही । इसलिए चोर को चोरी के पाप से मुक्त करने के लिए तथा धन के चुराये जाने से धनी के हृदय में होने वाले सन्ताप को मिटाने के लिए मुनि उपदेश देते हैं किन्तु धनी के धन की रक्षा के लिए नही क्योंकि धन कोई को सुख-दु:ख एवं क्लेश नहीं होना । प्रश्नव्याकरण सूत्र का वह पाठ यह है:—

'परदव्वयहरणवेरमणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहिय'

अर्थात्—परद्रव्य के हरणरूप पाप से निवत्ति रूप धर्म की रक्षा के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है ।

इस पाठ में परद्रव्य के हरणरूप पाप से निवृत्ति के लिए प्रवचन का कथन होना कहा है, धनी के धन की रक्षा के लिए नही। इसलिए साधु चोर को चोरी से बचाने के लिए ही धर्मोपदेश देते हैं धनी के धन की रक्षा के लिए नही, परन्तु जीवरक्षा के विषय में यह नही कहा है कि 'हिंसा की निवृत्ति के लिए जैनागम का कथन हुआ है जीवरक्षा के लिए नही" बल्कि वहां तो यह साफ लिखा है कि:—

'सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं ।"

अर्थात् "संसार के सभी प्राणियो की रक्षारूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन (जैनागम) कहा है ।" इसलिए हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले जीव रक्षा के लिए धर्मोपदेश देना शास्त्रानुमोदित और बहुत ही उत्तम कार्य है । इसे पाप कहने वाले एकान्त मिथ्यावादी और मिथ्यादृष्टि हैं ।

ऊपर बताया जा चुका है कि धनरक्षा के साथ जीवरक्षा की तुल्यता बताना अज्ञानता है क्योंकि धन अचित्त पदार्थ है । उसको

अनुकम्पा नही होती परन्तु जीव चेतन है उसकी रक्षा करना धर्म है। अतएव शास्त्र मे जगह-जगह.—

'पाणाणुकंपाए भूयाणुकंपाए जीवाणुकंपाए सत्ताणुकंपाए।"

इस प्रकार का पाठ आया है किन्तु 'धणाणुकंपाए वित्ताणुकंपाए" इत्यादि पाठ नही आया है। इसलिए धनरक्षा का दृष्टान्त देकर जीवरक्षा के लिए धर्मोपदेश देने में पाप कहना अज्ञानियो का कार्य है।

बकरे आदि निरपराधी मूक प्राणियों को मारने वाला कसाई तो निर्दयी है ही किन्तु कसाई के हाथ से मारे जाने के समय बिल-बिलाट शब्द करते हुए तथा किसी दयालु पुरुष द्वारा अनुकम्पा से अपनी प्राणरक्षा चाहने वाले डबडबाये हुए कायर नेत्र और दीनमुख वाले बकरे पर अनुकम्पा करने के बजाय जो व्यक्ति यह कहता है कि 'यह बकरा अपने कर्मरूपी ऋण को चुका रहा है और जो पुरुष इस बकरे की प्राणरक्षा करता है वह इसको कर्मरूपी ऋण चुकाने में अन्तराय देता है तथा पाप का कार्य करता है' ऐसा कथन करने वाले व्यक्ति को उपरोक्त कसाई से भी बदतर महानिर्दयी समझना चाहिए ।।२४–२७।।

हिंसक पाप मेटण कहो,
बकरा हो मेट्यां कहो दोष।
चूक पड़ी इण में किसीं,
थारो दीखे हो बकरा पर रोष ।।शु 28।।

इम पाप छूटा बेहू तणा,
बेहू जीवना हो वलि टलिया दुःख।
कर्मबन्धन टल्या मोटका,
दोनों रे हो हुओ शान्ति नो सुख। शु. 29।।

भावार्थ—उन लोगो से पूछना चाहिए कि 'तुम कहते हो कि हिंसक का पाप छुडाने के लिए उपदेश देत हैं और वह धर्मकार्य

है" तो जो कसाई आपका उपदेश सुनकर बकरा न मारेगा तब बकरे की रक्षा स्वतः हो गई फिर बकरे की रक्षा करने मे तुम पाप कहते हो, इसका क्या रहस्य है ? बकरे की प्राणरक्षा करने के लिए जो उपदेश देता है वह क्या बुरा कार्य करता है जो तुम उसे पाप बताते हो ? वह तो हिंसक और बकरा दोनो के पाप को छुड़ाता है जिससे उन दोनो का दुःख सन्ताप दूर हो जाता है और आर्त्तध्यान रौद्रध्यान से होने वाला महान् कर्मबन्ध रुक जाता है तथा दोनो के चित्त से शान्ति हो जाती है । अतः बकरे की प्राणरक्षा मे पाप बताने वाला व्यक्ति बकरे का द्वेषी तथा अनुकम्पाद्वेषी है ॥२८ २९॥

कदा खोटो पख खांचो कहो,

मरता काजे हो नहीं दां उपदेश ।

तिण रे निर्जरा होती बन्द हुवे,

म्हारी सरधा री हो उंडी रेस ॥शु. 30॥

भावार्थ:—अपने मिथ्या मत के पक्ष मे पड़कर यदि वे लोग ऐसा कहे कि 'हिंसक के हाथ से जो जीव मारा जाता है वह अपने कर्मरूपी ऋण को चुकाता है और कर्मों की निर्जरा करता है ।' उसकी प्राणरक्षा के लिए उपदेश देने मे उसके कर्मऋण चुकाने मे अन्तराय पडती है और उसकी निर्जरा बन्द हो जाती है । इसलिए हम लोग उसकी प्राणरक्षा के लिए उपदेश नही देते हैं यह हमारे भीषण मत की गूढ़ रहस्य है ॥३०॥

(उत्तर) इण लेखे तो हिंसक भणी,

उपदेश देणो हो थांरे पाप रे माय ।

हिंसा छोड्यां बकरो बचे

तदा निर्जरा हो होती रुक जाय ॥शु. 31॥

इम भटके श्रद्धा थाहरी,

खोटी मांडी हो तुने माया जाल ।

इण मिथ्या पख ने छोड दो,

सत श्रद्धा रो हो मन आणो ख्याल ॥शु. 32॥

भावार्थ:—उपरोक्त कथन करने वाले लोगों से कहना चाहिए कि इस तरह तो हिंसक को हिंसा न करने का तुम्हारा उपदेश भी पाप मे ठहरेगा क्योकि तुम्हारे उपदेश द्वारा हिंसक के हिंसा छोड देने पर बकरा बच जायगा और आपके मतानुसार उसकी निर्जरा बन्द हो जायगी। अतः तुम्हारी मान्यतानुसार तुम्हारा हिंसक को उपदेश देना भी पाप मे ठहरता है। इस प्रकार तुम्हारी मत तुम्हारी मान्यतानुसार ही साबित होता है।

ऐसे अज्ञानी जीवो पर करुणा करके सद्गुरु कहते हैं कि 'तुम लोगों ने यह खोटा मायाजाल रच रक्खा है जिसमें तुम स्वयं फंस कर तथा भोले जीवों को फसा कर अपनी और उनकी दोनो की आत्मा का अधःपतन कर रहे हो। अब इस मिथ्या पक्ष को छोड़कर सच्ची श्रद्धा को धारण करो और सत्पथ के पथिक बनो जिससे आत्मा का कल्याण हो ॥३१-३२॥

निर्जरा भ्रम मिटायवा,
एक हेतु हो सुजाण चतुर सुजाण ।
मासखमण रे पारणे,
गोचरी आया हो मुनिजी गुणखाण ॥शु. 33॥

कोई मूरख मन में चिन्तवे,
आहार बेराया हो निर्जरा बन्द होय ।
नहीं बेरायां निर्जरा घणी,
तप वधसी हो मुनि ने गुण जोय ॥शु. 34॥

जिण सुपात्र दान न ओलख्यो,
ते मूढमति हो एवो करे विचार ।
मुनि जांचे छै आहार ने,
देवण वाला ने हो हुवे लाभ अपार ॥शु. 35॥

कदा आहार मुनि ने मिले नहीं,
समभावे हो निर्जरा वहु होय ।

त्यां ने पिण आहार आपतां,
दाता रे हो धर्म रो फल जोय ।।शु. 36।।

मुनि दान मांगे दाता दिये,
दोनों रे हो धर्म रो फल होय ।
अन्तरा नहीं निर्जरा तणी,
यो ही न्याय हो बकरा रो जोय ।।शु. 37।।

बकरो चावे निज प्राण ने,
मरण भय थी हो छोड़ावे (मुक्त) कोय ।
जो छोड़ावे अभयदानी कह्यो
दाता रे हो फल मोटको होय ।।शु. 38।।

भावार्थ:–हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे की प्राणरक्षा करने के लिए उपदेश देने से उस बकरे की निर्जरा बन्द हो जाती है ऐसा कथन करके उन लोगो ने जो भ्रम पैदा किया है उसके निराकरण के लिए दृष्टान्त दिया जाता है:—

मान लीजिए एक साधु के एक मास की तपस्या है। साधु को धर्म का ज्ञान है और वे समभावपूर्वक कष्ट सहन करके कर्मों की निर्जरा करने के लिए ही साधु बने हैं। उनको जब तक आहार नहीं मिलता है तब तक उनके कर्मों की महा निर्जरा होती है। यह बात आप लोग (तेरहपन्थी) भी मानते हैं और साथ ही आप यह मानते हैं कि 'कर्मऋण चुकाते हुए एवं निर्जरा करते हुए को अन्तराय देना पाप है" जैसा कि आपने बकरे और राजपूत का दृष्टान्त देकर बताया है।

मासखमण के पारणे के दिन वे मुनि गोचरी (आहार-पानी) के लिए निकले तब उस समय आपके सिद्धान्त को मानने वाला कोई व्यक्ति यह सोचे कि आहार मिलने से मुनि के कर्मों की निर्जरा होती हुई बन्द हो जावेगी ऐसा सोचकर वह स्वयं भी मुनि को पारणे के लिए आहार न देवे तथा दूसरों से भी कहे कि "मुनि के कर्मों की

होती हुई निर्जरा को मत रोको क्योंकि आहार देने से इनकी निर्जरा रुक जावेगी" तो उसका यह कार्य अनुचित तो न होगा ? इसके सिवाय जो लोग मुनि को आहार देकर उनकी होती हुई कर्मो की निर्जरा को रोक देते हैं उन्हे पाप तो न होगा ? जिस तरह आपने अपने दृष्टान्त मे यह बतलाया है कि साधु बकरे और राजपूत दोनो का पिता है उसी तरह शास्त्र मे यह बतलाया गया है कि श्रावक साधु का पिता होता है । जिस तरह साधु उस मारे जाते हुए बकरे को कर्मऋण चुकाने से नही रोकते उसी तरह श्रावक को भी यही उचित है कि कर्मऋण चुकाते हुए एव कर्मों को निर्जरा करते हुए साधु को वह न रोके । वह न रोके । ऐसा होते हुए यदि कोई श्रावक साधु को आहार देकर उन्हे कर्मऋण चुकाने से रोकते है तथा उनकी होती हुई कर्मों की निर्जरा को रोकते हैं तो उन श्रावको को भी वैसा ही पाप होना चाहिए जैसा पाप कर्मऋण चुकाते हुए बकरे को बचाने से आप लोग मानते हैं ।

उन लोगो से पूछना चाहिए कि शास्त्र में श्रावक को साधु का माता पिता कहा है या नही ? और आहार मिलने पर साधु के लिए कर्मों की निजरा होना कहा है या नही ? यदि हा तो जो श्रावक साधु को आहार-पानी देता है और कर्मऋण चुकाते हुए एवं कर्मों की निर्जरा करते हुए साधु को कर्मऋण चुकाने से एव कर्मों की निर्जरा करने से रोकता है वह तेरहपन्थ के सिद्धान्तानुसार पापी हुआ या नही ? और तेरहपन्थी लोग जिसकी बडी महिमा गाते हैं वह सुपात्रदान उन्ही के सिद्धान्त से पाप ठहरता है या नही ? यदि साधु को आहार-पानी देना धर्म है तो मरते हुए जीव को बचाना पाप क्यो होगा ?

मासखमण के पारणे के दिन गोचरी के लिए आये हुए साधु के लिए जो यह विचार करता है कि 'मुनि को आहार देने से इनकी होती हुई कर्मनिर्जरा बन्द हो जायगी । इसलिए इन्हे आहार न देना चाहिए । आहार न देने से इनके कर्मों की निर्जरा होगी और तप बढेगा ।" जो व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है समझना चाहिए

उस मूर्ख ने सुपात्रदान का स्वरूप समझा ही नही है। जबकि मुनि गोचरी आये हैं और वे आहार-पानी की याचना करते है उस समय उन्हें निर्दोष आहार-पानी देने से दाता को महालाभ होता है। यदि कदाचित् कोई मुनि गोचरी के लिए निकले हैं किन्तु लाभान्तराय कर्म के उदय से उन्हे आहार-पानी न मिले तो मुनिराज समभाव रक्खे अर्थात् ऐसा विचार करे कि "मुझे आहार-पानी नही मिला तो इसमें दाता का कोई दोष नही है मेरे ही लाभान्तराय कर्म का उदय है जिससे मुझे आहार-पानी का लाभ नही हुआ परन्तु इससे मेरी कुछ भी हानि नही है, मेरे तो तप की वृद्धि होगी" ऐसा विचार कर समभाव रखने वाले मुनि के महानिर्जरा होती है। ऐसे मुनि को भी आहार-पानी देने वाले दाता को धर्म का महान् लाभ होता है।

आहार-पानी की याचना करने वाले मुनि को आहार-पानी देने वाले दाता को और ग्रहण करने वाले मुनिराज को दोनो को धर्म का महान् लाभ होता है किन्तु निजरा की अन्तराय नहीं लगती यही बात हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे के विषय में समझनी चाहिए। हिंसक जब बकरे को मारता है उस समय वह तड़फड़ाता है और अपने प्राणो की रक्षा चाहता है और चाहता है कि कोई दयालु पुरुष मुझे मरण के भय से मुक्त करे। ऐसे समय मे जो दयालु अनुकम्पा करके बकरे की रक्षा करता है वह अभयदानी कहलाता है और उसे धर्म का महान् लाभ होता है और बकरे का आर्त्तध्यान रौद्रध्यान छूट कर उसे शान्ति प्राप्त होती है ॥३२-३८॥

भयभ्रान्त हुवो राय संजती,
ते जांचे हो मुनि थी कर जोड़।
अभयदान दो मुझ भणी,
मृग मारण हो अपराध थी छोड़ ॥सु. 39॥

तब ध्यान खोल मुनिरायजी,
अभय दीनो हो भय मेटण जोय।
तिम मरता (जीव) भय पामता,
ते निर्भय हो अभयदान थी होय ॥सु. 40॥

तिण अभयदान ने पाप में,
जे थापे हो ते मूढ गिवांर ।
भय मेटचां अभयदान छै,
समदृष्टि हो लेवे हिरदा में धर ॥शु. 41॥

भावार्थः—उत्तराध्ययन सूत्र के अठारहवें अध्ययन में यह वर्णन आता है कि एक समय संयति राजा शिकार खेलने के लिए उद्यान मे गया । वहा जाकर उसने एक मृग पर बाण छोड़ा । बाण जाकर मृग के लगा । वह मृग दौड़ता हुआ उस उद्यान में ध्यानस्थ बैठे हुए गर्दभाली मुनि के पास पहुचा । घोड़ा दौड़ाता हुआ राजा सयति मृग का पीछा करने लगा । जब उसने देखा कि मृग मुनि के पास मरा पड़ा है तब उसने विचारा कि यह मृग तो मुनि का मालूम होता हैं । इसको बाण मार कर मैंने महान् अनर्थ किया है । ऐसा सोच कर राजा अत्यन्त भयभ्रान्त हुआ । वह परन्तु घोड़े से नीचे उतरा और मुनि के पास आकर दोनो हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे मुनिवर ! मैंने आपके मृग को बाण मार कर आपका महान् अपराध किया है । इस अपराध को आप क्षमा करें और मुझे अभय-दान दें ।

मुनि ध्यानस्थ बैठे हुए थे इसलिए उन्होंने कुछ भी उत्तर नही दिया तब तो राजा और भी अधिक भयभ्रान्त हुआ । वह अपना परिचय देता हुआ मुनि से बार-बार अभयदान की याचना करने लगा । तब ध्यान खोलकर मुनि ने कहा किः—

अभओ पत्थिवा तुज्झं, अभयदाया भवाहि य ।

(उत्तरा० अ० १८)

अर्थात् हे पार्थिव (राजन्)! मेरी तरफ से तुझे अभय है । जङ्गल के जानवर तुझ से भयभीत हो रहे हैं अतः हे राजन् ! तू भी इन्हे अभदान दे ।

मुनि से अभयदान प्राप्त कर राजा संयति के हृदय में परम

शान्ति हुई। जिस प्रकार राजा संयति भयभ्रान्त था किन्तु अभयदान मिलने से वह निर्भय हो गया उसी प्रकार हिंसक में हाथ से मारा जाता हुआ जीव भी मरणभय से अत्यन्त भयभीत होता है। उसे अभयदान देने से अर्थात् उसकी रक्षा करने से वह निर्भय होता है और परम शान्तिलाभ करता है। ऐसे प्राणरक्षा रूप अभयदान के पवित्र कार्य में जो पाप बताता है उसे मिथ्यात्वी समझना चाहिए। जो सम्यग्दृष्टि होता है वह तो मरणभय से भयभीत प्राणी के भय को दूर करने रूप अभयदान के कार्य को परम पवित्र कार्य मानता है ॥३९-४१॥

समभाव बकरा रे नहीं,
तिण रे निर्जरा हो कहो किणविध होय।
आर्त्त रुद्र परिणाम थी,
माठा पाप रो हो बन्ध कर रयो सोय ॥शु. 42॥

तेथी तिण ने बचायां गुण होवे,
निर्जरा री हो अन्तराय न कोय।
भय मिटियो गुण नीपज्यो,
मेटणहारो हो अभयदानी होय ॥शु. 43॥

भावार्थ:—जो लोग कहते हैं कि 'हिंसक के हाथ से मारा जाता हुआ बकरा अपने कर्मरूपी ऋण को चुकाता है और कर्मों की निर्जरा करता है।' उनका यह कथन एकान्त मिथ्या है। कर्मों की निर्जरा समभावपूर्वक कष्ट सहन करने से होती है किन्तु कष्ट के समय हाय-हाय करने से एवं आर्त्तध्यान रौद्रध्यान करने से पापकर्मों का बन्ध होता है। हिंसक के हाथ से मारा जाता हुआ बकरा अत्यन्त हाय-वाय करता हुआ और तड़फड़ाता हुआ दिखाई देता है। उसके तो नवीन कर्मों का बन्ध होता है। इसलिए उसको बचाना महान् पुण्य का कार्य है किन्तु कर्मों की निर्जरा की अन्तराय है। मरणभय से भयभ्रान्त बने हुए बकरे के भय को मिटाने से बकरे को शान्ति-लाभ-रूप गुण की प्राप्ति होती है और उसका भय मिटाने वाला अभयदानी कहलाता है ॥४२-४३॥

वलि सत्य हेतु एक सांभलो,
तीन वाण्यां री हो चाली सूतर में बात ।
एक लाभ लेइ घर आवियो,
बीजो लायो हो धन मूलज साथ ॥शु. 44॥

तीजो मूल गमावियो,
इं दृष्टान्ते हो जाणो दया रो काम ।
एक जीव बचावा उपदेशे,
लाभ बहुलो हो होवे शुध परिणाम ॥शु. 45॥

मौन रहे बोले नहीं,
मूलपूंजी रो हो ते राखणहार ।
मार कहे तीजो पापियो,
मूलपूंजी रो हो ते खोवणहार ॥शु. 46॥

भावार्थः—श्री उत्तराध्ययन सूत्र के सातवें अध्ययन में तीन वणिकों का दृष्टान्त दिया गया है । जैसे कि तीन वणिक अपने साथ में कुछ पूंजी लेकर धन कमाने के लिए परदेश गये । उनमें से एक वणिक तो बहुत-सा धन कमा कर वापिस घर को लौटा । दूसरे वणिक् ने कमाया तो कुछ नही किन्तु वह अपनी मूलपूंजी को लेकर वापिस लौटा और तीसरा वणिक् मूलपूंजी को भी खोकर वापिस लौटा ।

यह एक व्यावहारिक दृष्टान्त है । इसी प्रकार दयाधर्म के विषय में भी समझना चाहिए:—

कोई हिंसक किसी भी जीव को मार रहा है उस समय में कोई दयालु पुरुष उस हिंसक को उपदेश देकर उस मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा कर लेता है वह तो उस लाभ कमाने वाले प्रथम वणिक् के समान है । दूसरा पुरुष ऐसा है जो हिंसक के हाथ से मारे जाते हुए जीव को देखकर किसी कारण से कुछ नहीं बोलना

किन्तु मौन रहता है वह उस मूलपूंजी की रक्षा करने वाले दूसरे वणिक् के समान है और जो पुरुष 'इसे मार' ऐसा कह कर उस हिंसक पुरुष को उत्तेजना देता है वह अपनी मूलपूंजी को भी खोने वाले उस तीसरे वणिक् के समान है ॥४४–४६॥

केइ कुतरकी इम कहे,
जीवन बचियां हो वधे पाप री वेल ।
खोटा न्याय बहुविध कथे,
तुमे सुणजो हो खोटी सरधा रो खेल । शु. 47॥

(कहे) 'परस्त्री पापी एक पुरुष ना,
उपदेशे हो मुनि मेट्या पाप ।
परनारी जाई कुवे पड़ी,
तिण रो मुनि ने हो नहीं पाप सन्ताप ॥शु. 48॥

बकरा बच्या नारी मुई,
म्हें तो समझां हो दोनों एक समान ।
बकरा बच्या दया नहीं,
नारी मुआं हो नहीं हिंसा स्थान ॥शु 49॥

बकरा बच्या धर्म सरधसी,
तिण री सरधा में हो नारी मुआं रो पाप ।
एवा कुहेतु केलवी,
भोलां आगे हो करे मत री थाप ॥शु 50॥

भावार्थ.—कुतर्कों द्वारा अनुकम्पा की घात करने वाले वे लोग कहते हैं कि 'हम लोग हिंसक को हिंसा का पाप छुडाने के लिए उपदेश देते हैं किन्तु उसके हाथ से मारे जाने वाले बकरे की प्राणरक्षा के लिए उपदेश नही देते हैं क्योंकि जीव बचाने से पापो की परम्परा बढती है।'

जीव बचाने में पाप सिद्ध करने के लिए वे एक दृष्टान्त देते

है। जैसे कि—एक जार (परस्त्रीगामी) पुरुष है। मुनिराज ने उसे उपदेश देकर परस्त्रीगमन का त्याग करवा दिया। उसके परस्त्रीगमन का त्याग कर देने से उसमें राग रखने वाली परस्त्री मोहान्ध बनकर कुए में गिर गई।

यह दृष्टान्त देकर वे लोग कहते हैं कि "जिस प्रकार हम लोग उस परस्त्रीगामी पुरुष के पाप छुडाने के लिए उपदेश देते हैं उसका शुभफल यानि धर्मपुण्य हम को होता है किन्तु उसके परस्त्रीगमन के त्याग का जो परिणाम निकला अर्थात् वह जारणी स्त्री कुए में गिर पड़ी उसका पाप हमें नही लगता। इसी प्रकार हम हिंसक को हिंसा का पाप छुडाने के लिए उपदेश देते हैं केवल उसका ही धर्म हमको होता है किन्तु बकरे को बचाने के लिए हम उपदेश नही देते हैं और इसीलिए उसके बचने से होने वाला पाप हमे नही लगता। अर्थात् बकरे की प्राणरक्षा हुई और जारणी स्त्री की आत्महत्या हुई दोनों को हम एक समान मानते हैं। परन्तु जो लोग बकरे की प्राण-रक्षा होने में धर्म मानते हैं तो उनकी मान्यतानुसार जारणी स्त्री की आत्महत्या का पाप भी उन्हें लगेगा।"

इस प्रकार खोटे और असंगत दृष्टान्त देकर भोले लोगों के सामने वे अपने मत की स्थापना करते हैं और अनुकम्पा में पाप स्थापित करने की धृष्टता करते है ॥४७–५०॥

(उत्तर) हिवे ज्ञानी कहे भवि सांभलो,
बचिया मरिया रीं हो सरखी नहीं बात।
बकरा री रक्षा कारणे,
उपदेशे हो मुनिजी साक्षात् ॥शु 51॥

नारी मारण (मुनि) कामी नहीं,
मारण में हो नहीं पर उपकार।
आत्मघात करे पापिणी,
महा मोहवश हो मरे ते नार ॥शु 52॥

त्याग हेते स्त्री मरे नहीं,
मोह कारण हो वा मरे मतहीण ।
तिण री पिण घात छुड़ायवा,
उपदेशे हो मुनि धर्म प्रवीण ॥शु. 53॥
सुण उपदेश बच गई,
तेथी टलिया हो महामोहनी कर्म ।
आत्महत्या पिण टल गई,
गुण निपज्यो हो यो धर्म रो मर्म । शु. 54॥

भावार्थः—ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि उन लोगो ने जो दृष्टान्त दिया है उसका उत्तर ध्यानपूर्वक सुनो । उन लोगो ने बकरें की प्राणरक्षा और स्त्री की आत्महत्या दोनो को एक समान बतलाया है यह उनका अज्ञान है क्योकि किसी जीव की प्राणरक्षा और आत्महत्या अर्थात् बचाना और मारना ये दोनो कार्य एक समान कभी नही हो सकते। इन दोनो में प्रकाश और अन्धेरा तथा दिन और रात एवं अमृत और जहर के समान महान् अन्तर है । जीवो की रक्षा के लिए मुनि सदा उपदेश देते हैं । दूसरो की रक्षा परोपकार का कार्य है । किन्तु मारना एवं आत्महत्या करना परोपकार का कार्य नही हैं । मुनि के भाव उस जारणी स्त्री को मारने के नही हैं। वह स्वय मोहवश होकर आत्महत्या करती है । परपुरुष के त्याग से नही। मुनि उसकी आत्महत्या के कामी नही हैं किन्तु मुनि तो उस जारणी स्त्री के भी हितचिन्तक हैं । इसलिए मुनि तो उसे भी आत्मघात तथा व्यभिचार सम्बन्धी पाप छुड़ाने के लिए उपदेश देते हैं क्योकि जिस प्रकार मुनि उस परस्त्रीगामी पुरुष के व्यभिचार को छुड़ाना चाहते हैं उसी प्रकार उस पुरुष के साथ दुराचार मे आसक्त उस जारिणी स्त्री के व्यभिचार को भी छुडाना चाहते है । मुनि तो दोनों का हित चाहते है किसी का अहित नही चाहते । मान लीजिये मुनि का उपदेश सुन कर उस जारणी स्त्री ने भी परपुरुषगमन रूप दुराचार का त्याग कर दिया तो कितना बड़ा लाभ हुआ ? कितना महान् उपकार हुआ ?दोनो अर्थात् जार और जारणी व्यभिचार के त्याग से महामोहनीय कर्म के वन्ध से वच गये तथा जारणी स्त्री की आत्महत्या भी टल गई इस प्रकार महान् धर्म का लाभ हुआ ।

जिन लोगों के हृदय में पाप बसा हुआ हो वे सदा पाप की ही कल्पना करते हैं। तेरहपन्थी लोगो की मनोवृत्ति ऐसी दूषित हो गई है कि वे सदा प्रतिकूल और पाप की ही कल्पना करते हैं। 'किसी सबल पुरुष के हाथ से मारे जाते हुए निर्बल पुरुष की रक्षा करना पाप का कार्य है। इसमें वे कल्पना क्या करते हैं कि यदि वह पुरुष बच जायगा तो फिर जीवित रह कर संसार मे जितने पाप-कार्य करेगा वह सब पाप उस बचाने वाले को लगेगा।' इस प्रकार पाप की कल्पना करके रक्षा को वे पाप बताते हैं किन्तु उनके हृदय मे धर्म की कल्पना नही आती कि 'यदि वह पुरुष बच जायगा तो यह बहुत कुछ सम्भव है कि उसके हृदय में वैराग्य की भावना उत्पन्न हो सकती है। इसलिए यदि वह दीक्षा ले लेगा तो कितना धर्मलाभ का कार्य होगा।' इस प्रकार धार्मिक कल्पना करना वे जानते ही नही। मानो उनका हृदय पाप-भावना से इतना मलीन बन गया है कि उसमे धार्मिक कल्पना पैदा ही नही होती। उन्होने व्यभिचारी पुरुष और स्त्री का जो उदाहरण दिया है वह भी धार्मिक-भावनायुक्त अनुकूल रूप में रक्खा जा सकता है। जैसे कि :—

मान लो कोई व्यभिचारी पुरुष व्यभिचारार्थ अपनी प्रेयसी (जारणी स्त्री) के पास जा रहा था। मार्ग मे उसे मुनि मिल गये। उन्होंने व्यभिचार से होने वाली हानिया बता कर उसे उपदेश दिया जिससे उसने परस्त्रीगमन त्याग कर दिया। इसके बाद वह स्त्री के पास गया और मुनि द्वारा बताई गई व्यभिचार की हानिया एव दुष्परिणाम उसे बतलाया और उससे यह भी कहा कि मैंने तो मुनि के उपदेश से व्यभिचार का त्याग कर लिया है। यह सुन कर उस स्त्री के मन मे भी व्यभिचार से घृणा हो गई और व्यभिचार के दुष्परिणामो से वह भी भयभीत हुई। अतः मुनि के पास आकर उसने भी परपुरुष-सेवन का त्याग कर लिया और सदाचारिणी बन गई। इस बात का पता जब उस पुरुष की विवाहिता स्त्री को लगा तब वह प्रसन्न होती हुई मुनि के पास आई और कहने लगी कि आपने बड़ा अच्छा कार्य किया है। आपने मेरे पति को परस्त्रीगमन का त्याग करा दिया, यह आपने बड़ी कृपा की है। मेरा बर्बाद होता हुआ घर बच गया है। मेरे पति दुराचारी हो गये थे और बहुत कहने

सुनने पर भी वे नही मानते थे। इसलिए बहुत कुछ सम्भव था कि मैं भी व्यभिचारिणी हो जाती परन्तु आपकी कृपा से मेरे पति सुमार्ग पर आ गये अतः मैं भी परपुरुष-सेवन का त्याग करती हूं।

इस प्रकार एक व्यभिचारी पुरुष को उपदेश देने से तीन व्यक्ति सुधर गये अर्थात् उस पुरुष और व्यभिचारिणी स्त्री ने व्यभि-चार का त्याग कर दिया और उस पुरुष की पत्नी व्यभिचार में प्रवृत्त होने से बच गई। यह क्या बुरा हुआ ?

मतलब यह है कि जिस प्रकार चोर को उपदेश देने से चोर का हित हुआ और धन के स्वामी का सन्ताप मिट गया तथा उसका आर्त्त-रौद्रध्यान टल गया उसी प्रकार मारने वाले हिंसक को उपदेश देने से हिंसक का और उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणी का दोनो का हित हुआ और उसी प्रकार व्यभिचारी को उपदेश देने से व्यभिचारी पुरुष, उसकी पत्नी तथा व्यभिचारिणी स्त्री तीनो का हित हुआ। इसमे पाप क्या हुआ ?

दूसरी बात यह है कि तेरहपन्थी लोग ऐसे खोटे दृष्टान्त अपने मनगढन्त लगाते हैं जैसा उन्होने दृष्टात दिया है वैसा अर्थात् कोई व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुष के लिए कुए मे पड़ कर मरी हो ऐसा उदाहरण ससारभर मे ढूढने पर एक भी नही मिल सकता। जो स्त्री अपने विवाहित पति को भी छोड सकती है वह अपने जार पुरुष के लिए प्राण दे दे—यह कभी सम्भव ही नही है। इस तरह का उदाहरण देना लोगों को भ्रम मे डालने के लिए है। दर असल में बात यह है कि तेरहपन्थी लोगों को अनुकम्पा से तीव्र द्वेष है। इस-लिए अनुकम्पा को उठाने के लिए वे इस तरह के कुहेतु और कुदृष्टान्त दिया करते हैं। जो भोले लोग हैं वे बिचारे इनके मायाजाल मे फस जाते हैं किन्तु विवेकी पुरुष तो उनकी चालो को समझ जाते हैं इसलिए वे इनके जाल में नही फंसते हैं ॥५१-५४॥

बकरो, नारी बचिया थकां,
गुण निपजे हो टले पाप विकार।

स्वाघाते गुण नीपजे,

सुधमत थीं हो करो जरा विचार ।।शु. 55।।

भावार्थः—हिंसक को उपदेश देने से बकरा बच गया और व्यभिचारी पुरुष को उपदेश देने से उसका पाप-कार्य छूट गया तथा व्यभिचारिणी स्त्री भी बच गई तथा उसका भी पापकर्म छूट गया। यह सब गुण का कार्य है। मुनि तो गुणो के अभिलाषी हैं अतः गुणों की अनुमोदना ही उन्हे प्राप्त होती है। वे दुर्गुणो के कामी नहीं हैं अतः उन्हे दुर्गुणो की अनुमोदना नही लग सकती। जो पुरुष जिस बात का कभी (अभिलाषी) नही है उसको अनुमोदना कैसे लग सकती है ? मुनि तो व्यभिचारी पुरुष और व्यभिचारिणी स्त्री दोनों के व्यभिचाररूप दुर्गुण को मिटा कर सदाचार रूप सद्गुण की प्राप्ति कराने के कामी (अभिलाषी) हैं। अतः गुणो की ही अनुमोदना उन्हे प्राप्त होती है ।।५५।।

मरणो बचावणो एक है,

एतो जाणो हो विकलां रा वेण ।

ज्यां रे भान नहीं धर्म पाप रो,

ज्यां रा फूटा हो हिया रा नेण ।।शु 56।।

भावार्थः—जिनके ज्ञानरूपी नेत्र नही हैं और जिनको धर्म और पाप का कुछ भी ज्ञान नही है ऐसे अज्ञानी ही यह कह सकते हैं कि मरना और बचाना एक ही सरीखा है अर्थात् जो लोग यह कहते हैं कि "हिंसक को उपदेश देने से बकरे की प्राणरक्षा हुई और व्यभिचारी पुरुष को उपदेश देने से व्यभिचारिणी स्त्री कुए में गिर कर मर गई। इन दोनो कार्यो को अर्थात् बकरे की प्राणरक्षा और स्त्री की घात इन दोनो कार्यो को हम एक समान मानते हैं" ऐसा कथन करने वालों को अज्ञानी समझना चाहिए ।।५६।।

मुनि उपकारी वेहू ना,

वेहू जण ना हो मेटया माठा कर्म ।

जो श्रद्धा पामे बेहू जणा,
तो पामे हो संवर नो धर्म ॥शु. 57॥

आरत रुद्र टले बेहू ना,
श्रद्धा योगे हो धर्मध्यानी होय ।
इम तिरण तारण मुनि बेहूना,
उपकारी हो मुनि वेहूना जोय ॥शु. 58॥

भावार्थ:—जिस प्रकार हिंसक को उपदेश देकर मुनि उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा करते हैं इस तरह मुनि दोनों के उपकारी हैं उसी प्रकार मुनि व्यभिचारी पुरुष और स्त्री दोनों का हित चाहते हैं और व्यभिचार से होने वाले महा-मोहनीय कर्मबन्ध से दोनों को बचाते हैं । फिर यदि वे दोनो शुद्ध श्रद्धा को प्राप्त करते हैं तो शुद्ध संवर धर्म को अङ्गीकार करते हैं । इस प्रकार उन दोनो का आर्त्त रौद्रध्यान टल जाता है और शुद्ध श्रद्धा के योग से वे धर्मध्यान को प्राप्त करते हैं । इस प्रकार मुनि दोनो के उपकारी हैं और दोनों का तिरना चाहते हैं ॥५७–५८॥

कदि कर्म उदय बेहू जणा,
संवर श्रद्धा हो पामे नहीं दोय ।
तो भारी पाप बेहू ना टले,
आरत पिण हलको बहु होय ॥शु. 59॥

भावार्थ:—यदि कदाचित् वे दोनों शुद्ध श्रद्धा को प्राप्त न कर सकें तो भी दोनो के भारी पाप टल जाते हैं और आर्त्त रौद्रध्यान भी बहुत हल्का हो जाता है ॥५९॥

उपदेश बेहू माने नहीं,
साधु रे हो उपदेश रो धर्म ।
एक माने एक माने नहीं,
जो माने हो तिण रा टलिया कर्म ॥शु. 60॥

किण री शक्ति नहीं समझण तणी,
तिण रो पिण हो मुनि वंछ्यो हित ।
तेथी वच्छल छहु काया तणा,
परतख प्रोक्षे हो हितकारी चित्त ।।श. 61।।

भावार्थ;—यदि कदाचित् वे दोनों मुनि के उपदेश को न मानें तब भी मुनि के लिए तो कोई हानि नही है क्योंकि उपदेश देना मुनि का धर्म है। उस उपदेश से मुनि धर्मफल को प्राप्त करते हैं। मुनि दोनों के हित की दृष्टि से उपदेश देते हैं। किन्तु उनमें से एक व्यक्ति उनके उपदेश को माने और दूसरा न माने तो उपदेश को मानने वाले व्यक्ति के पापकर्म टल जाते हैं। मुनि के उपदेश को समझने की शक्ति किसी जीव मे नही होती है फिर भी मुनि तो उसका प्रत्यक्ष और परोक्ष दीनो रूप से हित चाहते हैं। इसीलिए मुनि छः काया के वत्सल कहलाते हैं ।।६०–६१।।

सरहद तलाव फोड़ण तणा,
त्याग कराया हो मुनि मेटचा कर्म ।
सरहद तलाव जीवां तणो,
दुख टलियो हो जिन भाख्यो धर्म ।।शु. 62।।

भावार्थः—मुनि उपदेश देकर सरोवर, द्रह तालाब आदि फोड़ने का त्याग कराते हैं। इनको फोड़ने का त्याग करने वाले पुरुष के पापकर्म का वन्ध टलजाता है। और सरोवर, द्रह, तालाब के जीवों का दुःख टल जाता है। यद्यपि सरोवर, द्रह और तालाब आदि के जीवो मे मुनि के उपदेश को समझने की शक्ति नही है फिर भी मुनि तो उन जीवों का भी हित चाहते हैं और उनके दुःख को मिटाते हैं ।।६२।।

नींम्ब आम्बादिक वृक्ष ना,
कराया हो मुनि काटण नेम ।

ते हितकारो बेंहू तण',
तरुवर ने हो मुनि कीनो खेम ।।शु. 63।।

भावार्थः—मुनि ने किसी को नीम, आम आदि वृक्ष काटने के त्याग करा दिये तो त्याग करने वाले व्यक्ति के तत्सम्बन्धी पाप को तो मुनि ने टाल ही दिया और साथ ही वृक्ष को भी क्षेम कर दिया अर्थात् उसके भय से रहित बना दिया । इस प्रकार मुनि उन दोनो के हितकारी हैं ।।६३।।

उपकार समझ शक्ति नहीं,
विकलेन्द्री हो जीवां री जाण ।
मुनि जाणे तस वेदना,
उपदेशे हो हितकारी बखाण ।।शु. 64।।

भावार्थ:—विकलेन्द्रिय अर्थात् एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय इन जीवों में उपकार को समझने की शक्ति नहीं है किन्तु उन्हे छेदन-भेदन करने से जो वेदना होती है उसका ज्ञान मुनि-राज को है । इसलिए लोगो को उपदेश देकर उन्हे उन जीवों के छेदन-भेदन करने का त्याग कराते हैं । इस प्रकार मुनि उपकार को समझने की शक्ति से रहित उन विकलेन्द्रिय जीवों का भी हित चाहते हैं और उनका उपकार करते हैं ।।६४।।

दव देई गांव जलावतां,
उपदेशे हो कराया नेम ।
ते दाहक ग्राम बेहू तणो,
पाप टाली हो उपजायो क्षेम ।।शु. 65।।

भावार्थ:—जैसे कोई व्यक्ति आग लगा कर गांव को जला देने वाला है, मुनि उस पुरुष को उपदेश देकर गांव जलाने का त्याग कराते हैं । जिससे वह पुरुष पाप-कर्मबन्ध से बच जाता है और गांव

जलने से बच जाता है। इस प्रकार मुनि गाव जलाने वाले पुरुष का और गांव का दोनों का हित चाहते हैं।।६५।।

इम मांसादि खावा तणा,
सूंस करावे हो मेटण तस पाप।
वलि मांसे मरता जीव रा,
हितकारी हो मुनि मेटे सन्ताप ।।शु. 66।।

भावार्थ:—जिस प्रकार गांव जलाने वाले व्यक्ति को गांव जलाने का त्याग करा कर मुनि उस पुरुष का और गांव का दोनों का उपकार करते हैं उसी प्रकार मास खाने वाले पुरुष को मांस खाने का त्याग करा कर मुनि उसको पाप से बचाते हैं और उस पुरुष के द्वारा मास के लिए मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा कर उसके दु:ख सन्ताप को मिटाते हैं। इस प्रकार मुनि हिंसक और उसके हाथ से मारे जाने वाले जीव दोनों का हित चाहते हैं।।६६।।

सूत्र भगोती शतक सातवें,
इम भाख्यो हो श्री दीनदयाल ।
निर्दोषण मुनि भोगवे.
छः काया ना हो वांछक करुणाल ।।शु. 67।।

ज्यां जीवां रा शरीर रो आहार ले,
त्यां जीवां ना मुनि वंछक होय ।
हिंसा छूट्या वच्या जीवड़ा,
उपकारी हो मुनि रक्षक जोय ।।शु. 68।।

भावार्थ:—श्री भगवती सूत्र के सातवें शतक मे श्री तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया है कि "निर्दोष आहार लेने से मुनि छ: काया का रक्षक होता है" क्योंकि जिन जीवो के शरीर से आहार बनता है उन जीवों के सचित्त शरीर को मुनि ग्रहण नही करते इसलिए मुनि उन जीवों के हितचिन्तक कहलाते हैं। इसी प्रकार हिंसक को हिंसा का

त्याग करा देने से उसके हाथ से मारे जाने वाले जीव बच जाते हैं मुनि उन जीवों के उपकारी और रक्षक कहलाते हैं। जिस प्रकार मुनि हिंसक को हिंसा के पाप से बचाते हैं उसी प्रकार उसके हाथ से मारे जाने वाले जीवो की रक्षा भी चाहते हैं तभी 'छःकाय रक्षक' और 'छःकाय प्रतिपालक' ये मुनि के विशेषण भी सार्थक होते हैं ॥६७-६८॥

जीव मारण में हो हिंसा कही,
नहीं मारे हो दया रा परिणाम ।
मरता जीव बचाविया,
मनसा वाचा हो दया रो काम ॥शु. 69॥

भावार्थः—जीवो को मारना हिंसा कहलाती है और जीवों को न मारना दया कहलाती है तथा मरते हुए जीव को बचाना मनसा वाचा दया कहलाती है अर्थात् जो व्यक्ति जीवो को नही मारता वह उन जीवों पर अपने शरीर की अपेक्षा यानि शारीरिक दया करता है और जो व्यक्ति हिंसक को उपदेश देकर उसके हाथ से मारे जाने वाले जीवों की रक्षा करता है वह उन जीवो पर अपने मन और वचन से दया करता है क्योकि उसके मन मे उन जीवो को बचाने के परिणाम होते हैं और वचन से वह उपदेश देकर उन जीवो की रक्षा करता ही है। इस प्रकार मरते हुए जीव की रक्षा करने से तथा किसी जीव की हिंसा न करने से मुनि मन, वचन, काया से दयावान् कहलाते है ॥६९॥

***केईक इण में इम कहे,**
जीवां काजे हो नहीं दां उपदेश ।

---

* जैसा कि वह कहते हैं :—
केईक अज्ञानी इम कहे,
छः काया काजे हो देवां धर्म उपदेश ।
एकण जीव ने समझाविया,
मिट जावे हो घणा जीवा रा क्लेश ॥

एक हिंसक ने समझाय ने,

नहीं मेटां हो घणा जीवां रा क्लेश ॥शु. 70॥

भावार्थ:—वे लोग कहते हैं कि 'छः काय के जीवो की शान्ति के लिए हम उपदेश नही देते हैं और एक हिंसक को समझाकर उसके हाथ से मारे जाने वाले बहुत से जीवों का क्लेश मिटाने के लिए भी उपदेश नही देते हैं।' तेरहपन्थ मत के प्रवर्त्तक भीषणजी ने 'अनुकम्पा ढाल' नामक पुस्तक में इस विषय मे ढाल जोड रक्खी है जिसके दो पद्य यहा नीचे नोट मे उद्धृत किये गये हैं। उनका मतलब यह हैः—

"कुछ लोग कहते है कि वे छः काय के जीवों के घर मे शान्ति होने के लिए धर्म का उपदेश देते हैं क्योंकि एक जीव को समझा देने से वहुत जीवों का क्लेश मिट जाता है किन्तु छः काय से जीवो के घरो मे शान्ति होने के लिए उपदेश देना अन्यतीर्थी लोगों का धर्म वतलाता है, जैनधर्म नही बतलाता। इसलिए छः काय के घरों में शान्ति होने के लिए उपदेश देने वाले जैनधर्म के रहस्य को नहीं जानते, वे भूले हुए है और उनके अशुभ कम का उदय हुआ है।"

इस प्रकार की अनर्गल बाते लिखकर भीषणजी ने जैनधर्म के विषय मे भ्रम फैलाया है ॥७०॥

सब जीवां रे शान्ति होवे,

एहवो भाखे हो दयाधर्मी धर्म।

भव्य जीवां तुमे जिनधर्म ओलखो ॥१६॥

छः काय घरे शान्ति हुवे,

एवो भाखे हो अन्यतीर्थी धर्म।

त्यां भेद न पायो जिनधर्म रो,

ते तो भूल्या हो उदय आया अशुभ कर्म ॥१७॥

(अनु० ढाल ५ गाथा १६–१७)

कुगुरु तेने पापी कहे,
बतावे हो मिथ्यात रो भ्रम ।।शु. 71।।

भावार्थः—दया को प्रधान मानने वाला जैनधर्म तो यह बतलाता है कि "सभी जीवो को शान्ति हो' इस प्रकार का जैन मुनि उपदेश देते हैं किन्तु सभी जीवो के शान्ति का उपदेश देने वाले को वे लोग पापी और मिथ्यात्वी कहते है यह उन लोगों की कितनी अज्ञानता है ।।७१।।

हिवे सद्गुरु कहे सांभलो,
सूतर थी हो निरणो लेवो जोय ।
छः काया रे शान्ति कारणे,
उपदेशे हो दयाधर्म ते होय ।।शु. 72।।

सूयगडाङ्ग श्रुतस्कन्ध दूसरे,
अध्ययन छठे हो भाख्यो पाठ रे मांय ।
त्रस थावर खेमङ्कर वीरजी,
धर्म भाखे हो मत हणो तस वाय ।।शु. 73।।

त्रस थावर शान्ति कारणे,
करुणा कही दसमा अंग रे मांय ।
ये सहू पाठ उत्थाप ने,
मिथ्यामति हो बोले झूठा वाय ।।शु. 74।।

भावार्थः—सद्गुरु कहते हैं कि हे भव्य जीवो ! उन लोगों ने जैनजगत् मे जो झूठा भ्रम फैलाया है उसका उत्तर सूत्रपाठ की साक्षीपूर्वक दिया जाता है । अतः उसे ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।

सूयगडाङ्ग सूत्र मे मरते जीव की प्राणरक्षा करने के लिए एवं छः काय जीवों की शान्ति के लिए भगवान् का उपदेश देना स्पष्ट लिखा है । वह गाथा यह है :—

समिच्च लोगं तस थावराणं, खेमङ्करे समणे माहणे वा ।
आइक्खमाणे वि सहस्समज्झे, एगंतयं सारंयति तहच्चे ।।

टीकाः—"स्यादेतत् धर्मदेशनया प्राणिनां कश्चिदुपकारो भवत्युत नेति ? भवतीत्याह–'समिच्च लोग' मित्यादि सम्यग्यथावस्थितं लोगं षड्द्रव्यात्मकं मत्वा अवगम्य केवलालोकेन परिच्छिद्य त्रस्यन्तीति त्रसाः त्रसनामकर्मोदयाद् द्वीन्द्रियादयः, तथा तिष्ठन्तीति स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयात् स्थावराः पृथिव्यादयस्तेषामुभयेषामपि जन्तूनां क्षेमं शान्तिः रक्षा तत्करणशील. क्षेमकरः ।"

अर्थात्—भगवान् महावीर स्वामी के धर्मोपदेश से प्राणियों का कुछ उपहार होता था या नही ?

उत्तर दिया जाता है कि होता था । भगवान् महावीरस्वामी केवलज्ञान से षड्द्रव्यात्मक लोक को यथार्थरूप से जानकर द्वीन्द्रियादिक त्रस और पृथ्वीकाय आदि स्थावर प्राणियों की स्वभाव से ही रक्षा, शान्ति एव क्षेम करते थे ।"

इस गाथा में कहा है कि भगवान् महावीर स्वामी त्रस और स्थावर सम्पूर्ण प्राणियो के क्षेम यानि रक्षा करने वाले थे । टीकाकार ने भी लिखा है कि :—

"क्षेमं शान्तिः रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंकरः"

अर्थात्—भगवान् सब प्राणियों का क्षेम, शान्ति एवं रक्षा करने वाले थे ।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि भगवान् मरते प्राणी की प्राण-रक्षा के लिए भी उपदेश देते थे, केवल हिंसक को हिंसा के पाप से छुड़ाने के लिए ही नही ।

यदि कोई यह कहे कि हिंसा के पाप से बचा देना ही जीव

की रक्षा या क्षेम है, मरने से बचाना नहीं तो उसको कहना चाहिए कि इस गाथा मे स्थावर जीवो का भी क्षेम करने वाला भगवान् को कहा है। यदि वे मरते जीव की प्राणरक्षा के लिए उपदेश नही देते थे तो वे स्थावर जीवों का क्षेम करने वाले क्यो कहे गये? क्योकि स्थावर जीवो में उपदेश-ग्रहण करने की योग्यता नही होती। इसलिए हिंसा के पाप से बचाने के लिए उनको उपदेश देना नही घट सकता किन्तु उनकी प्राणरक्षा के लिए उपदेश देना ही घटित होता है। अतः भगवान् मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए भी उपदेश देते थे। यह इस गाथा से स्पष्ट सिद्ध होता है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में यह पाठ आया है कि:—

"सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।"

अर्थात्—ससार के सभी जीवों की रक्षारूप दया के लिए तीर्थंकर भगवान् ने प्रवचन फरमाया है।

यदि हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले जीवों की रक्षा करने के लिए उपदेश देना एकान्त पाप होता तो इस पाठ में संसार के सभी जीवो की रक्षारूप दया के लिए जैनागम का कथन होना क्यों कहा जाता?

इस प्रकार शास्त्रों मे जगह-जगह मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए धर्मोपदेश देने का कथन किया गया है। इसलिए मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए उपदेश देने मे पाप कहने वालों को सूत्रपाठो के उत्थापक, मिथ्या-भाषण करने वाले मिथ्यात्वी समझना चाहिए ॥७२-७४॥

※"शान्ति न होवे छः काय रे"

※ जैसा कि वे कहते हैं :—

आगे अरिहन्त अनन्ता हुवा,
    कहता-कहता हो नही आवे त्यां रो पार।
ते आप तरया और तारिया,
    छः काया रे हो शान्ति न हुई लिगार ॥

(अनु० ढाल ५ गाथा २१)

एवा अनघड़ हो घरडावे टोल ।
मिथ्या उदय जे जीव रे,
तेना मुखथीं हो एवा निकले बोल ।।शु. 75।।

भावार्थः—"छः काय जीवों के शान्ति नही हो सकती ।" ऐसे अनर्गल वचन उन्ही लोगो के मुख से निकल सकते हैं जिनके भारी मिथ्यात्व का उदय है ।।७५।।

व्यवहार शान्ति परजीव ने,
निश्चय थीं हो निज री ते होय ।
व्यवहार शान्ति उथापतां,
निश्चय पिण हो खोय बैठा सोय ।।शु 76।।

भावार्थः—मरते प्राणी की प्राण की रक्षा करना व्यवहार में परजीव की शान्ति कहलाती है किन्तु निश्चय मे त वह निजात्मा की ही शान्ति है । जिन लोगो ने व्यवहारशान्ति को उठा दी है वे लोग निजात्मा की शान्ति भी खो बैठे हैं ।।७६।।

आगे जिन अनन्ता हुआ,
छः काया रा हो शान्ति करतार ।
दुःख मेटरण उपदेश थी,
जगवच्छल हो जग ना सुखकार । शु. 77।।

जगनाथ जगबन्धु कह्या,
नन्दीसूत्रे हो गाथा प्रथम मांय ।
सव जीव राखरण उपदेश थी,
सुख थापे हो बन्धु पद पाय ।।शु. 78।।

भावार्थः—गतकाल मे अनन्त तीर्थंकर भगवान् हो गये हैं वे छः काय जीवों के शान्तिकर्त्ता थे । श्री नन्दीसूत्र की प्रथम गाथा मे

तीर्थंकर भगवान् के लिए जगत्वत्सल, जगन्नाथ, जगद्बन्धु आदि विशेषण दिये गये हैं जिनका अर्थ यह है कि अपने उपदेश द्वारा दुःखी प्राणियों के दुःखों को दूर करने वाले होने से वे जगत्वत्सल, जगत्सुखकर्त्ता कहलाते है और समस्त जीवों की रक्षा का उपदेश देकर उन्हे सुख उपजाने के कारण वे जगद्बन्धु कहलाते हैं ।।७७–७८।।

शान्तिनाथ प्रभु सोलवां

शान्ति करता हो सब लोक रे मांय ।

उत्तराध्ययन में देख लो,

गणधरजी हो गुण ज्यांरा गाय ।।शु. 79।।

भावार्थ—श्री उत्तराध्ययन सूत्र के अठारहवें अध्ययन में कहा गया है कि:—

"संती सतिकरे लोए पत्तो गइमणुत्तर ।"

अर्थात्:—"सब लोक में शान्ति करने वाले सोलहवे तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ मोक्ष को प्राप्त हुए ।"

इस प्रकार गणधर देवों ने तीर्थङ्कर भगवान् के गुणों का वर्णन किया है । उन्होंने तीर्थङ्करों को सब लोक मे शान्ति करने वाले बतलाये हैं । अत: जो लोग यह कहते है कि "आगे अनन्त तीर्थङ्कर हो गये हैं किन्तु किसी ने छःकाय जीवों के शान्ति नही की" यह कथन शास्त्र-विरुद्ध एकान्त मिथ्या है ।।७९।।

कही कही ने कितना कहूं,

छः काया रे हो शान्तिकरता रा नाम ।

जो शान्ति न होती छः काय रे,

शान्तिकरता हो किम होता श्याम ।।शु. 80 ।

भावार्थ.—ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि छःकाय जीवों के शान्ति करने वाले कितने महापुरुषों के नाम गिनाये जाए ? क्योंकि गतकाल मे अनन्त तीर्थङ्कर हो चुके हैं वे सब छःकाय जीवों के शान्ति करने वाले थे । अत: जो लोग यह कहते है कि 'छःकाय जीवों के शान्ति नही होती' उनका कथन मिथ्या है क्योंकि यदि छःकाय जीवों के शान्ति न होती तो तीर्थङ्कर भगवान् शान्तिकर्त्ता कैसे कहलाते ? अत:

छ:काय जीवों के शान्ति नही होती' ऐसा कहना सूत्रविरुद्ध एकान्त मिथ्या है ॥८०॥

मिथ्या हेतु खण्डवा,
वलि भाखूं हो सूत्र री साख ।
सत्य स्वरूप ने ओलखी,
भव्य छोड़ो हो मिथ्यात रो पाख ॥शु. 81॥

भावार्थ :—छ:काय जीवों के शान्ति नही होती' इस मिथ्या कथन के खण्डन के लिए शास्त्र का एक उदाहरण दिया जाता है । उससे सत्य स्वरूप को समझकर भव्य जीवो का कर्त्तव्य है कि वे मिथ्या पक्ष को छोड़ दे ॥८१॥

—: कथा :—

राजप्रश्नीय सूत्र में राजा परदेशी का वर्णन आया है वह इस प्रकार है :—

श्वेताम्बिका नाम की एक नगरी थी । नगरी से उत्तरपूर्व मे मृगवन नाम का एक उद्यान था । नगरी के राजा का नाम परदेशी था । वह बडा पापी था । धार्मिक बातों पर उसे विश्वास न था । साधु-साध्वियों से वह घृणा करता था । राजा के चित्त नाम का सारथि था । वह बडा चतुर था । राज्य का प्रत्येक कार्य उसकी सलाह से होता था । उन्ही दिनो कुणाल देश की श्रावस्ती नामक नगरी मे जितशत्रु राजा राज्य करता था । एक दिन राजा परदेशी चित्त सारथि को जितशत्रु के पास एक बहुमूल्य भेंट देने के लिए तथा उसकी राज्य-व्यवस्था देखने के लिए भेजा ।

जिस समय चित्त सारथि श्रावस्ती मे ठहरा हुआ था उस समय तेईसवे तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य श्री केशीश्रमण अपने पाच-सौ शिष्यों के साथ वहा पधारे । उनका धर्मोपदेश सुनकर चित्त सारथि उनका उपासक वन गया । उसने श्रावक के वारह व्रत अङ्गीकार कर लिए ।

कुछ दिनों बाद चित्त सारथि ने श्वेताम्बिका लौटने का विचार किया। उसने जितशत्रु से लौटने की अनुमति मागी। जितशत्रु ने एक बहुमूल्य भेंट परदेशी के लिए देकर चित्त सारथि को विदा किया। चित्त सारथि केशीश्रमण को वन्दना करने गया। उसने केशीश्रमण से श्वेताम्बिका पधारने की विनती की और प्रस्थान कर दिया।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए केशीश्रमण अपने शिष्यों सहित श्वेताम्बिका के मृगवन उद्यान में पधारे। उद्यान-रक्षकों ने इसकी सूचना चित्त सारथि को दी। केशीश्रमण के आगमन की सूचना पाकर चित्त सारथि को बड़ी प्रसन्नता हुई। आनन्दित होता हुआ वह उद्यान मे पहुचा और भक्तिपूर्वक केशीश्रमण को वन्दना—नमस्कार किया। तत्पश्चात् केशीश्रमण न धर्मोपदेश फरमाया जिसे सुन कर चित्त सारथि बड़ा प्रसन्न हुआ। वह केशीश्रमण से प्रार्थना करने लगा :—

"जइ णं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं खलु होज्जा पएसिस्स रण्णो तेसिं च बहूणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपक्खीसरिसवाणं। त जइ णं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं फलं होज्जा तेसिं च बहूणं समणमाहणभिक्खुयाण। त जइ णं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स बहुगुणतरं होज्जा सव्वस्स वि जणवयस्स।"

(राजप्रश्नीय सूत्र)

अर्थः—"हे देवानुप्रिय ! यदि आप परदेशी राजा को धर्म सुनावें तो बहुत गुणयुक्त फल हो। यह किसे हो ? खुद राजा परदेशी को गुण हो और उसके हाथ से मारे जाने वाले द्विपद चतुष्पद, मृग, पशु-पक्षी और सरीसृपों को हो। हे देवानुप्रिय ! यदि आप राजा परदेशी को धर्म सुनावे तो बहुत से श्रमण, माहण, और भिक्षुकों को तथा राजा परदेशी को और उनके सम्पूर्ण राष्ट्र को बहुत गुणयुक्त फल हो।"

चित्त सारथि की उपरोक्त प्रार्थना को सुन कर केशीश्रमण ने

उत्तर दिया कि तुम्हारा कहना यथार्थ है किन्तु राजा के हमारे पास बिना आये हम क्या कर सकते हैं ? चित्त सारथि ने किसी उपाय से राजा को वहां लाने का विचार किया ।

एक दिन चित्त सारथि कुछ नये घोडों की चाल दिखाने के बहाने राजा को उधर ले आया । राजा बहुत थक गया था इसलिए विश्राम करने मृगवन मे चला गया । वहा केशीश्रमण और उनकी पर्षदा को देख कर राजा को बडा आश्चर्य हुआ । पहले तो उसने श्रमण और श्रावक दोनो को मूर्ख समझा किन्तु चित्त सारथि के समझाने पर उसकी जिज्ञासावृत्ति वढी । वह केशीश्रमण के पास गया और नम्रता से एक स्थान पर बैठ गया । केशीश्रमण के धर्मोपदेश को सुना । 'जीव और शरीर भिन्न-भिन्न हैं या एक' इस प्रकार के कई प्रश्न किये । केशीश्रमण ने बडी युक्तिपूर्वक राजा के प्रश्नों का उत्तर देकर उसका पूर्ण समाधान कर दिया । अपनी शङ्काओं का समाधान हो जाने पर राजा परदेशी केशीश्रमण का उपासक बन गया । उसने श्रावक के व्रत अङ्गीकार कर लिये । अब वह न्याय-पूर्वक राज्य करने लगा । प्रजा मे सब तरह से शान्ति छा गई, सारी प्रजा बहुत सुखी हो गई ।

राजा धर्मध्यानपूर्वक अपना जीवन बिताने लगा । अन्तिम समय शुभभावों से काल करके राजा सौधर्म देवलोक के सूर्याभ नामक विमान में उत्पन्न हुआ । वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त होगा ।

चउनाणी श्रुतकेवली,
जगतारक हो केशी गुरुराय ।
सितंविका रा बाग में,
धर्मदेशना हो दीनी सुखदाय ॥ध्रु. 82॥

भावार्थः—राजा को भेट देनें के लिए श्रावस्ती में गये हुए चित्त सारथि ने चार ज्ञान के धारक, श्रुतकेवली श्री केशीश्रमण को श्वेताम्बिका पधारने की विनती की। उनकी विनती को स्वीकार कर केशीश्रमण श्वेताम्बिका पधारे और मृगवन उद्यान में ठहरे। वहां उन्होंने सब जीवों के हितकारी धर्मोपदेश फरमाया ॥८२॥

चित्त श्रावक सुण हृषियो,
करे विनती हो सुनिजे गुरुराय।
परदेशी अति पापियो,
पाप करने हो अति हृषित थाय ॥शु. 83॥

अधर्मी यो राजवी,
अधर्म नी हो करे निशदिन थाप।
रुधिर नीर एक सम गिणे,
गाढा गाढा हो स्वामी कर रयो पाप ॥शु. 84॥

यो तो नर पशु पंखी नी,
वृत्ति आदि हो छेदी हर्षाय।
विनयभाव तिण में नहीं,
तेथी गुरुजन हो आदर नहीं पाय ॥शु. 85॥

देश दुःखी इण राय थी,
करड़ा लेवे हो हासिल दुःखदाय।
तेने धर्म सुणाविया,
बहु गुणकर हो होसी मुनिराय ॥शु 86॥

भावार्थः—केशीश्रमण के धर्मोपदेश को सुन कर चित्त सारथि का चित्त अति हर्षित हुआ। वह उनसे प्रार्थना करने लगा कि हे स्वामिन्! हमारा राजा परदेशी अति पापिष्ठ है और पाप-कार्य करके अति हर्षित होता है। वह बड़ा अधर्मी है और सदा अधर्म की स्थापना

करता है। रुधिर से उसकें हाथ रगे रहते हैं। वह रुधिर और पानी को एक समान गिनता है और महापापकर्म करता है। उसने मनुष्य पशु-पक्षी आदि सबकी वृत्ति का उच्छेद कर दिया है। माता पिता गुरुजन आदि के प्रति उसमे लेशमात्र भी विनयभाव नही है। प्रजा से वह अति कठोर कर लेता है जिससे सारा देश दुःखी हो रहा है। इसलिए हे स्वामिन् ! आप राजा परदेशी को धर्म सुनावे। उसे धर्म सुनाने से बहुत गुण होगा ॥८३–८६॥

राजा परदेशी को धर्म सुनाने से किन-किन को गुण होगा ? जिसका विवरण सूत्र मे इस प्रकार खोला गया है:—

गुण होसी परदेशी राय ने,
पशु पंखी हो नर ने गुण थाय।
श्रमण माहण भिखारी ने,
बहु गुणतर हो होसी सुखदाय ॥शु. 87॥

देश रे बहु गुण उपजसी,
हो जासी हो करड़ा हासिल दूर।
राय, जीव, भिक्षु, देश रे,
गुण हेते हो धर्म भाखो सनूर ॥शु. 88॥

भावार्थ:—१. स्वयं राजा परदेशी को गुण होगा। २. मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जीवो को गुण होगा। ३. श्रमण, माहण और भिखारियो को गुण होगा। ४. कठोर हासिल के बन्द हो जाने से सारे देश को बहुत गुण होगा। इस प्रकार हे स्वामिन् ! आपके धर्मोपदेश सुनाने से राजा, प्रजा, श्रमण माहण भिखारी और समस्त देश को बहुत गुण होगा। अतः आप राजा परदेशी को धर्मोपदेश सुनावें ॥८७-८८॥

राजा को किस प्रकार गुण होगा सो बतलाते है :—

जीव मारण परिणाम थी,
राजा रे हो माठा लागे पाप।

उपदेश थी टल जावसी,

गुण पासी हो परदेशी आप ।।शु. 89।।

भावार्थः—जीवों को मारने रूप क्रूर परिणाम राजा के हृदय में उत्पन्न होते हैं जिससे उसे गाढ पापकर्मों का बन्ध होता है । वह आपके उपदेश से टल जायगा । इस प्रकार स्वय राजा परदेशी को गुण होगा ।।८९।।

जीवों को किस प्रकार गुण होगा सो बतलाते हैं :—

राय उपद्रव ना कोप थी,

मनुष्यादिक ने उपजे घणा क्लेश ।

तेथी पापकर्म संचो करे,

राजा ऊपर हो घणो उपजे द्वेष ।।शु. 90।।

यां रो पाप क्लेश मिट जावसी,

राजा ऊपर हो मिट जासी द्वेष ।

जीवां ने बहुगुण होवसी,

मुनिसरजी हो थारे उपदेश ।।शु. 91।।

भावार्थः—राजा मनुष्यादि जीवों पर अत्याचार करता है और अनेक प्रकार के उपद्रवो द्वारा उन्हे पीड़ित करता है जिससे उन जीवो को क्लेश एवं दुःख होता है और उनके हृदय में राजा पर द्वेष उत्पन्न होता है जिससे वे पाप-संचय करते है । हे भगवन् ! आपके उपदेश से उन जीवों का क्लेश मिट जायगा और राजा पर उत्पन्न होने वाला द्वेष मिट जायगा । इस प्रकार उन जीवों का बहुत गुण होगा ।।९०-९१।।

श्रमण, माहण, भिखारी को किस प्रकार गुण होगा सो बतलाते है :—

वृत्तिछेद नृप करड़ी करे,

तेथी बांधे हो मेला पापकर्म ।

वृत्तिछेद राय छोड़सी,
उपदेशो हो स्वामी निर्मल धर्म ।।शु. 92।।

वृत्ति टूटां दुखिया थका,
श्रमणादि हो करे हाय विलाप ।
निशदिन कोपे राय पे,
खोटी लेश्या हो खोटा बांधे पाप ।।मो. 93।।

ते सगला ही शान्ति पावसी,
मिट जासी हो खोटा परिणाम ।
तेथी महागुण श्रमण माहण रे,
भिखारी रे हो होसी गुण रो धाम ।।शु. 94।।

भावार्थः—इस समय राजा श्रमण, माहण, भिखारी लोगों की वृत्ति (आजीविका) का छेद करता है । वृत्तिछेद होने से दुःखी बने हुए वे हाय-त्राय एवं विलाप करते हैं । राजा पर क्रोध करते हैं । इस प्रकार खोटी लेश्या और बुरे परिणामो के उत्पन्न होने से उन लोगों के पाप-कर्म का बन्ध होता है । हे स्वामिन् ! आपके उपदेश से जब राजा वृत्तिछेद करना छोड़ देगा तो उन सब लोगो के शान्ति हो जायगी । उनकी बुरी लेश्या एवं बुरे परिणाम मिट जावेंगे । इस प्रकार राजा परदेशी को उपदेश देने से श्रमण, माहण और भिखारी लोगो को बहुत गुण होगा । अत हे स्वामिन् ! आप राजा परदेशी को उपदेश दें ।।९२-९४।।

देश को किस प्रकार गुण होगा सो बतलाते हैं :—

देश दुःखी राजा कियो,
करड़ा हासिल हो बांधे करड़ा पाप ।
ते छोड़ देसी उपदेश थी,
तेथी टलसीहो तेना पाप सन्ताप ।।शु. 95।।

देशवासी राजा थकी,

निश्य पावे हो गाढा सन्ताप ।

राजा पर कोपे घणा,

तेथी बन्धे हो घणा गाढ पाप ।।शु. 96।।

देश-कलह मिट जावसी,

टल जासी हो मेला पाप विचार ।

देश ने बहुगुण निपजसी,

तुम करो हो स्वामी धर्म उच्चार ।।शु. 97।।

भावार्थ :—कठोर कर (हासिल) वगैरह लेने से सारा देश दुःखी हो गया है । देशवासी सभी लोग महान् सन्ताप को प्राप्त हो रहे हैं और राजा पर क्रोध करते हैं जिससे उन्हे महापाप—कर्मबन्ध होता है । हे भगवन् ! आपके उपदेश से राजा कठोर कर (हासिल) आदि लेना छोड देगा तो देशवासियो का पाप, सन्ताप और बुरे परिणाम जावेंगे । इस प्रकार सारे देश को बहुत गुण होगा । अतः भगवन् ! आप राजा परदेशी को धर्मोपदेश फरमावें ।।९५—९७।।

चित्त विनती करी शुद्ध भाव थी,

शुद्ध श्रद्धा री हो तुमे करो पिछाण ।

व्रतधारी श्रावक मोटको,

समकितधर हो गुणरत्नां री खाण ।।शु. 98।।

भावार्थः—गुणरत्नो के भण्डार, समकित-रत्न को धारण करनें वाले, बारह व्रतधारी चित्त श्रावक ने शुद्ध भावपूर्वक केशीश्रमण से विनती की थी कि हे भगवन् ! आप राजा परदेशी को धर्म सुनावें जिससे स्वयं राजा को, उसके हाथ से मारे जाने वाले बहुत-से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु-पक्षी, सरीसृपादि को और श्रमण, माहण, भिखारी, को तथा सम्पूर्ण देश को बहुत गुणयुक्त फल हो ।।९८।।

जो जीव भिखारी देश री,

करुणा में हो नहीं श्रद्धतो धर्म ।

अधर्म अर्ज तिण किम करी,

जिन वचनां रो हो ते तो जाणतो मर्म ।।शु. 99।।

भावार्थ:—चित्त श्रावक ने जो विनती की है उसका अर्थ स्पष्ट है कि राजा परदेशी को धर्म सुनाने से वह हिंसा करना छोड़कर हिंसा के पाप से बच जायगा और उसके हाथ से मारे जाने वाले द्विपद, चतुष्पद आदि प्राणियों की प्राणरक्षा हो जायगी । इसलिए राजा परदेशी को हिंसा के पाप से बचने का गुण होगा और उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों को प्राणरक्षारूप गुण होगा । इन दोनों ही लाभ के लिए चित्त श्रावक ने केशीश्रमण से राजा परदेशी को धर्म सुनाने की प्रार्थना की है, केवल परदेशी को हिंसा के पाप से बचाने के लिए ही नही । अत: हिंसक के हाथ मारे जाने वाले प्राणियों की प्राणरक्षा के लिए भी साधु उपदेश देते हैं सिर्फ हिंसक को हिंसा के पाप से बचाने के लिए ही नही । यह चित्त श्रावक की प्रार्थना के लिए आये हुए राजप्रश्नोय सूत्र के मूलपाठ से स्पष्ट सिद्ध होता है ।

यदि कोई यह कहे कि यह पाठ चित्त श्रावक की प्रार्थना को बतलाने के लिए आया है । इसलिए यद्यपि इस पाठ में द्विपद चतुष्पद आदि प्राणियों की प्राणरक्षा के लिए केशी स्वामी से धर्मोपदेश देना सिद्ध नही हो सकता क्योंकि चित्त श्रावक अज्ञानवश भी मरते जीव की रक्षा करने के लिए धर्मोपदेश देने की मुनि से प्रार्थना कर सकता है तो इसका उत्तर यह है चित्त प्रधान कोई मामूली मनुष्य नहीं था किन्तु बारह व्रतधारी श्रावक था । वह जीवरक्षा मे धर्म या अधर्म होना जानता था । अत: इस पाठ से मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए धर्मोपदेश देना स्पष्ट सिद्ध होता है ।।९९।।

जीव बचावण कारणे,

उपदेशे हो चित्त श्रद्धतो पाप ।

चौनाणी गुरु आगले,

विनती करतो इणविध ते साफ ।।शु. 100।।

स्वामी हिंसा छोड़ावो राय री,
परदेशी हो होसी गुण रो धार ।
जीव बचे मरता थका,
त्यां जीवां रे हो गुण नाहीं लिगार ।।शु. 101।।

तिम श्रमण भिखारी देश रे,
गुण श्रद्धयां हो स्वामी लागे मिथ्यात ।
केवल राय ने तारणो,
या श्रद्धा हो स्वामी परम विख्यात ।।शु. 102।।

भावार्थ :—मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने के लिए उपदेश देने मे यदि चित्त श्रावक पाप मानता तो वह चार ज्ञान के धारक केशीश्रमण के सामने इस तरह विनती करता कि "हे स्वामिन् ! परदेशी राजा की हिंसा को छुड़ाने के लिये आप उसे उपदेश सुनावें ताकि वह गुणो का धारक बनेगा एवं उसे गुण होगा । किन्तु उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा होने मे कुछ भी गुण नही है और इसी प्रकार श्रमण, माहण, भिखारी को तथा देश को कोई गुण नही है बल्कि मरते प्राणी की प्राणरक्षा मे तथा श्रमण, माहण, भिखारी के तथा देश सन्ताप को मिटानें मे गुण मानने से मिथ्यात्व लगता है । इसलिए हे स्वामिन् ! सिर्फ राजा के पाप को टालने के लिए और राजा को तारने के लिए उपदेश देने मे धर्म मानना यही शुद्ध श्रद्धा है ।।१००–१०२।।"

पिण चित्त इम नही भावियो,
ते तो श्रद्धतो हो जीव बचियां मे धर्म ।
तेथी विनती करी गुरुराय ने,
जीवां रे हो कह्यो गुण रो मर्म ।।शु. 103।।

भावार्थ :—परन्तु चित्त श्रावक ने उपरोक्त रूप से विनती नही की क्योंकि वह तो जीव बचाने में धर्म श्रद्धता था इसलिए चार ज्ञान के धारक गुरु महाराज के सामने उसने यह विनती की थी कि

हे भगवन् ! राजा परदेशी को उपदेश देने से उसे स्वयं को गुण होगा और उसके हाथ मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा हो जायगी जिससे उन जीवो को भी गुण होगा ॥१०३॥

जीव बचावे ते पाप में,
या श्रद्धा हो श्रावक रीं नांय ।
जीव बचे त्यांने गुण होवे,
या श्रद्धा हो चित्त रीं सुखदाय ॥शु. 104॥

जीव बचावणो धर्म में,
दुखिया रो हो ते तो जाण मर्म ।
सगलां रे गुण रे कारणे,
कीधो विनती हो उपदेशो धर्म ॥शु. 105॥

भावार्थ :—'मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने मे पाप होता है' ऐसी श्रद्धा चित्त श्रावक की नही थी किन्तु 'जीवो की रक्षा करने में धर्म होता है' ऐसी चित्त श्रावक की श्रद्धा थी इसीलिए उसने सबके गुण होने के लिये विनती की थी अर्थात् उसने केशीस्वामी से विनती की थी कि हे भगवन् ! आप राजा परदेशी को धर्म सुनावें जिससे स्वयं राजा को गुण होगा, उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा हो जाने से उन जीवों को गुण होगा, वृत्तिछेद के रुक जाने से श्रमण माहण भिखारी को गुण होगा और कठोर कर (हासिल) आदि के मिट जाने से सम्पूर्ण देश को गुण होगा ॥१०४–१०५॥

जो कसर होती इण कथन में,
केशी स्वामी हो कहता तिण वार ।
जीव, भिखारी, देश रे,
गुण श्रद्धा हो म्हे तो नहीं लगार ॥शु. 106॥

सगलां रे गुण रे कारणे,
विनती कीधां हो समकित गुण जाय ।

थारे श्रद्धा में दूषण ऊपनो,
आलोवो हो जिनधर्म रे न्याय ।।शु. 107।।

पिण चित्त श्रावक जिम श्रद्धता,
तिम श्रद्धता हो श्री केशी स्वाम ।
दोनों री श्रद्धा एक थी,
तेथीं नहीं लीनो हो निषेध रो नाम ।।शु. 108।।

मुनि जीव, भिखारी, देश रे,
गुण हेते हो उपदेशे धर्म ।
या श्रद्धा चित्त शुद्ध जाणता,
विनती कीधी हो जैनधर्म रे मर्म ।।मो. 109।।

केशीश्रमण गुरुराज री,
चित्तजी री हो श्रद्धा थी एक ।
विनती मानी भाव थी,
चार वातां रो हो बतायो लेख ।।शु. 110।।

भावार्थः—चित्त श्रावक ने केशी स्वामी के सामने चार बातों के लिए अर्थात्—(१) राजा की हिसा छुड़ाने के लिए, (२) उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों की रक्षा के लिए, (३) श्रमण, माहण, भिखारी के सन्ताप को मिटाने के लिए और (४) देश सुख-शान्ति के लिए विनती की थी। यदि इस विनती मे किसी प्रकार की त्रुटि होती अर्थात् मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने मे एकान्त पाप होता तो केशी स्वामी चित्त श्रावक को उसी समय समझा देते कि 'हे देवानुप्रिय! राजा परदेशी की हिंसा छुड़ाने के लिए धर्मोपदेश देना ठीक है परन्तु उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों की प्राणरक्षा के लिए धर्मोपदेश देना उचित नही है क्योंकि मरते जीव की रक्षा के लिए उपदेश देना एकान्त पाप है। इसी प्रकार श्रमण, माहण, भिखारी के गुण के लिए अर्थात् उनके सन्ताप को मिटाने मे और देश के गुण के लिए अर्थात्

देश की सुख-शान्ति के लिए उपदेश देना भी एकान्त पाप है। इन कार्यों मे गुण होता है ऐसी हमारी श्रद्धा नहीं है अर्थात् हम इन कार्यों मे गुण होना नही मानते। हे चित्त श्रावक ! तुमने जीवों की रक्षारूप गुण के लिए तथा श्रमणादि के और देश के गुण के लिए विनती की इससे तुम्हारी समकित मे दोष लग गया है इसलिए तुम इस दोष की आलोचना करो।" इस प्रकार केशी स्वामी चित्त श्रावक को समझा देते क्योंकि आज भी यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि यदि कोई व्यक्ति एकान्त पाप-कार्य करने का कथन साधु के सामने करे तो साधु उसको उसी वक्त समझा कर वह एकान्त पाप का कार्य करने से मना करते हैं जैसे कि साधु के समक्ष यदि कोई हिंसादि पाप-कार्य करने का विचार प्रकट करे तो साधु उस कार्य का निषेध करते हैं तो यदि मरते प्राणी की प्राणरक्षा का कार्य एकान्त पाप का होता तो चित्त श्रावक की विनती सुनकर क्या केशी स्वामी उसको इस कार्य के लिए मना नही कर देते ? किन्तु अवश्य कर देते क्योकि भला यह कब सम्भव है कि चार ज्ञान धारक श्रुतकेवली श्री केशी स्वामी अपने सामने एकान्त पाप के कार्य का कथन करने वाले श्रावक को मना नही करते ? प्रत्युत उन्होंने तो मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए तथा श्रमण, माहण, भिखारी और देश के गुण के लिए धर्मोपदेश देने की चित्त श्रावक की विनती को स्वीकार किया है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि चित्त श्रावक और केशी स्वामी की श्रद्धा एक थी अर्थात् जिस प्रकार चित्त श्रावक मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने के लिए तथा श्रमण, माहण, भिखारी और देश के गुण के लिए उपदेश देने में धर्म श्रद्धता था उसी प्रकार केशी स्वामी भी इन उपरोक्त कार्यों के लिए उपदेश देने में धर्म श्रद्धाते थे। दोनों की श्रद्धा एक थी। इसलिए चित्त श्रावक ने इन चार बातो के लिए अर्थात् (१) राजा परदेशी कीहिंसा छुड़ाने के लिए, (२) उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा के लिए, (३) श्रमण, माहण, भिखारी के सन्ताप को मिटाने लिए और (४) सम्पूर्ण देश के सन्ताप को मिटाकर सुख-शान्ति के लिए धर्मोपदेश देने की विनती की थी। चित्त श्रावक की इस विनती को श्री केशी स्वामी ने भावपूर्वक स्वीकार की थी।

राजप्रश्नीय सूत्र के उपरोक्त उदाहरण से जीवरक्षा मे धर्म

होना स्पष्ट सिद्ध होता है तथापि हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों की प्राणरक्षा के लिए धर्मोपदेश देने में जो एकान्त पाप बतलाते हैं उन्हें मिथ्यावादी और उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले समझना चाहिए ॥१०९–११० ।

छोड़ो रे छोड़ो मिथ्यात ने,
जीवरक्षा रो हो तुमे श्रद्धो धर्म ।
त्यागो कथन कुगुरु तणो,
खोटो घाल्यो हो अनुकम्पा में भर्म ॥शु. 111॥

भावार्थः—'मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने में पाप होता है' यह कुगुरुओं का कथन है । अनुकम्पा जो कि परम धर्म कार्य है उसमें उन कुगुरुओं ने पाप होने का मिथ्या भ्रम घुसेड रक्खा है । उन कुगुरुओं के भ्रमजाल मे फसे हुए भोले प्राणियों पर अनुकम्पा करके सद्गुरु कहते हैं कि तुम उस भ्रम को दूर कर जीवरक्षा में धर्म का श्रद्धान करो जिससे आत्मा का कल्याण हो । अन्यथा ये कुगुरु तो उस कहावत को चरितार्थ करने वाले हैं :—

"आप डूबे पांडियो, ले डूबे यजमान ।"

जीवरक्षा रूप परम धर्म के कार्य मे पाप का श्रद्धान कर ये कुगुरु तो संसारसागर में डूबते ही है किन्तु इस खोटी श्रद्धा का उपदेश देकर भोले प्राणियो को भी अपने भ्रमजाल मे फंसा कर अपने साथ ही संसारसागर डुबाते हैं । अत· विवेकी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे ऐसे कुगुरुओ के भ्रमजाल मे न फंसें और ऐसे कुगुरुओं की संगति से सदा बचते रहे ॥१११॥

कोई पतिव्रता सती तणो,
एक पापी हो खण्डे शील विशेष ।
देह त्याग मांड्यो सती,
तिहां मुनिजन हो दीनो उपदेश ॥शु. 112॥

प्रबोध पापी पामियो,
सती नार ना हो रह्या शील ने प्राण ।
मुनि उपकारी बेहूना,
तुमे समझो हो समझो नि सुजाण ।।शु. 113।।

भावार्थः—किसी अटवी मे कोई पापी पुरुष किसी पतिव्रता सती स्त्री के शील को खण्डित करने के लिए उद्यत हुआ । उस समय अपने शील की रक्षा का अन्य कोई उपाय न देख कर वह सती अपने प्राण-त्याग करने के लिए तैयार हो गई । संयोगवश उधर कोई मुनि आ निकले । उन्होंने उस पापी को धर्मोपदेश दिया । मुनि के उपदेश से वह पापी पुरुष समझ गया । उसने अपना पाप-विचार छोड़ दिया और सदा के लिए परस्त्रीगमन का त्याग कर सदाचारी बन गया । उधर उस पतिव्रता सती स्त्री के शील और प्राण दोनों की रक्षा हो गई । इस प्रकार मुनि उस पापी पुरुष के और उस पतिव्रता स्त्री के दोनो के उपकारी हुए ।।११२–११३।।

एक मोनव्रती मुनिराज रीं,
कोई पापी हो करतो थो घात ।
उपदेश देई समझावियो,
रक्षा कीधो हो मुनि नी विख्यात ।।शु. 114।।

जो बकरो बच्यां पाप श्रद्धसी,
तिण रे लेखे हो मुनि बचिया रो पाप ।
जो मुनि बच्या करुणा कहो,
तो बकरो बचिया रो दयाधर्म है साफ ।।शु. 115।।

भावार्थः—किसी अटवी में कोई एक मुनिराज जा रहे थे । वे मौनव्रती थे अर्थात् उस दिन उनके मौन था । कोई पापी पुरुष उनकी घात करने को तैयार हो गया । इतने ही मे कोई दयालु पुरुष उधर आ निकला । उसने उस पुरुष को उपदेश देकर समझा दिया जिससे वह पुरुष समझ गया और उसने अपना पाप-विचार छोड़ दिया । इस

प्रकार उस दयालु पुरुष के उपदेश से वह मुनि-हत्या के पाप से बच गया और मुनिराज की प्राणरक्षा हो गई ।

इसी प्रकार हिंसक एक बकरे को मार रहा था । एक दयालु पुरुष ने उसको उपदेश दिया जिससे उसने बकरे को छोड़ दिया । इस प्रकार हिंसक हिंसा के पाप से बच गया और बकरे की प्राणरक्षा हो गई ।

जो लोग बकरे की प्राणरक्षा को पाप कहते हैं उन्हें मुनि की प्राणरक्षा मे भी पाप मानना पड़ेगा । यदि मुनि की प्राणरक्षा में पाप न मानकर धर्म मानते हैं तो उन्हें बकरे की प्राणरक्षा में भी धर्म मानना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार मुनि की प्राणरक्षा दया का कार्य है उसी प्रकार बकरे की प्राणरक्षा भी दया का कार्य है । ये दोनों कार्य समान हैं । इसलिए एक मे धर्म और दूसरे में पाप मानना अयुक्त है । दोनो दयाधर्म के कार्य है अतः दोनों में धर्म मानना चाहिए ॥११५॥

खोटा कुहेतु खण्डणी,
ढाल जोड़ी हो राजलदेसर मांय ।
सांचे मन शुद्ध श्रद्धतां,
श्रद्धा नो हो निरमल गुण पाय ॥
शुद्ध श्रद्धा ने ओलखो ॥116॥

भावार्थः—कुगुरुओ के कुहेतुओं का खण्डन करने वाली यह ढाल बीकानेर राज्यान्तर्गत राजलदेसर में जोड़ी गई है। सरलभावपूर्वक सच्चे मन से जो पुरुष इस पर श्रद्धा करेगा वह शुद्ध श्रद्धा यानि शुद्ध समकितरूप निर्मल गुण को प्राप्त करेगा ॥पे१६॥

॥ इति पांचवीं ढाल सम्पूर्ण ॥

॥ समाप्त ॥